

घोषट राजा, टके सेर भाजी टके सेर ग्याजा ।'

(ग) पोपाबाई का ग्याय बड़ा निश्चिन्ध था। एक बार दो व्यापारियों ने बानो मिर्च का मोटा किया। वायदा हो चुकने के कुछ दिनों बाद कानो मिर्च के भावों में असाधारण तेजी आ गई। देने वाले व्यापारी का मन सोम में पग पड़ा। मत् आगा-पीछा करने लगा। उनका तोन बादगाही पायली भर कर देना-लेना निश्चित हुआ था। अब यह व्यापारी कहने लगा—'मैं आधी पायली से दूँगा।' दोनो का यह विवाद पोपाबाई की कचहरी में गया।

पोपाबाई ने इनका निपटारा करने के लिए बीच-बचाव करके कहा—'तुम्हारी सौधी पायली भी जाने दो, तुम्हारी औधी भी जाने दो, आधी पायली मैं दे दो।' यह ग्याय सुनकर लोग प्रिलसिमाकर हल पड़े। बेचारा व्यापारी फिर पर हाथ भारकर रह गया, किन्तु आगे निकायन कहाँ करे? कौन सुने।

इस प्रकार जब सरासर अग्याय होता है और फिर उसकी सुलाई भी नहीं हो तो लोग प्रायः कहा करते हैं—'यह पोपाबाई का ग्याय है।' इस घटना को लेकर एक पद्य भी प्रसिद्ध है—

मिरी शिरधी बाणीये महमूदी की माप।  
भरवा नी बखते कहे ऊध्या भरल्यो आर।  
ऊध्या भरल्यो आप तब हुआ शगदा भारी।  
शगदत शगदत बिहु गया तब राजदुवारी।  
आड ग्याय भर मेखो पाही पोपा छाप।  
मिरी शिरधी बाणीये महमूदी की माप ॥

(उपदेस रत्न कथा कोप भाग-३ प्रकरण ७१)

१६० जूठन का छींचा हुआ कृत्ता जिन घरों में जूठन पिलती है वही समय पर अपने-आप पहुँच जाता है। उसी प्रकार रस-सोलुप मुनि अच्छे-अच्छे घरों में रस का छींचा हुआ समय पर जा घमकता है।'

१६१. जो सूत्र और अर्थ को जाने बिना उसके विवद बात कहते हैं वे जार्ह हो गालों के गाले बसाते हैं, अर्थात् जादूगर की तरह गाल कुलाकर मोड़ के मोड़े निकालते हैं और उन्हें हवा में गायब कर देते हैं।'

१. निग पर जाण लेहिया, ज्यू डोरी लाण्यो खान।

साजे आहार गुटा पड़े, ओ पेट भरण रो तान ॥

(साध्याचार री ओपई डा० ५ गा० १२)

२. कई भेषघाट्या री एहकी सरधा, कहे साधा मे माठी लेख्या नहीं आई।

ते मूनर अर्थ जानै नहीं भोला, गाला रा गोला घड घड खवाई ॥

(खडा री ओपई डा० ३ गा० १६)

१६२. वर्तमान में साधु समाज की स्थिति का विषय स्वामीजी ने अपने शब्दों में इस प्रकार किया है—

जद पिण पाछही बा अति घणा रे, तो हिवडां पिण पाछही नो जोर रे ।  
बीर जिणद भुगते गया पछे रे, भरत में हुओ अघारी घोर रे ॥  
तिण में धर्म रहनी जिणराज रो रे, थोड़ी सो आगिया नो चमत्कार रे ।  
अवकी परे नें घने मिट जावसी रे, पिण निरतर नही इकबीस हजार रे ॥  
अल्प पूजा होसी सुख साध री रे, आगूच धीर गया छै भाज रे ।  
अमाधु री पूजा महिमा अति यणी रे, ठाणाअग माहे तिण री साख रे ॥  
ऊगे ऊगे नें बने ऊगियो रे, तो आधमिया बिन किम उगाय रे ।  
इण न्याय भविषण नही धर्म सासतो रे, हुय हुय झलपट नें बुझ जाय रे ॥  
लिगरा लिगरी बवसी अति घणा रे, करसी माहोमाहि झगडा राड रे ।  
जे कोई फाई तिण में धूचणी रे, क्रोध कर लडवा नें छैतयार रे ॥  
बेला बेली करण रा सोभिया रे, एकत मत बाधण सू काम रे ।  
बिकला ने भूड भूड भेला करे रे, दिराए गृहस्थ ना रोकड दाम रे ॥  
पूज री पदवी नाम धरावसी रे, भूँ छा सासण ना नायक साम रे ।  
पिण आधारे डीला सुध नही पालसी रे, नहीं कोइ आत्म साधन काम रे ॥  
आचार्य नाम धरासी गुण बिना रे, पेट भरा ज्यारी परवार रे ।  
सपदी सो हूसी इन्दी पोखवा रे, कपट कर स्वामी सरल आहार रे ॥  
सकसी सो देखी आरा टामला रे, रिपसी एजाणी जीमणवार रे ।  
पात जीने तिहा जागी पापरा रे, आम्मा सोधे हूसी बेकार रे ॥

(साधवाचार री चौरई का० ३ गा० ६ से १४)

१६३. गुरु के मृत्यांकन के लिए स्वामीजी ने लकड़ी की डांडी का दृष्टान्त दिया। जैसे—लकड़ी की डांडी के तीन छेद होते हैं उनमें बीच का छेद सम स्थान पर न हो तो काण पड़ती है, सम स्थान पर हो तो काण नहीं पड़नी। वैसे ही देव, गुरु, धर्म, इन तीनों के बीच में गुरु आते हैं। यदि गुरु अच्छे ही तो देव भी अच्छे होते हैं और धर्म भी अच्छा बतलाते हैं और गुरु अच्छे न हो तो देव भी अच्छे नहीं होते और धर्म भी सच्चा नहीं बतलाते। जिस प्रकार—१ 'ब्राह्मण' गुरु मिलते हैं तो देव-शिव, धर्म-ब्राह्मणों को जिमाओ बतलाते हैं। २ 'भोरा' गुरु मिलते हैं तो देव-धर्मसाखा और धर्म-भोगों को जिमाओ बतलाने हैं। ३ 'बार्वाडिया' गुरु मिलते हैं तो देव रामदेवजी, धर्म-ब्रम्हों को रान जमाओ बतलाते हैं। ४ 'मुन्ना' गुरु मिलते हैं तो देव-अन्ना, धर्म—

एर भरन्ती मेर भरन्ती, खेत भरन्ती बहु तेरा ।

हुकम आया अन्ना साहिब रा, सो गया बाटूरा तेरा ॥

२. निम्न गुरु मिलते हैं तो देव—'अरिहंत' धर्म भगवान् की आज्ञा में बतलाते

है। कहा भी है—

‘गजी मेमुदी वासती, तीनूँ एकण मोत।’

जिण न जैसा गुरु मिल्या, वैसा काढ़या पोत।’

जिस प्रकार गजी—एक प्रकार का मोटा देशी कपड़ा जिसका भरप्रकार चौड़ा होता है।

मेमुदी (मुहम्मदी)—एक प्रकार का बढिया वस्त्र—मलमल। वामनी—एक प्रकार का मोटा लाल रंग का कपड़ा विशेष।

ये तीनों धागों (तारों) की दृष्टि से एक ही रंगी के हैं पर बुनने वाले उन्हें तीन तरह का कपड़ा बना देते हैं उसी प्रकार जिन्हें जैसे गुरु मिलते हैं वैसा जो धर्म और देव बतलाते हैं।

(भिक्षु दुष्टान्न २६१)

१६४. एक लड्डू में जहर मिला है और एक में नहीं पर समझदार भागी समझे बिना दोनों ही लड्डू नहीं खायेगा। वैसे ही साधु और अनाधुना निर्णय किये बिना चतुर आदमी साधुत्व की दृष्टि से वन्दना नहीं करता।

(भिक्षु दुष्टान्न २६१)

१६५. किसी नगर में दो जौहरी रहते थे। दोनों भाई अलग-अलग रहने लगे भी उनमें बहुत प्रेम था। बड़ा भाई गुजर गया। घर का भार छद्मदातृ के कंधों पर आ गया। एक बार माँ के हाथ में कठिनाई आने पर उसने एक हीरो की गठरी निहाली और उसके दाम उठाने के लिए, आलस को देखकर चाचा के पास भेज दिया। चाचा ने गठरी घोलकर देखा—‘समूचा मांस ही नकली है, केवल काँच के टुकड़े हैं।’ फिर उसके मन में आया यदि अभी मैं नकली कहकर रणू या लोटा दू तो संभव है इसकी माँ को बड़ी चोट लगेगी या कुछ बुरी बगवान भी हो उठेगी—। उगने हीरो की सुरक्षित रखने की बात कहकर कभी कदा आने पर मगवाने का आश्वासन दे दिया। पुत्र ने माँ से गठरी देकर सब बातें बता दी। माँ अब सुनते भविष्य की आशा में पुत्र को दुसारे-प्यार से पढ़ाने लगी। धीरे-धीरे पुत्र बड़ा हुआ, चाचा के पास उसने अपने पैतृक व्यापार में अर्पण निपुणता प्राप्त कर ली।

चाचा ने अब समय देखा। हीरो की गठरी मगवाई। सबका माँ के रण गठरी मागने के लिए आया। माँ ने निजोरी में निकालकर पुत्र के हाथ में दे दी। लड्डू के ने रण ही गठरी खोली तो उसका मन झुझसा उठा। गठरी की उसने बड़ी चेक दिया। माँ चिन्मा उठी—‘अरे बेडा ! यह क्या कर रहा, मेरा कनेडा फिर चेडा !’ लड्डू—‘माँ बनेजा है ही कहाँ ? ये तो कोरे काँच के टुकड़े हैं।’ माँ—‘हे ! नेर चाचा ने बदल दिये होवे ? राम दे राम ! कैसा कमसुग है !’ लड्डू—‘विपकुन बगव है। मैं बड़ी बीडा था, मेरे सामने ही उन्होंने खोली और उगी कर

मेरे हाथ में दे दो। मां—फिर उन्होंने कहा क्यों नहीं, यह घोषा क्यों दिया ?

सड़का चाचा के पास आया और बोला इसका क्या रहस्य है, क्यों नहीं उस दिन बताया गया कि ये कांच के टुकड़े हैं, इत्यादि प्रश्नों का उत्तर चाचा। चाचा—बेटा ! मैंने उस दिन देखा लिया था यह समूचा माल ही नकली है, काच है पर मैं उस दिन यह देता तो तुझे और तेरी मा को कड़ी चोट लगती। समय है हमारा साथ ही बिगड़ जाता, तेरी पढ़ाई बिगड़ी भी नहीं हो सकती थी। अब तू सपना हो गया है, स्वयं परीक्षा कर सकता है। इसलिए आज भगवाकर तुझे दिखाने का विचार आया।

मां और पुत्र का मन आश्चर्य हो गया। मां ने बड़े दुलार से बेटे का सिर चूम लिया। बाहरे बेटा ! बाप जैसा ही जीहरी बन गया है न ? वास्तव में मनुष्यों में जब तक परीक्षा बुद्धि जागृत नहीं होती तब तक उनके लिए काच और हीरे की तरह सत्य और असत्य की परीक्षा नहीं होती। किन्तु जब विवेक की आँख उघड़ जाती है, अज्ञान का पर्दा हट जाता है तब मनुष्य मणि और काच का भेद अपने आप कर लेता है। सत्य-असत्य की रेखा स्पष्ट समझ लेता है। आचार्य भिक्षु ने इन विषय में कहा है—

काच तणा देखी मिणकला, अण समझ्या हो जाणें रत्न अमोल ।

ते निजर पड़्या सराफ री, कर दीपो हो स्वारी कोडयां मोल ॥

(अनुकृपा री चौपई बा० ७ गा० १६)

१६६ कई व्यक्ति कहते हैं—‘कोई साधु दोष का सेवन करे तो भी गृहस्थ से तो अच्छा है, इसका हार्द समझाने के लिए स्वाधीजी ने दृष्टान्त दिया—एक साहूकार की दुकान पर सुबह-सुबह एक आदमी आया। उसने एक पैसे का गुड़ मांगा। दुकानदार ने पैसा लेकर गुड़ दे दिया। सोचा सुबह-सुबह बिक्री हुई है, ताबे का पैसा मिला है। दिन में माल अच्छा मिलेगा। उसने पैसे को सिर पर चढ़ाया और अपनी रोकड़ में डाल दिया।

दूसरे दिन सुबह वही आदमी एक रुपया भुनाने आया। दुकानदार चादी का दागा देखकर बड़ा खुश हुआ। उसने रुपये के खुने पैसे दे दिये। रुपये को सिर पर चढ़ाकर रोकड़ में रख दिया। तीसरे दिन फिर वही आदमी एक छोटा रुपया लेकर भुनाने आया। दुकानदार ने उसे बजाया तो वह छोटा रुपया निकला—ताबे के ऊपर चादी का झोल किया हुआ था। उसने झुझलाकर रुपया फेंक डाला। आज तो सुबह-सुबह छोटा रुपया दिखाई पड़ा, बहुत बुरा हुआ।’

प्राहक बोला—‘सेठजी ! आप झुझना क्यों उठे ? परसों जब मैं ताबे का पैसा लाया था तो आपने खुश होकर सिर पर चढ़ाया। कल जब मैंने चादी का रुपया भुनाया तो प्रसन्न हुए, उसकी बदना की और आज जब मैं ताबे और चादी दोनों का मिला हुआ रुपया लाया हूँ, तो आप खीझ क्यों गये ? प्रत्युत इसकी दो

बार बदला करनी चाहिए।'

दूकानदार—'मूर्ख ! यह मिनाचट अच्छी नहीं होती । कुछ ताँवा और चाँदी ही अच्छे हैं । किन्तु मिनने पर मोटा रुपया बन जाता है, उसमें नरन आ जाती है नक्सी के दर्जन ही बुरे होते हैं।'

इस तरह पैसे के समान तो गृहस्थ श्रावक हैं, रुपये के समान साधु हैं, मोटे रुपये के समान वेधधारी साधु हैं, ऊपरी वेध तो साधु का है पर साधु के लक्षण नहीं हैं अतः वे बन्दनीय नहीं हैं । श्रावक देशत्रों का और साधु महाशयों का पालन करने में स्तुत्य और मोक्ष के आराध्यक हैं परन्तु उनके अभाव में वेधधारी साधु न स्तुत्य हैं और न मोक्ष के आराध्यक ।

(भिक्षु दृष्टान्त २६५)

१६७ किसी व्यक्ति ने कुएँ पर दरी बिछाकर उसके चारों ओर पत्थर के टुकड़े रख दिये । अनजान व्यक्ति उस पर जाकर बैठता है तो वह कुएँ में गिरकर अपने प्राणों को समाप्त कर देता है ।

इस उदाहरण को घटित करते हुए स्वामीजी कहते हैं—'कुगुरु तो कुएँ के समान और साधु का वेध दरी के समान है । उन्हें कोई अजानी गुरु-बुद्धि में बटना आदि करता है वह भव-ममुड में डूब जाता है।'

कुगुरु भटभूजा के तुल्य, उनकी विपरीत थड़ा भाइ के समान और बगुर्नी जीव जनों के तुल्य है ।

कुगुरु उन प्राणियों को विपरीत थड़ा रूप भाइ में झोंक देते हैं ।

१६८ सुगुरु और कुगुरु को समझाने के लिए स्वामीजी ने तीन प्रकार की नौका का उदाहरण दिया—'एक तो सात्री काष्ठ की नौका है । दूसरी फूटी नौका तथा तीसरी पत्थर की नौका है । सात्री नौका के समान तो शुद्ध साधु हैं जो स्वयं भव-मिगधु में तरते हैं और दूसरों को तारते हैं, फूटी नौका के समान केवल वेधधारी साधु हैं जो छुद डूबते हैं और भोले लोगों को डूबाते हैं । पत्थर की नौका के समान तीन भी जेमठ बायझी हैं जो प्रत्यक्ष रूप में बिगड़ दिखाई देते हैं । ममत्तार

१. जाजम बिछाई बूवा ऊपर, बिहकानी रे मेल्यो ऊपर भार ।  
भीला बस निग ऊपर ते डूबे भर रे तिण बूवा मत्तार ॥  
जिम कुगुरु छे बूवा सारिछा, जाजम सम रे कने माघ रो भेछ ।  
त्याने गुरु जेवव बदना करै, ते डूबै रे मूर्ख अंध अदेछ ॥

(साध्याचार री ओपाई ढाल १० गा० १७)

२. कुगुरु भटभूजा सारिछा, त्यागी सरघा हो छोटी भाइ समान ।  
भारीछा जीव बिना सारिछा, त्याने मोर्थ हो छोटी सरघा मे आण ॥

(साध्याचार री ओपाई ढाल १० गा० ८)

बादमी प्रथम तो उन्हें स्वीकार नहीं करता, बादचित् गुरु रूप में अंगीकार कर भी लेता है तो उनके लिए उन्हें छोड़ना सुगम है। फूटी नौका के ममान जो वेप-धारी है, उन्हें छोड़ना कठिन होता है। विवेकी मनुष्य ही उन्हें छोड़ सकता है।'

(भिक्षु दृष्टान्त ३०१)

१६६. कुछ साधु आधाकर्मों स्थानक (उनके लिए बनाया गया मकान) में रहते हैं, लेकिन जब कोई व्यक्ति उनमें रहता है कि स्थानक आपके लिए बनाया गया है, तब वे कहते हैं—'हमने सब कहा था कि हमारे लिए स्थानक बनाना।' इस पर स्वामीजी ने उदाहरण देते हुए कहा—

(क) जब जवाई समुद्राल में जाता है तब कब कहना है कि हनुआ मेरे लिए बनाना? पर भोजन के साथ खा अवश्य लेना है, तब ही समुद्राल वाले उसके लिए दुवारा बनाते हैं। यदि जवाई हनुवा खाने का स्थापन कर दे तो वे क्यों बनाए।

इसी तरह वे कहते हैं कि हमने सब कहा था कि हमारे लिए स्थानक बनाना, पर अपने लिए बने हुए स्थानक में तो रह ही जाते हैं। सभी गृहस्थ लोग दूसरी बार बनाते हैं। यदि वे अपने लिए बनाये गए स्थानक में रहने का स्थापन कर दें तो शायद लोग क्यों बनाएंगे?

(भिक्षु दृष्टान्त ६४)

(ख) लड़का कब कहता है कि मेरा सम्बन्ध (सगाई) कौनिए, पर सम्बन्ध होने पर शादी कौन करता है? बालक ! बहू किसकी कहलाती है? बालक की। घर किसका बनता है? बालक का। ठीक इसी प्रकार वे स्थानक बनाने के लिए कहते नहीं पर स्थानक उनका ही कहलाता है और वे ही उसमें सहर्ष रहते हैं। इसलिए मानना चाहिए कि स्थानक उनके लिए ही बनाया गया है।

(भिक्षु दृष्टान्त ६१)

(ग) जो साधु आधाकर्मों स्थानक में रहते हैं और हम घर-बार के स्थायी हैं ऐसा कहते हैं, इस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—

१. यती के उपासरा २. मधेरण के पोशाल ३. फकीर के तक्रिया ४. भक्तों के स्थान ५. छुटपुट भक्तों के मंडी ६. कनफडों के आसन ७. सन्दासी के मठ ८. रामस्नेहियों के रामद्वार या राम मोहिल्ला ९. घर के मालिक के घर १०. सेठों के हवेली ११. गांव के स्वामी के कोठरी तथा रावला १२. राजा के महल या दरबार और १३. साधुओं के स्थानक।

इनमें सिर्फ नाम का अन्तर है लेकिन सब घर के घर ही हैं। जैसे—'वही पर तो 'कसी बूही' (खेत बादि में काम जाने का उपकरण) कहीं पर 'कुदास बूहा' कहते हैं, पर छहवाय के जीवों का आरम्भ-समारम्भ तो सर्वत्र हो ही जाता है।

कपनी और करणी में मनसा, नावा, कर्मणा एक रूप रहना ही साधु के लिए हितकर है।

(भिक्षु दृष्टान्त ३०८)

२००. कई गाधू कहते हैं— 'हम तो जीवों की रक्षा करते हैं पर भीतगरी नहीं करते।' इस पर स्वाधीजी ने कहा— 'एक चौकीदार था, उसने चौकी देरी तो छोड़ दी और खोरी करना शुरू कर दिया। लोगों को कहता कि मैं चौकी सगाना हूँ इसलिए मुझे पैमे मिलने चाहिए। लोग बोले— तुम्हारी चौकी तो दूर गयी पर नू खोरी करना छोड़ दे। नू दिन में तो दुकान, घर आदि देखकर जाता है और रात में यहीं पर खोरी करता है। तुमको घर बैठे ही पैमे इकट्ठा करने दोगे। नुम खोरी करना छोड़ दो।'।

रक्षामाजी ने कहा — 'ठीक इसी प्रकार वे कहते हैं कि हम जीसों को रक्षा करने हैं पर शक्ति को प्रमार्जन किये बिना ही किवाड़ खोलते हैं, बन्द करते हैं, जिसमें अनेक जीव मरते हैं अथ बचाने तो दूर रहे कम-से-कम जीवों का काय करना तो छोड़ें।'

(मिश्र दण्डान्न १५)

३०१ कई अज्ञानी मनुष्य ऐसे हैं जिनको दूसरा व्यक्ति समझना ही तो भी नहीं समझते और अपनी कही हुई भाषा को भी नहीं समझते। इस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—'एक बहिन बोली—मेरा पति जो अज्ञान है उसे दूसरे व्यक्ति नहीं पहचाने। तब दूसरी बहिन बोली—मेरा पति जो (अज्ञान) है उसे वह स्वयं भी नहीं पहचानता है। इस तरह के बुद्धिहीन मनुष्य को अपनी भाषा के अन्वयान है वे केवली—भाषित धर्म की पहचान कैसे कर सकेंगे।

(मिहिर दूटाल २६२)

१०२ कई मायु कटा है रिमा बयदान में पुण्य, पाप अथवा विष न करने की  
 १०३ इतिहास में मायु दान से मोक्ष करने हैं । इस पर ब्रह्माजी ने भी  
 १०४ का उदाहरण दे कर कहा—एक भीनी मुनि अपने भेषों महिन एक पाप में  
 १०५ आया । मायु की मुद्रा आदि मुद्रा में बोलकर मायु में लगी पर दूसरे में प्रगुपित  
 १०६ इतिहास में मायु । इन में मायु, इन में मायु, इन में मायु आदि मायु  
 १०७ का उदाहरण दे कर कहा—एक भीनी, मायु की आदि में करने लगे ।

[illegible]

‘मृगो मय वार्यां भवे, दृष्टान्ते वद कथितं हनौ ।’

महाराष्ट्र राज्य के, या अन्य कहीं का नही है ।।'

[illegible]

मित्र की भावना व्यक्त करते हैं।

(भिक्षु दृष्टान्त २३१)

२०३. कुछ साधु स्वयं हाथों से किवाड़ खोलते हैं और बन्द करते हैं पर गृहस्थ किवाड़ खोलकर बहराता है तो उसके हाथ से नहीं लेते। इस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—एक आदमी अन्य गांव जा रहा था। रास्ते में एक हिरण्य (भगी) का स्पर्श हो गया। उसने पूछा तुम कौन हो? वह बोला—मैं भगी हूँ। उसने कोप में आकर कहा हाय! तुमने मेरे भस्ते को छू लिया, चलता हुआ ध्यान नहीं रखता, इस तरह बोल-चाल होने से गाली-गलौज व हाथा-पाई भी हो गई। वह भगी को पछाड़ कर उसके ऊपर बैठ गया। भगी बोला—‘आप मुझे छोड़ दो, मैं आप जो कहूँगे वही करूँगा।’ तब वह बोला—‘तुम्हारी स्त्री से थोका दिलाकर, कोरे घड़े से पानी मँगवाकर, महाजन की दुकान में आटा खरीद कर ऐसी की ऐसी रोटियाँ बनाकर दे तो छोड़ूँ।’ भगी ने उसकी बात सहर्ष कबूल कर ली। उसने उसी तरह अपनी पत्नी से रोटियाँ बनवाकर उसको दे दी।

स्वामीजी ने लिप्पर्य की भाषा में कहा—‘जो समझदार व्यक्ति हो तो उसे मूर्ख समझता है क्योंकि जिसने भगी द्वारा छुई छुई रोटियाँ तो न खाईं पर उसके द्वारा बनाई हुई छाईं।’ ठीक उसी तरह वे स्वयं अंधेरी रात में किवाड़ खोलते व बन्द करने हैं, उसमें तो सन्देह नहीं करते और गृहस्थ खोलकर दे तो नहीं लेते।

(भिक्षु दृष्टान्त २३२)

२०४. एक व्यक्ति ने एक स्त्री से पूछा—‘क्या तेरे पति का नाम पेमा है?’ वह बोली—‘कौन कहता है मेरे पति का नाम पेमा है।’ तो क्या नायू है? उसने कहा—‘कौन नायू है मैं नहीं जानती।’ उसने फिर पूछा—‘क्या पायू है?’ वह सपाक से बोली—‘वयो है मेरे पति का नाम पायू।’ दो-चार नाम लेने के बाद जब उसका नहीं नाम आया तो वह चुप हो गई। तब उसने समझ लिया कि यही इनके पति का नाम है जो अपने मुह से नहीं लेती।

स्वामीजी ने कहा—‘इसी प्रकार कुछ साधुओं से पूछा जाय कि सावध दान में पाप है?’ तब वे कहते हैं—‘पाप कथो होता है। तो क्या मित्र होता है? मित्र कथो होता है। पुण्य होता है? तब वे मौन धारण कर लेते हैं।’ तब समझदार व्यक्ति समझ लेता है कि इनके सावध दान में पुण्य की श्रद्धा है।

(भिक्षु जय रसायण डा० १७ पृ० ३-६ के आधार से)

२०५. तीन करण—करना, करवाना, अनुमोदन करना तथा तीन योग—मन, वचन, काया ये एक-दूसरे से संबंधित हैं। जो कार्य मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्ति द्वारा करना अच्छा (शुभ) है तो करवाना और अनुमोदन करना भी अच्छा है। जो कार्य करना बुरा (अशुभ) है तो करवाना और अनुमोदन करना भी बुरा है। इसे निम्नोक्त उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है।



‘अन्तर्दाता । मेरे बेटे की बूट है ।’ उगकी देखकर बार-बार राजा का मन सन्नद्ध होने लगा । गिराहियों को आदेश दिया कि एक बार उगे रोको । पृथा का बनेजा बाँधने लगा । वह गिराहिये सगी, मुझे क्यों रोवते है ? यह मेरे बेटे की बूट है और कोई नहीं ।

राजा ने कहा—‘एक बार हमका घुंघट उतार कर देखो । बड़ी रक्साव के बाद क्यों ही घुंघट उतारा तो वह मुचीनी मूर्छा वाला मीनवान सामने आ गया ।

राजा की आँखों में आँसू बरसने लगा, पृथा ! मुझ ने भी नहीं कही । एक घर तो शक्ति भी छोड़नी है । राजा ने रानी को बुलाया और उगकी तीव्र भर्त्सना करने हुए पृथा और रानी को भोग के पाट उतरा दिया । उग दुष्ट के हाथ पर काटकर नगर के चौराहे के बीच बन्धों तक बाँध दिया गया । महा हाथ का शीतवानी जूता वही रखकर मुखना निग्रही गई कि आने जाने वाला हमकी भर्त्सना करे, हम पर घुंके और इस जूते को हमके गिर लगाए ।

पाग से गुजरने वालों में से किसी ने जूता लगाया, किसी ने घुंका, किसी ने मुँह बिचकाकर उगकी निन्दा की । सभी एक भयेड़ी उधर से निजला, निबट जाकर उगे सराहने लगा—‘बाहू रे मर्द ! भरना तो सब को है किन्तु नू बड़ी बहादुरी में मर रहा है । आखिर राजा के महसूस तक पहुँच तो गया ही ।’

घाट से उगे गिरफ्तार करके राजा के समक्ष खड़ा किया गया । राजा ने सिद्ध गर्वना करते हुए कहा—‘मेरे शासन में अपराध करने वाला जितने दण्ड का भागी है, उतना ही उगे सहयोग एवं प्रोत्साहन देने वाला । समाज में अपराध प्रति सभी पनपनी है जब कुछ लोग बुराई का सहयोग कर पीठ धपपाने वाले हों । इसलिए इसकी भी वही दसा करो जो उसके—’

इस प्रकार अपराध करने वाला, उगमें सहयोग देने वाला और उगकी सराहना करने वाला दोनों के लिए राजा ने एक न्याय किया ।

(उपदेश रत्न कथा बोध भाग १ प्रकरण ८)

स्वामीजी की मान्यता है कि जिस कार्य को करने में धर्म है तो उसके करवाने और अनुमोदन में भी धर्म है और जिस कार्य को करने में धर्म नहीं है, उसके करने और अनुमोदन में भी धर्म नहीं है ।

२०६. दुःख उत्पन्न होने पर लोग विलापन करते हैं, इस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त दिया एक साहूकार ने ‘खोड़े’ (कोड़ा—अनाज रखने का बखार) में गेहूँ भरवाये । ऊपर से दल लीपकर उगे सुरक्षित कर लिया । एक पड़ोसी ने भी उसके देखादेख एक खोड़े धूल, घाद, कपरा बालकर ऊपर से लिपवाई कर ली । कालान्तर में गेहूँ के भाव में तेजी आई । दुगुना मुनाफा समझकर साहूकार ने खोड़े को खोल कर गेहूँ बेचना आरम्भ कर दिया । पड़ोसी भी बाजार में जाकर ग्राहकों को गेहूँ

की साईं देकर अपने घर पर साया और ग्योहा ग्योहा । अन्दर में ग्याद निवली हव वह रोने लगा, देग्यादेग्य सोम भी उताके साथ रोने लगे । वहने सगे—'देग्यो रिचारे के गेहू की ग्याद हो गई ।' इगने में एक समझदार व्यक्ति ने उतमे पूछा—'अरे भाई ! तुमने अन्दर क्या डाला था ?' वह रोता हुआ बोला—'मैंने तो डाला यही था ।' तब वह बोला—'जब ग्याद डाली तो गेहूँ कहीं से निकले ?'

इसलिए प्राणी जैसे पुण्य-पाप का बंध करता है उसे वंगा ही कल भोगता पहता है । बिनापाप में कुछ नहीं होता, प्रत्युत अशुभ कर्म का बंध होता है ।

(भिवन्तु दृष्टान्त २११)

२०७. निरियारी में एक भाई-जो योत्र में बोहरा ग्योहारा था—ने स्वामीजी से पूछा—'जीव नरक में कैसे जाता है ?' स्वामीजी ने कहा—'जिस प्रकार पत्थर भारी होने से कुण्ड में जाता है उसी प्रकार कर्म भार से जीव दुर्गति में जाता है ।'

निरियारी में फिर उसी भाई ने पूछा—'जीव स्वर्ग में कैसे जाता है ?' स्वामीजी ने कहा—'जिस प्रकार काष्ठ का पाटिया हल्का होने से पानी में तैरता है, उसी प्रकार कर्म से हल्का होने पर जीव स्वर्ग में जाता है ।'

(भिवन्तु दृष्टान्त १४२)

२०८. किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—'जीव हल्का कैसे होता है ?' स्वामीजी बोले—'पैने को पानी में डालने से वह डूब जाता है, पर डूब पड़े को तपाकर बूट-कूटकर कटोरी बना लिया जाये तो वह तैरने लग जाती है और उसमें रखा हुआ पैगा भी तर जाता है । उसी प्रकार तप सधम के द्वारा भात्मा हल्की होती है और ससार-समुद्र को तरती है ।'

(भिवन्तु दृष्टान्त १४३)

२०९. किसी भाई ने पूछा—'महाराज ! साधुओं के अगात्ता क्यों होती है ?' स्वामीजी बोले—'कोई व्यक्ति आवाज में पत्थर फेंककर बीचों बीच तिर माछ कर बसा हो गया और पीछे पत्थर फेंकने का स्वाग कर दिया तो पहले फेंका हुआ पत्थर तो गिर पर चोट लगायेगा ही, पीछे पत्थर फेंकने का स्वाग कर दिया तो चोट नहीं लगेगी । ठीक उसी प्रकार पहले पाप कर्म का बंध किया उसका कल तो भोगता ही पड़ेगा, पीछे सावध कर्म का स्वाग कर दिया तो दुःख नहीं भोगता पड़ेगा ।'

(भिवन्तु दृष्टान्त १२३)

२१०. रोगादिक ~~कल~~ होने पर मनुष्य को दुःखना रखनी चाहिए पर बिनापाप नहीं करना चाहिए । २

कहा—उसको इस प्रकार सोचना चाहिए—  
'किसी आदमी के लिए  
ने बबरदानी उससे ले  
ओचना है कि अच्छा हुआ  
... करता है और चतुर मनुष्य  
ही, वह पहने ही संभट मिट बना

और सिर का बोझ भी उतर गया। इसी तरह रोगादिक उत्पन्न होने पर समझदार को—बघे हुए कमों से छुटकारा हो गया—ऐसा चिन्तन कर विलापात नहीं करना चाहिए।'

(भिक्षु दृष्टान्त २७८)

२११. पुर से बिहार कर भीमवाड़ा जाते समय रास्ते में हेमराजजी स्वामी को बहुत कष्ट हुआ। उन्होंने चन्द्रमाण चौधरी से कहा—'भाज तो छिन्नता बहुत हुई।' चन्द्रमाणजी ने कहा—'महाराज ! स्वामी भीमराजजी कहते थे कि प्रदेशों में स्वामना (हलचल) हुए बिना कमों की निर्जरा नहीं होनी।

(भिक्षु दृष्टान्त १२०)

२१२. कैलाश में एक बहन बार-बार कहती कि स्वामीजी यहाँ पधारे तो मैं दीक्षा ग्रहण करूँ। समयान्तर से स्वामीजी वहाँ पधारे तब उस बहन को घबराहट में बुझा आ गया। सन्ध्या के समय स्वामीजी के दर्शन करने के लिए आई और घरघरानी आवाज में बोली—'स्वामीजी आप तो यहाँ पधारे और मुझे बुझा आ गया।' स्वामीजी को उनकी दीक्षा की घोषणा का पता था, अतः उसकी भावना को भापते हुए पूछा—'कहीं दीक्षा के भय से तो तुम्हें बुझा नहीं आ गया?' उसने कहा—'मन में कुछ घबराहट तो हुई थी।' स्वामीजी बोले—'इस प्रकार दीक्षा का प्रमग आते ही घबराहट हो जाती है तो आजीवन दीक्षा का काम तो बहुत ही कठिन है।'

दुर्बल दिल वाला व्यक्ति साधु-जन गृहण नहीं कर सकता।

(भिक्षु दृष्टान्त ३९)

२१३. खेरवा निवासी बजुरीजी शाह ने स्वामीजी से विनति की—'मेरे मन में सद्यः लेने की भावना उठती है।' स्वामीजी ने कहा—'तुम्हारा दिल कमजोर है। दीक्षा के समय मोहवश तुम्हारे पुत्रादिक रोने लगे तब साथ-साथ तुम भी रोने लग जाओ तो?'

वह बोला—'हा परिवार बालों से बिछुड़ने के समय स्नेहवश आनू तो मेरे भी आ सकते हैं।'

स्वामीजी ने तत्काल उदाहरण देते हुए कहा—'जवाई 'गौना' कराने के लिए समुदाय जाता है। वापस आते समय उसकी पत्नी अपने माता-पिता से बिछुड़ने के दुःख में रोने लगती है पर उसके साथ-साथ जवाई भी रोने लगे तो लोगों में उसका उपहास हो जाता है। इसी तरह जो साधु बनता है उसके परिवार वाले तो

१. विवाह के बाद की एक रस्म, जिसमें वर-वधू को प्रथम बार अपने घर-साथ है।

की साईं देकर अपने घर पर साया और छोड़ा छोला। अन्दर में खाद निाली टब वह रोने लगा, देखादेखा लोग भी उसके साथ रोने लगे। वहने सगे—‘देखो बिचारे के गेहूँ की खाद हो गई।’ इतने में एक समझदार व्यक्ति ने उसमें पूछा—‘अरे भाई! तुमने अन्दर क्या डाला था?’ वह रोता हुआ बोला—‘मैंने तो डाग यही था।’ तब वह बोला—‘जब खाद डाली तो गेहूँ कहाँ से निकले?’

इसलिए प्राणी जैसे पुण्य-पाप का बंध करना है उसे बंधा ही पल भोगता पड़ता है। बिनापात से कुछ नहीं होना, प्रत्युत अशुभ कर्म का बंध होता है।

(भिक्षु दृष्टान्त २६४)

२०७. मिरियारी में एक भाई-जो गोत्र में बोहरा खीरगरा था—ने स्वामीजी से पूछा—‘जीव नरक में कैसे जाता है?’ स्वामीजी ने कहा—‘जिस प्रकार पत्थर भारी होने से कुण्ड में जाना है उसी प्रकार कर्म भार से जीव दुर्गति में जाता है।’

मिरियारी में फिर उसी भाई ने पूछा—‘जीव स्वर्ग में कैसे जाता है?’ स्वामीजी ने कहा—‘जिस प्रकार काष्ठ का पाटिया हल्का होने से पानी में तैरता है, उसी प्रकार कर्म से हल्का होने पर जीव स्वर्ग में जाता है।’

(भिक्षु दृष्टान्त १४२)

२०८. किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—‘जीव हल्का कैसे होता है?’ स्वामीजी बोले—‘पैसे को पानी में डालने से वह डूब जाता है, पर उन पैसे को सत्कार कूट-कूटकर कटोरी बना लिया जाये तो वह तैरने लग जाती है और उभरे रखा हुआ पैसा भी तर जाता है। उसी प्रकार तप सपथ के द्वारा आत्मा हल्की होती है और सत्कार-मनुष्य को तरती है।’

(भिक्षु दृष्टान्त १४३)

२०९. किसी भाई ने पूछा—‘महाराज! माधुजी के असाता क्यों होती है?’ स्वामीजी बोले—‘कोई व्यक्ति आकाश में पत्थर फेंककर नीचे गिर साट कर बसा हो गया और पीछे पत्थर फेंकने का त्याग कर दिया तो पहले फेंका हुआ पत्थर तो गिर पर चोट लगावेगा ही, पीछे पत्थर फेंकने का त्याग कर दिया तो चोट तरी सहेगी। ठीक उसी प्रकार पहले पाप कर्म का बंध किया उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा, पीछे मावस कर्म का त्याग कर दिया तो कुछ नहीं भुगतना पड़ेगा।’

(भिक्षु दृष्टान्त १२९)

२१०. रोगादिक उत्पन्न होने पर मनुष्य को दुःखता रखनी चाहिए पर बिनापात नहीं करना चाहिए। स्वामीजी ने कहा—‘उसको इस प्रकार सोचना चाहिए—‘हिमी आदमी के गिर पर चढ़े या और वह देना नहीं चाहता था पर लेने बने ने जबरदस्ती उसमें से लिया। तब मूर्ख तो बिनापात करता है और चतुर मनुष्य सोचना है कि अच्छा हुआ बाद में देना तो पड़ता ही, वह पहले ही झसट मिट पडा



की भाई देकर अपने घर पर साया और छोड़ा छोटा। अन्दर में ग्राद निाली तब वह रोने लगा, देखादेखा सोमंभी उगरे साथ रोने लगे। कहने लगे—'देगो बिबारे के गेहूँ की ग्राद हो गई।' इनमें में एक समयसार व्यक्ति ने उससे पूछा—'अरे भाई! तुमने अन्दर क्या खाना खा?' यह रोता हुआ बोला—'मैंने तो डाटा यही खा।' तब वह बोला—'जब ग्राद खानी तो गेहूँ वहाँ में निालेंगे?'

इसलिए प्राणी जैसे पुण्य-पाप का वंश करता है उसे वंश ही फल भोगना पड़ता है। विनाशान से कुछ नहीं होता, प्रत्युत अगुप्त कर्म का वंश होता है।

(भिक्षु दृष्टान्त २६५)

२०७ मिरियारी में एक भाई-बो सोच में बोहरा मीयमरा था—ने स्वामीजी से पूछा—'जीव नरक में कैसे जाता है?' स्वामीजी ने कहा—'त्रिम प्रकार पत्थर भारी होने से कुण्ड में जाता है उसी प्रकार कर्म भार से जीव दुर्गति में जाता है।'

मिरियारी में फिर उसी भाई ने पूछा—'जीव स्वर्ग में कैसे जाता है?' स्वामीजी ने कहा—'त्रिम प्रकार काष्ठ का वाटिया हल्का होने से पानी में तैरता है, उसी प्रकार कर्म से हल्का होने पर जीव स्वर्ग में जाता है।'

(भिक्षु दृष्टान्त १४२)

२०८ किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—'जीव हल्का कैसे होता है?' स्वामीजी बोले—'पैने को पानी में डालने से वह डूब जाता है, पर जब पैने को तपाकर कूट-कूटकर कटोरी बना लिया जाये तो वह तैरने लग जाती है और उसमें रखा हुआ पैना भी तर जाता है। उसी प्रकार तब समय के द्वारा आत्मा हल्की होती है और ससार-ममूत्र को तरती है।'

(भिक्षु दृष्टान्त १४३)

२०९ किसी भाई ने पूछा—'महाराज! साधुओं के असाता क्यों होती है?' स्वामीजी बोले—'कोई व्यक्ति आकाश में पत्थर फेंककर नीचे मिर साँझ कर छाया हो गया और पीछे पत्थर फेंकने का त्याग कर दिया तो पहले फेंका हुआ पत्थर तो मिर पर चोट लगायेगा ही, पीछे पत्थर फेंकने का त्याग कर दिया तो चोट नहीं लगेगी। ठीक उसी प्रकार पहले पाप कर्म का वंश किया उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा, पीछे सावध कर्म का त्याग कर दिया तो दुःख नहीं भोगना पड़ेगा।'

(भिक्षु दृष्टान्त १२२)

२१०. रोगादिक उत्पन्न होने पर मनुष्य को दुःखता रखनी चाहिए पर विनाशान नहीं करना चाहिए। स्वामीजी ने कहा—'उसको इस प्रकार सोचना चाहिए—'किसी आदमी के सिर पर कर्ज था और वह देना नहीं चाहता था पर मेने कर्ज ने प्रवरदन्ती उससे मे लिया। तब मूर्ख तो विसापात करता है और चतुर मनुष्य सोचना है कि अच्छा हुआ बाद में देना तो पड़ता ही, वह पहले ही झगड़ मिट गया

और सिर का बोझ भी उतर गया। इसी तरह रोगादिक उत्पन्न होने पर समझदार को—बचे हुए कर्मों से छुटकारा हो गया—ऐसा चिन्तन कर विनाशान नहीं करना चाहिए।

(भिवधु दृष्टान्त २७८)

२११. पुर से बिहार कर भीलबाड़ा जाने समय रास्ते में हेमराजजी स्वामी को बहुत कष्ट हुआ। उन्होंने चन्द्रभाण चौधरी से कहा—‘आज तो विग्नता बहुत हुई।’ चन्द्रभाणजी ने कहा—‘महाराज ! स्वामी भीषणजी कहते थे कि प्रदेशों में बलामना (हलचल) हुए बिना कर्मों की निर्जंरा नहीं होती।

(भिवधु दृष्टान्त १२०)

२१२. कैलाश में एक बहन बार-बार कहती कि स्वामीजी यहाँ पधारे तो मैं दीक्षा ग्रहण करूँ। समयान्तर से स्वामीजी वहाँ पधारे तब उस बहन की घबराहट में बुझार आ गया। सम्झा के समय स्वामीजी के दर्शन करने के लिए भाई और घरपरायी आकाश में धौली—‘स्वामीजी आप तो यहाँ पधारे और मुझे बुझार आ गया।’ स्वामीजी को उसकी दीक्षा की घोषणा का पता था, अतः उसकी भावना को भापते हुए पूछा—‘कहीं दीक्षा के भय से तो तुम्हें बुझार नहीं आ गया?’ उसने कहा—‘मन में कुछ घबराहट तो हुई थी।’ स्वामीजी बोले—‘इस प्रकार दीक्षा का प्रसंग आते ही घबराहट हो जाती है तो आजीवन दीक्षा का काम तो बहुत ही कठिन है।’

दुर्बल दिल वाला व्यक्ति साधु-व्रत ग्रहण नहीं कर सकता।

(भिवधु दृष्टान्त ३६)

२१३. लेरवा निवासी चतुरोजी साह ने स्वामीजी से विनति की—‘मेरे मन में समय लेने की भावना उठती है।’ स्वामीजी ने कहा—‘तुम्हारा दिल कमजोर है। दीक्षा के समय मोहवश तुम्हारे पुत्रादिक रोने लगे तब साय-साय तुम भी रोने लग जाओ तो?’

यह बोला—‘हूँ परिवार वालों से बिछुड़ने के समय स्नेहवश आसू तो मेरे भी आ सकते हैं।’

स्वामीजी ने तत्काल उदाहरण देने हुए कहा—‘जवाई ‘भौना’ कराने के लिए समुदाय जाता है। वापस आते समय उसकी पत्नी अपने माता-पिता से बिछुड़ने के दुःख में रोने लगती है पर उसके साथ-साथ जवाई भी रोने लगे तो लोगों में उसका उपहास हो जाता है। इसी तरह जो साधु बनता है उसके परिवार वाले तो



मरण प्राप्त करना अच्छा है पर स्वच्छन्द रूप में विहरण करना अच्छा नहीं है।' सब चन्द्रभाणजी बोले—'मैं और भारीमासजी स्वामी दोनों कर लें।' स्वामीजी बोले—'हम और तुम दोनों कर लें।' ये बोले—'आपके साथ तो नहीं करूँगा।'

आखिर अहंकार सब से सप से असप हो गये। उनका विस्तृत वर्णन स्वामीजी कृत 'अविनीत राम' में पढ़ें।

(भिक्षु दृष्टान्त १६५)

२१८. बेंगला में परिषद् के बीच ठाकुर भोछमसिंहजी ने स्वामीजी से पूछा—'महाराज ! आपको गांव-गांव के लोग अपने यहां पधारने की विमर्श करते हैं, भाई बहिनो को आप प्रिय लगते हैं, आपको देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, इसका क्या कारण है?' स्वामीजी ने कहा—'किसी साहूकार ने प्रवेश से अपने घर समाचार कहलाने के लिए घर चर्खे के खंभे देखकर एक कासीद को भेजा। वह मेठ के घर पर पहुंचा सब मेठानों उसे देखकर बहुत चुन हूँ। गर्म पानी से उसके पैर धुलवाये। अच्छी तरह मनुहारें कर-कर उसे भोजन करवाया और पास में बैठकर सेठजी के समाचार पूछने लगी—'सेठजी का शरीर कैसा है, स्वास्थ्य कैसा है? सेठजी कहाँ सोते हैं? कहाँ बैठते हैं?' हत्यादिक विविध समाचार कासीद के मुह से ज्यों-ज्यों सुनसी, त्यो-त्यो सेठानी बहुत प्रसन्न होती पर कासीद को देखकर प्रसन्न होने का कारण पति के समाचार सुनना ही है। इसी तरह हम भगवान् की वाणी का प्रचार-प्रसार करते हैं, उनके गुणगान गाते हैं, इसलिए नर-नारी हमारे से खुश रहती हैं।'

(भिक्षु दृष्टान्त ८७)

२१९. दूडाड के एक गांव में स्वामीजी पधारे, तब वहां के ठाकुर साहब ने अघेली (रूपये का भाषा हिस्सा) के टक्के स्वामीजी के खरखो में भेंट किये। स्वामीजी बोले—'हम तो ऐसे टक्के नहीं लेते।' ठाकुर बोले—'महाराज ! आप तो मोहर के लाभक हैं पर मेरा सामर्थ्य अभी इतना ही है फिर कभी पधारेंगे तब रुपया नजर करूँगा।' स्वामीजी ने कहा—'हम रुपये ऐसे मोहर आदि कुछ भी धन-सम्पत्ति नहीं रखते। ठाकुर सुनकर बहुत बहुत प्रसन्न हुये और गुणगान करते हुए बोले—'धन्य है आपकी क्रिया को।'

(भिक्षु दृष्टान्त ८८)

२२०. एक बार स्वामीजी पुर और भीतवाड़ा के बीच में विहार करके जा रहे थे, रास्ते में दूडाड की तरफ एक भाई मिला। उसने पूछा—'आपका नाम क्या है?' स्वामीजी बोले—'मेरा नाम भीखण है।' वह भाई विस्मित होकर बोला—'वाह ! मैंने आपकी बहुत महिमा सुनी थी पर आप तो अनेके ही वृक्ष के नीचे बैठे हैं। मैं तो जानता था कि आपके साथ में हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि विविध आडम्बर होगा।' स्वामीजी ने कहा—'हम इस प्रकार आडम्बर नहीं रखते हैं

मन्त्री इत्यादी अस्ति यथा है । मन्त्रं च मन्त्रीयते जीवत मोक्षो वेदे वर्णा है । तत्पुनः  
द्वारा प्रकृत स्वामीनी के अधीने ये ज्ञान गता ।

(सिवाय एतत्तु १२२)

२२१ मधु के अणुओं की बड़ी बलों की मारा मोर पाता है अणुओं की छोटी शक्त की मारा से उत्पन्न किया है। आकाश के अणु बरा है उसे अणु मोर अणु अणु है उसे अणु के अणु बरा है। अणु-अणु की गुणवत्ता के लिए अणु अणु अणु अणु ..

माय ने आहक १३१ की माया, एक मोड़ी नुकी माँ की रे।

मृत मृत्या व्याध नीचे ना, हरित रक्त मृत काती रे ॥

(चिरम छविमय ही मीमांसा १ भाग १)

द्विदे गृह्यत्रो चतुर गृह्यान् आचरन् रत्नानि मे लभन्त ।

प्राप्त कर जायको ह, उनही मय गायको ह ॥

ਸੇਵੇਂ ਅਸਤ ਕਾਮ ਸ ਹੋਏ, ਸਾਂਭ ਚੰਦਰਾ ਹੋਏ ।

कम नहीं मागिया तु, करमो नारिया तु ॥

ਸੀਤਾ ਨੂੰ ਨਿਥ ਲਾਏ, ਲੀਖੇ ਧਨੁਰੀ ਆਸ ।

माता मन अति घनी ए, मर मेरा तभी ए ॥

विश्व आनन्द गणेश कुमरपाव, धनुरी रक्षयो इतिहास ।

भाय न जोई करें ए, नैनी नीर नरै ए ॥

इण दिष्टं राज, आरुह नृप भव गमाण ।

अविरत अलगी रही ए, धनूरा तम कहो ए ॥

रोबारें अविरत जोय, वनी मायो जोय ।

ते भूता अम मे ए, हिमा अम मे ए ॥

अविरत स्युः कथं कर्म, निज मे नही निश्चये धर्म ।

तीनू वरण सारिछा ए, ते विरसा पारिछा ए ॥

(विमल इविरत श्री श्रीराम दा० ॥ मा० ५ में ११)

२२२ श्रावक जब सामाजिक और पौष्ट करता है तब भी उसकी आत्मा को 'अधिकरण' कहा है अर्थात् उस समय अन्न आदि की जो धुलावट है उसमें पाप बर्मे का वध होता है। प्रतिमा और पादोपगमन अनशन के समय भी वह गूढस्थ है। उसमें चारित्र्य को छोड़कर सात आत्माएँ पाई जाती हैं।

(पढ़िए आचार्य भिन्न रचित बारह वृत्तों की चौपई का० १०।)

करण (करना, करवाना, अनुमोदन करना) योग (धन, बचन, वादा) को जानकारी किसे बिना व्यक्ति मौलिक तत्त्व को नहीं समझ पाता ।'

१. करण जोशा तगी खबर पढ़िय। क्या, साम भीख तणी छाप लागै।

(श्रावक महेशदासजी कृत दा० १ मा० ११)

२२३ किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—'पौष करने वाले को किसी ने अपना मकान दिया उसको क्या हुआ?' स्वामीजी ने बटा—'मेरे मकान में पौष करो, इस तरह आज्ञा देने वाले को धर्म हुआ।' दूसरी बार उसने फिर पूछा—'उसको मकान दिया उसमें क्या हुआ?' स्वामीजी बोले—'जब मकान समुपार्जित हुआ है? मकान में सामायिक पौष करने की आज्ञा दी वह धर्म है, मकान तो परिग्रह है उसका भवन करना तथा करवाना धर्म नहीं है।

(मिश्र दृष्टान्त २२३)

२२४. कई व्यक्ति ने स्वामीजी से कहा—'सामायिक में प्रमांजन करके छात्र करने में श्रावक को धर्म होना है प्रमांजन किए बिना छात्र करने में पाप लगता है।' स्वामीजी बोले—'बीड़ी मच्छर आदि सामायिक में बटवा लगाने हैं वह क्या बाधा के लगाने हैं या सामायिक के?' वह बोला—'बटवा तो बाधा के लगाने हैं।'।

स्वामीजी 'प्रमांजन करके छात्र करता है उसमें यह सामायिक की रक्षा करता है या शरीर की?' वह कुतर्क बुझ से बोला—'रक्षा सामायिक की करना है। स्वामीजी—'छात्र न करने में तो प्रत्युत सामायिक की रक्षा ज्यादा होती है, क्योंकि सामायिक में प्रमांजन किये बिना छात्र करने के तो उसने त्याग होते हैं। और प्रमांजन न करे तो श्रावक कर मचना नहीं, छात्र न करे तो मच्छरादिक डक सहने से अधिक कर्म-निर्जरा होती है, उसमें तो सामायिक की विशेष पुष्टि होती है, इसलिए वह सामायिक की रक्षा के लिये नहीं शरीर की रक्षा के लिए प्रमांजन करता है।'

अर्थात् हीन (जम्बू, घातकी छह और अर्धपुष्कर) के बाहर तिर्यक् श्रावक सामायिक पौष करते हैं, क्या वे प्रमांजनी रखते हैं? सामायिक की सुरक्षा तो वे ही करते हैं।

वास्तव में अथवा न करना ही सामायिक की रक्षा है।

(मिश्र दृष्टान्त २२४)

२२५. किसी ने कहा—'पौष में कुछ श्रावक तो वस्त्र अधिक और कुछ थोड़े रखते हैं। थोड़े रखने वाले को अवत थोड़ी, अधिक रखने वाले को अवत अधिक लगती है यह माध्यता तो ठीक है पर पौष में प्रतिनिधन न करने वाले को प्रायः शिष्ट क्यों आता है?' स्वामीजी बोले—'पौष में प्रतिनिधन किये बिना वस्त्र भोगने का त्याग होना है, इसलिये प्रतिनिधन किये बिना वस्त्रों को काम में लेना है तो उसके नियम का भंग होता है।'

पौष में शरीर भी उसका अवत में है, शरीर की सुख-मुविधा के लिए ही वह वस्त्रादिक का उपयोग करता है, अतः वह सावध-प्रवृत्ति है। जो वस्त्रादिक पौष में रहे, उनका प्रतिनिधन न करे तथा उन्हें काम में न ले। कष्ट

तभी हमारी महिमा है। साधु को सादगीमय जीवन शोभा देने वाला है। वह बहुत प्रसन्न होकर स्वामीजी के चरणों में झुक गया।

(मिक्कू दृष्टान्त १२५)

२२१. साधु के महाव्रतों की बड़ी रत्नों की माला और धावक के अंगुष्ठों की छोटी रत्नों की माला से उपमित किया है। धावक के जिनना व्रत है उसे अमृत और जिनना अव्रत है उसे विष के समान कहा है। व्रत-अव्रत की पूषकता के लिए पढ़िये निम्नोक्त पद्य...

साध में धावक रत्नों की माला, एक मोटी दूजी नानी रे।

गुण गुण्या क्याहू तीर्य ना, इविरत रह गद कानी रे॥

(विरत इविरत की चोपई डा० १ गा० १)

हिवे सुणजो बनुर मुत्रान धावक रत्नना री छांग।

व्रता कर जाणजो ए, उसटी मत ताणजो ए॥

केई रुख बाग में होय, आब धनूरा दोय।

कम नही सारिखा ए, करजो पारिखा ए॥

आबा सू निव साम, सीचें धनूरो आय।

आमा मन अति घणी ए, अब सेवा तणी ए॥

पिण आब गयो कुमलाम, धनूरो रहयो दहिदाय।

आम न जोबं जरें ए, नैणा नीर जरें ए॥

इण दिष्टतं जाण, धावक व्रत अब समाण।

अविरत अलगी रही ए, धनूरा सम बही ए॥

सेवारें अविरत कोय, व्रता सामो जोय।

ते भूला धर्म में ए, हिता धर्म में ए॥

अविरत स्यू बर्ध कर्म, तिण म नही निबर्ध धर्म।

सीनू करण सारिखा ए, ते विरता पारिखा ए॥

(विरत इविरत की चोपई डा० ५ गा० ५ में ११)

२२२ धावक अब सामायिक और पोषण करता है तब भी उसकी आत्मा को 'अधिकरण' कहा है अर्थात् उस समय अव्रत आदि की जो खुलावट है उसमें पाप कर्म का बंध होना है। प्रतिमा और पादोपममन अनशन के समय भी वह गृहस्थ है। उसमें पारिव्रज्य की छोड़कर सान आत्माएँ पाई जाती है।

(पढ़िए आचार्य भिक्षु रचिन बारह व्रतों की चोपई डा० १०।)

वरण (करना, करवाना, अनुमोदन करना) योग (मन, वचन, काया) की आप्तारों विये बिना व्यक्ति मौलिक तत्व को नहीं समझ पाता।<sup>१</sup>

१. करण मंत्रा नगी खबर पढ़िय। धरई, साम भीनू तणी छान सारें।

(धावक महेशदासजी वृत्त डा० १ गा० ११)

नहीं करवाते तो फिर पूर्ण करने की विधि क्यों सिखाते हैं ?' स्वामीजी ने कहा—  
'एक मुहूर्त (४८ मिनट) समय पर सामायिक तो पूर्ण हो गई। पूर्ण करने हैं वे तो  
दोष की आलोचना करते हैं। आलोचना करना भगवान् की आज्ञा में है। इसलिए  
दोष की आलोचना करवाने में तथा पूर्ण करवाने की विधि सिखाने में दोष नहीं।  
वर्तमान में सामायिक पूर्ण होने पर वह उठ कर चला जाता है इसलिए साधु पूर्ण  
नहीं करवाते।'।

(मिक्खु दृष्टान्त २८६)

२८०. किसी भाई ने स्वामीजी से कहा—'खुले मुह बोलता हुआ गृहस्थ साधु  
को बहुराजा (देता) है। तब तो साधु से सेते हैं पर एक घान के दाने पर पैर लग  
आए तो उसके हाथ से भिक्षा नहीं लेने, घर भी 'असूझता' (उसके घर की समस्त  
वस्तुएं अव्यक्तनीय-अप्राप्त हो जाती हैं) मिनते हैं, इसका क्या कारण है ?'

स्वामीजी ने कहा—'बहरामे में काय-योग की प्रमुखता है इसलिए उठते-  
बैठते, हलते-चलते अयत्ना करता हुआ बहराये, अथवा मुह से फूक दे दे और साधु  
भिक्षा के लिए तत्पर हो जाये तो घर असूझता करते हैं। साधु भिक्षा के लिए  
उद्यत न हो तो वह व्यक्ति ही असूझता होता है। खुले मुह बोलना वचन का योग  
है, इसलिए बोलने से अयत्ना होती है। उसका घर तथा बोलने वाला असूझता  
नहीं होता।'।

'उपवाई' सूत्र में कहा है—'कोई व्यक्ति निन्दा करता हुआ दे तो साधु ले  
सकता है, जब निन्दा करता हुआ गाली देता हुआ बोलता है तब वह कौन-सी यत्ना  
करता है ? हमनिये बोलने की अयत्ना में घर असूझता नहीं होता तथा उसके हाथ  
से भी लेने में दोष नहीं है।'।

(मिक्खु दृष्टान्त २८०)

२९१ किसी दाता ने हर्ष सहित साधु को भी बहुराया। साधु की असावधानी  
में उसमें पड़कर अनेक कीटियां मर गईं तो उसका पाप साधु को लेगा घृत दाता  
को नहीं। यदि साधु ने वह भी स्वयं न खाकर हर्ष सहित तपस्वी मुनि को दे दिया  
तो उसका मुनाफा (सीधंकर गौत्र उपार्जन आदि) उसको ही हुआ। मुनाफा और  
मुक्तान अपने-अपने शुभाशुभ भावानुसार ही होता है।

(मिक्खु दृष्टान्त १३७)

२९२. किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—'आप किसी को नियम दिलाते  
हैं, वह बाद में नियम भंग करेगा तो उसका पाप आपकी लगेगा।'।

स्वामीजी ने कहा—'जिस प्रकार किसी साहूकार ने सो रुपये का रुपया बेचा  
उसमें उसको काफी मुनाफा हुआ। अब यदि वह लेंने वाला उसमें दुगुना लाभ  
उठाना है तो वह मुनाफा साहूकार को नहीं मिलेगा, अगर वह उस लाभ को आप  
में जमा देना है तो उसका मुक्तान साहूकार के घर में नहीं पड़ेगा। उसी तरह

उत्पन्न होता है, उसमें तो पीपघ को अधिक पुष्टि होती है पर इतना कष्ट सहने की क्षमता नहीं जिसमें वह वस्त्रादिक का प्रतिलेखन करना है और उनको काम में लेता है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के अनछाना पानी पीने का त्याग है, अब वह जो पानी छानता है वह पीने के लिये छानता है पर दया के लिए नहीं। यदि वह न छाने तो दया का तो अच्छा पालन होता है क्योंकि नहीं छानेवा तो वह पी भी नहीं सकेगा, इसलिए वह पीने के लिए छानता है वह धर्म नहीं है।

(भिक्षु दृष्टान्त २२६)

२२६ कई लोग कहते हैं—‘साधु का धर्म और श्रावक का धर्म भिन्न-भिन्न है।’ स्वामीजी ने कहा—‘चौबे, पाचवें, छठे गुणस्थान की और तेरहवें गुणस्थान की थड़ा तो एक है पर स्पर्शना अलग-अलग है। जैसे पानी में अज्वाय के अमलग जीव है, और ‘नीलण’ (काई) के अनन्त जीव है, इनकी हिमा करने में पाप कर्म का बन्ध होता है, यह थड़ा तो सबकी समान है लेकिन चौबे, पाचवें गुणस्थान वाले तो पानी का आरम्भ समारम्भ करते हैं और साधु के हिमा का त्याग होता है इसलिए स्पर्शना भिन्न भिन्न है। अगर थड़ा में अन्तर पड़ जाये तो चौबे पाचवें गुणस्थान वाला पहले गुणस्थान में आ जाये।’ आत्मा की क्रमिक विभुति को गुणस्थान कहा जाता है।

(भिक्षु दृष्टान्त २२७)

२२७ साधु का गृहस्थ के साथ केवल धार्मिक कामों में ही सम्बन्ध है। इस पर स्वामीजी ने कहा—‘जैसे मरा हुआ व्यक्ति काम में नहीं आता, वैसे ही साधु गृहस्थ के सामाजिक कामों में सहयोगी नहीं बन सकते। साधु के काम में कोई व्यक्ति पाच रुपये भूल गया, उन्हें दूसरा व्यक्ति उठाकर से गया, साधु जानते हैं फिर भी वह वाक्य पुष्टिगा तो साधु नहीं बनाएंगे। साधु तो एक धर्मोपदेश और धार्मिक सहयोग देने के ही अधिकारी हैं।’

(भिक्षु दृष्टान्त २२८)

२२८ एक बार पानी में बहुत लोग समझकर तेरापपी श्रावक बने। तब विरोधियों ने प्रचार करना प्रारम्भ किया कि विजयचन्द्रजी पटवा रुपये देकर इनको तेरापपी बना रहा है।

स्वामीजी ने जब किसी विपक्षी भाई ने उक्त बात पूछी तब उन्होंने कहा—‘जब तुम्हारे श्रावक रुपये के लिये तेरापपी बन जाते हैं तो समझना चाहिये कि उन्होंने तुम्हारी मान्यता को समझा ही नहीं था। यदि वे सब रुपये लेकर ही समझे हैं तो अवशिष्ट श्रावकों की भी आज्ञा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वे भी रुपये मिलने पर आ सकने के अर्थात् दूसरों के अनुयायी बन सकते हैं।’

(भिक्षु दृष्टान्त २२९)

२२९ कई व्यक्तियों ने स्वामीजी से पूछा—‘साधु गृहस्थ को सामाजिक पूर्ण

नहीं करवाने तो फिर पूर्ण करने की विधि क्यों मिथाने है ?' स्वामीजी ने कहा—  
‘एक मूहल (४८ मिनट) समय पर सामाजिक भी पूर्ण हो गई । पूर्ण करने के तो  
दोष की आलोचना करने हैं । आलोचना करना भगवान् की आज्ञा में है । इसलिए  
दोष की आलोचना करवाने में तथा पूर्ण करवाने की विधि मिथाने में दोष नहीं ।  
वर्तमान में सामाजिक पूर्ण होने पर वह उठ कर चला जाता है इसलिए साधु पूर्ण  
नहीं करवाने ।’

(भिवरु दृष्टान्त २८६)

२१०. किसी भाई ने स्वामीजी से कहा—‘मुझे यह सोचना हुआ गुरुत्व साधु  
की बहुरता (देता) है जब तो साधु से लेने है पर एक छान के छाने पर पर नव  
आए भी उनके हाथ से बिना नहीं लेते, पर भी ‘अमृतता’ (उमके घर की समस्त  
सामान्य अन्नान्तर-अच्छा हो जाती है) मिलने है, इसका क्या कारण है ?’

स्वामीजी ने कहा—‘बहराने में वाय-योग की प्रमुखता है इसलिए उठने-  
बैठने, हलते-चलने अन्नान्तर करना हुआ बहराने, अपना मूह से पृथक् दे दे और साधु  
मित्रा के लिए तनकर हो जाये तो घर अमृतता करने है । साधु मित्रा के लिए  
उपयुक्त न हो तो वह व्यक्ति ही अमृतता होता है । मुझे यह सोचना बचन का योग  
है, इसलिए बोलने से अन्नान्तर होती है । उसका घर तथा बोलने वाला अमृतता  
नहीं होता ।’

‘उत्तराई’ मूह में कहा है—‘कोई व्यक्ति निम्न करना हुआ दे तो साधु से  
सकता है, अब निम्न करना हुआ वाला देता हुआ सोचना है जब वह कोन-भी मरना  
करता है ? इसलिए बोलने की मरना से घर अमृतता नहीं होता तथा उसके हाथ  
में भी लेने में दोष नहीं है ।’

(भिवरु दृष्टान्त २८०)

२११ किसी दाता ने हर्ष सहित साधु की भी बहराया । साधु की अगाधधानी  
में उममें पककर अनेक भीटियां मर गईं तो उसका पाप साधु की समेता पृत दाता  
की नहीं । यदि साधु ने वह भी स्वयं न खाकर हर्ष सहित तपस्वी मुनि को दे दिया  
तो उसका मुनाफा (तीर्थंकर गोत्र उपार्जन आदि) उसको ही हुआ । मुनाफा और  
नुकसान अपने-अपने शुभाशुभ भावानुसार ही होता है ।

(भिवरु दृष्टान्त ११७)

२१२ किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—‘आप किसी को नियम दिलाते  
हैं, यह बाद में नियम भंग करेगा तो उसका पाप आपको समेता ।’

स्वामीजी ने कहा—‘जिस प्रकार किसी साहूवार में भी रुपये का कपड़ा बेचा  
उममें उसको काफी मुनाफा हुआ । अब यदि वह लेने वाला उससे दुपुला लाभ  
उठाना है तो वह मुनाफा साहूवार को नहीं मिलेगा, अगर वह उस भास को आग  
में जला देता है तो उसका नुकसान साहूवार के घर में नहीं पड़ेगा । उसी तरह

हमने किसी व्यक्ति को स्वामि दिनाया तो उमरा साथ हमें तो मिल चुका । बाद में लेने वाला । नियम का सम्बन्ध पालन न करेगा तो दोष उसे ही लगेगा पर हमारे नहीं लगेगा ।'

(भिक्षु दृष्टान्त ११६)

२३३ कई विरोधी लोग कहते हैं—'भीषणजी की ऐसी श्रद्धा है कि वरने के बचाने के बाद में वह कूपने खाया । कृष्ण पानी पियेगा, दूध आदि अनेक आरम्भ-समारम्भ करेगा उसका पाप बचाने वाले को लगेगा ।' स्वामीजी ने कहा— हमारी मान्यता तो इस प्रकार है—अमरणी जीव को बचाने के बाद वह अनेक आरम्भ-समारम्भ करेगा उसकी अनुमोदना का पाप उगी समय भगवान ने देखा उनका उसको लग चुका । लेकिन तुम लोग किसी को तपस्या की धारणा करवाने हो कि आगे होने वाली तपस्या का धर्म इस होगा । ऐसा सोचकर तुम उसे धारणा करवाने हो, तुम्हारी इस मान्यता के अनुसार अमरणी जीव को बचाने के बाद वह आरम्भ-समारम्भ करेगा उसका पाप तुम लोगों को लगेगा क्योंकि जब आगामी काल का पीछे में धर्म होता है तो पाप भी लगेगा ।' भगवान ने कहा—'प्राणी को धर्म और पाप शुभाशुभ भावनानुसार वर्तमान में ही होता है पर वहने पीछे नहीं ।'

(भिक्षु दृष्टान्त ११७)

२३४ किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से कहा—'वर्तमान में जो साधु-माधिया हैं उनमें अनेक प्रकार के अवगुण दिखाई दे रहे हैं । कई ईर्ष्या, भाषा एवं एवशादिक समिति में स्थलना करते हैं, बदयो में शोध, मान, माया और लोभ की विशेष मात्रा है, इत्यादिक...' स्वामीजी ने उसे दृष्टान्त द्वारा समझाते हुए कहा—'एक साहूकार ने हजारों रुपये लगाकर एक नदी हवेसी बनवाई । उसे जाली मरोखी और बिप्रादिक से इतना गुणोभिन किया कि उसकी महिमा सुनकर हजारों लोग उसे देखने के लिए आने और मुक्त-कटो से उसकी प्रशंसा करते । वह एक भरी आवा और पाखाना देखकर बोला—सेठजी ! हवेसी में जो पाखाना (तोबागद) बना है, वह अच्छा नहीं है । सेठजी ने कहा—पाखाना तो मल-मूत्र के विमर्शन के लिए बनाया गया है उसमें अच्छी वस्तु कैसे होगी । तुम्हारा ध्यान हवेसी के अन्य रमणीय स्थानों पर न जाकर इसकी तरफ ही गया, क्योंकि तुम्हारा दृष्टि-बोग ऐसा ही है ।'

स्वामीजी ने उक्त उदाहरण को घटित करते हुए कहा—'साधु के सपन और तरा तो हवली के समान है । छद्मस्वप्ना के कारण यत्किंचिन् स्थलनाए होती है

१. उदाहरण आदि तपस्या के पहले दिन जो विशेष भोजनादिक किया या कर-वाया जाता है, उसे धारणा कहते हैं ।

वे पादना के तुल्य हैं। जो गुणवाही व्यक्ति हैं वे तो सवम त्वा आदि गुणों को देखते हैं और उनकी गरिमा मानते हैं, जो छिद्रान्ध्रों होते हैं उनकी दृष्टि एतन्मात्र अवगुण की तरफ हो जाती है।

(भिकवु जज्ञ० रसायण डा० ३६ पा० १ से १८ के आधार से)

२३५ कोई माधु उद्योग न रहने में बार-बार बूटि कर नेता है पर उसकी नीति अन्ध है सो साधु ही है। हम विषय में स्वाधीन ने कहा—उपाध्व में अनाज का दाना पड़ा था उसे देखकर गुरुजी ने एक साधु को कहा—‘गिर्य। यह धान्य का दाना पड़ा हुआ है हम पर पैर मत देना।’ उमने कहा—‘हा गुरुदेव मैं नहीं दूंगा।’ थोड़ी देर बाद आते आते समझ उसने उम पर पैर दे दिया।

गुरु—गुरुको मना किया था फिर पैर क्यों दे दिया?

गिर्य—स्वामीनाथ! उपयोग न रहने में भूल हो गई। दूसरी बार फिर पैर समने में गुरु ने उसे सजग किया। वह फिर बोला—‘गुरुदेव भूल हो गई मैं फिर ध्यान न रख सका।’ गुरुजी ने कहा—सावधान रहना, अब की बार पैर लग गया तो बल छह विषय का परित्याग करना होगा, उसने गुरुवाणी को स्वीकार किया पर तीसरी बार फिर अमावस्यानी से पैर लग गया।

हम तरह उपयोग न रहने में उनकी अनेक बार गलती हो गई पर उनकी नीति शुद्ध है, दोषों की रक्षा नहीं, इसलिए वह अमाधु नहीं है। पर जो मोहनीय कर्म के उदय में जान-बूझकर बार-बार दोषों का सेवन करता है, दोषों की रक्षा करता है और दोषों का प्रायश्चित्त भी नहीं करता, वह अमाधु होता है।

(भिकवु दृष्टान्त २१४)

२३६ भगवान् महावीर ने भगवनी सूत्र के २५ वें श्लोक में कहा है—‘साधु साधियों के चरित्र-पर्याय में अनन्त गुणा अन्तर रहता है। कईयों के चरित्र की निर्मलता कम और कईयों के अधिक होती है। फिर भी वे सपथी हैं और उनमें छटा गुणस्थान है। ज्ञाना अग्रयण १० में एक-एक माधु को वृष्णपल में एकम के बाद की पावन् एक-एक को पूनम के चन्द्रमा की उमा दी है।’ पड़िये स्वामीजी द्वारा रचित पद्य—

जीव दृष्टि पञ्चवा में होय ए, प्रवट शनक पञ्चीसमो जोय ए।

केर जनन गुणो पञ्चवा भाय ए, तो पिण आग्नि गुण मुखदाय ए॥

दशमे धेन ज्ञाना में दयाल ए, कह्यो चन्द दृष्टान्त कृपास ए।

एकम आदि पूनम चद पेख ए, चलि विद पय चद विवेख ए॥

(भिकवु जज्ञ० रसायण डा० ३६ पा० ३५, ३६)

२३७. किसी व्यक्ति ने आवेश में आकर स्वामीजी ने कहा—‘तुम्हारी श्रद्धा और आचार में प्रपञ्च बहुत है।’ स्वामीजी बोले—‘हमारी श्रद्धा तथा आचार तो शुद्ध हैं, पर तुम्हें ऐसा ही दिखाई देता है। जिस प्रकार आँखों में पीतिये का रोग

होने से सब चीजें पीली-पीली ही दिखाई देती हैं, उसी प्रकार स्वयं की थोड़ा बग़ड़ मुक्त होने से दूसरे की थोड़ा बुरी लगती है।'

(भिक्षु दृष्टान्त ३००)

२३८. किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—'आप जहाँ जाते हैं वहाँ लोगो में घसके क्यों पड़ जाते हैं?' स्वामीजी बोले—'जिम प्रकार गाँव में गारुडी (मन्त्र-वादी) आकर कहता है कि कन सुबह डाकनियो को नीचे बाँटे में जनाऊगा तब डाकनियो के तथा उनके जानिजनों में घसके पड़ते हैं पर दूसरे लोग तो खुन होते हैं। उसी तरह साधु गाँव में आने से शिथिलाचारी माधुओं के तथा उनके अनुयायी श्रावकों के दिलों में घसके पड़ने हैं परन्तु हनुकर्मों प्राणी तो बहुत प्रमत्त होते हैं और अपने भाग्य को मराहने हैं कि हम साधुओं का व्याख्यान सुनेंगे, सेवा करेंगे, ज्ञान का अभ्यास करेंगे तथा पात्रदान का लाभ लेंगे।'

(भिक्षु दृष्टान्त २६६)

२३९ जो मिथ्या पक्षपात करते हैं उन्हें माधु अच्छे नहीं लगने। इस पर स्वामीजी ने कहा—'एक ज्वर बासा आदमी जीमनवार में भोजन करने के लिए गया।' वह दूसरे लोगो को कहने लगा—'पकवान तो सारे कड़वे हैं।' सोच बोले—'हमें तो पकवान भीठे लगने हैं पर तुम्हारे शरीर में ज्वर है इसलिए तुम्हें कड़वे लगते हैं। इसी तरह माधु प्रिय नहीं लगने का कारण है कि वे मिथ्यात्व रोग की पीड़ा से ग्रस्त हैं।'

(भिक्षु दृष्टान्त ३०३)

२४०. स्वामीजी के साथ चर्चा करते समय एक व्यक्ति न्याय सगत बात को भी स्वीकार नहीं करने लगा तब स्वामीजी बोले—'बैठ ने एक रोगी को पीने के लिए औषध दी और कहा—इसे आज भीच कर पी जाओ। तुम्हारा रोग मिट जायेगा।' रोगी बोला—'मैं इसे मुँह में तो नहीं सूँघा मेरी पीठ पर डाल दो, अगर आपकी दवा अच्छी है तो पीठ पर डालने से असर दिखा देगी।' वैद्यराज ने कहा—'मूर्ख!' इसको पिये बिना तो रोग नहीं मिट सकता।' उसी प्रकार आगम तथा माधुओं के वचनों को हृदयगत करने से ही मिथ्यात्व रूप रोग दूर हो सकता है परन्तु केवल गुनने से ही नहीं।

(भिक्षु दृष्टान्त २९९)

२४१. पीठाड में भीष्मजी स्वामी ने एक गाथा कही—

अवित्त वस्तु नै मोल मरावे, सुमन गुण हूँ खड जी।

महात्रय पाचूई भाषा, सोमासी नो दड जी॥

(माठशावार री चौपई का० १ गा० ५)

मोक्षीरामजी बोहरा ने यह गाथा सुनकर एक व्यक्ति को बुलाकर कहा—'अरे जगु! (जमराज) इधर आ इधर आ। जैसे किसी राजा ने किसी का सम्मान

पर ही लूट लिया और उस पर दण्ड फिर कर दिया। वैसे भीष्मणजी पंच महाव्रत का भग हुआ भी कहते हैं और ऊपर चार मास का दण्ड भी।' स्वामीजी ने कहा—'पांच महाव्रत भग होने पर चार मास का दण्ड आये ऐसा हम गाथा में नहीं कहा है। पांच महाव्रतों का चार मास का प्रावर्धित आये इतना भग हुआ ऐसा कहा है। श्रत्येक गाथा के शब्दों को न पकड़ कर उनके हार्द को समझना चाहिए।' इस तरह स्वामीजी ने उनको समझा दिया।

(भिक्षु दृष्टान्त २८४)

२४२. कुछ नामधारी साधु लोगों को सच्चे साधुओं से बहकाते हैं। इस पर स्वामीजी ने कहा—'मृग पुरोहित ने अपने बेटों को पहले बहकाया था। उसने उन्हें कहा कि साधुओं का कभी विश्वास मत करना, उनसे हमेशा दूर ही रहना। पिता की बात मानकर बेटे साधुओं से भय खाने लगे। एक बार जब साधुओं का सम्पर्क हुआ तो उनको बयार्थ ज्ञान हुआ और वे वाप की बात को मिथ्या मानकर दीक्षित हुए। उसी तरह सच्चे साधुओं को जो बुरे बताते हैं उनकी बात सुनकर उत्तम प्राणी सच्चे साधुओं का संपर्क कर सही तत्व की पहचान कर लेते हैं।'

(भिक्षु दृष्टान्त २०४)

२४३. कच्छ देश वासी टोकम डोमी के अनेक बोलों में शका पड़ी। वे २६ पन्ने शकाओं के लिखकर लाये। स्वामीजी से बर्चा-बात करते-करते लगभग २६ पन्ने की शकाएँ तो मिट गईं। स्वामीजी के चरणों में झुककर वे गर्गद् स्वर में बोले—'भगवन् ! आप न होने तो मेरी क्या गति होनी ? आप तो तीर्थंकर के समान हैं, मेरे प्रश्नों का आपने बहुत सुन्दर ढंग से समाधान किया है, इस प्रकार उन्होंने बहुत गुणगान किया।'

स्वामीजी की बनाई हुई जोड़े (रचनाएँ) सुनकर वे अत्यन्त प्रभावित हुए और बोले—'ये जोड़ें तो आगमों की नियुक्तियाँ ही हैं।' बहुत दिन स्वामीजी की सेवा करके वापस कच्छ देश में गये।

(भिक्षु दृष्टान्त १६८)

२४४. सध से बहिष्कृत मुनि वीरभाणजी ने दुद्राह के एक भाई को गवासील बना दिया। समयान्तर से स्वामीजी वहाँ पधारे तब वह आया तो सही, पर भमस्कार नहीं किया। स्वामीजी ने उसे सामायिक करने के लिए कहा। तब वह बोला—'सामायिक तो नहीं करूँगा, क्योंकि सामायिक में कदाचित् मेरे भूत् से आपके लिए 'स्वामीजी महाराज' शब्द निकल जाये तो मुझे दोष लगे जायें।'

स्वामीजी ने कहा—'एक मुहुर्त का संबर कर लो।'

तब उसने मवर किया। स्वामीजी ने एक शका का समाधान कर उसे निशक बना दिया। वह अपने अविनय के लिए क्षमा मांगता हुआ पैरों में गिर पड़ा।

(भिक्षु दृष्टान्त १४५)

२४५ बेसया में अवधू और मंद-बुद्धि एक नगजी नाम का भाई था। वीरभाणजी ने स्वामीजी से कहा—'मैंने नगजी को सम्यग्-बुद्धि बना दिया है।' स्वामीजी बोले—'सम्यक्-बुद्धि बने बैसी तो उसकी बुद्धि भी नहीं थी तो उसे कैसे सम्यक्-बुद्धि बनाया और क्या तत्त्वज्ञान सिखाया? वीरभाणजी बोले—'ओपगणा दोरी भर जीवा' यह हाल तब 'नन्दन मणियारे' का व्याकरण निघाण।'

कुछ समय बाद स्वामीजी केनवा पधारे तब नगजी को पूछा—'तुमने नन्दन मणियारे का व्याकरण सीखा है, अब बनाओ वह 'मणिया' सफ़ाई का है, सोने का है या कड़ाही पाना का?' नगजी बोले—'मणिया तो सोने का ही होना चाहिए क्योंकि उगका धर्मन शास्त्रों में बनलाया गया है। फिर स्वामीजी ने पूछा—'ओपगणा की ढाल में आया है—'साधवियों ने जइणो बालों' यहाँ में धर्मियों (धमनी) कौन-सी है? गाड़ी मुझारो वाली छोटी है अथवा स्वामीय मुझारो वाली बड़ी?' नगजी ने कहा—'ये तो बड़ी धर्मिया ही होनी चाहिए क्योंकि शास्त्रों में बतायाई गई है।'

स्वामीजी ने मन में समझ लिया कि वीरभाणजी ने नगजी को सम्यक्-बुद्धि बनाने की बात कही थी वह सत्य है। जिस प्रकार कोरडू (अ-वर्धित बड़ोर मूत, माँ) घाव नहीं सीजता उसी तरह बुद्धि के बिना मनुष्य सम्यक्-बुद्धि नहीं बन सकता।

(भित्तु दुष्टान २२०)

२४६ पुर में गुनार अहि को चर्चा के प्रसंग में स्वामीजी ने पूछा—'सम्यक्-बुद्धि को पाव सकता है या नहीं?' गुनार अहि ने कहा—'सम्यक्-बुद्धि को पाव नहीं सकता।' स्वामीजी—'सम्यक्-बुद्धि मियून का सेवन करे तो?' गुनारजी—'पाव ना नहीं सकता पर एग म कोवनीय नहीं है।' स्वामीजी ने तीसरी बार पूछा—'जिन पशु-पक्षियों (जइण) का प्रकर में तो?' इत्यादिक विविध प्रश्न पूछे पर वे सब 'नहीं' देन में प्रसमये रहे। कोषाग्र में आकर अकरक बोले दुग बोले गए। जिसका सब शर्तन म बावधीन करने में ही जहा का समाधान हो सकता है।

(भित्तु दुष्टान २०)

२४७ स्वामीजी ने सोता ने कहा—'इस अंग बुद्धि वाले अहि को सम्यक्-बुद्धि।' स्वामीजी बोले—'दात, मूत, मोड़ और चने की होती है पर तेह को नहीं देती। ईस ही इत्यादि बुद्धिमान् मनुष्य ही धर्म के मार्ग को समझ सकता है पर मंद-बुद्धि नहीं।'

(भित्तु दुष्टान १३३)

२४८ अंग मध्याह्न के खावकों में स्वामीजी से कहा—'आज एग बान का मार (मिट्टी) बिहा रहे।' स्वामीजी बोले—'जिन्हें बान भी नहीं दियाई देना उन्हे मार बिहाय कर केन दियाय? अब अंधाक्यों अदि बड़े दोहों का भी पता नहीं

चलता तब छोटे दोप तो समय में ही कैसे आये ?

(भिक्षु दृष्टान्त १७४)

२४६. जिनका श्रद्धाचार ठीक नहीं वे कहते हैं—‘भीषणजी हमें साधु नहीं मानते ।’ स्वामीजी ने कहा—‘काली तो राव काले वर्तन में बनाई, अमावस की काली रात, ज़ोमने बाना तथा परोमने बाना अर्थात् भोजन करने वाला कहता है—ध्यान रखना, नहीं ककड़, सरुडी, जीव-जन्तु आदि भोजन में न आ जायें । परन्तु सब जाने ही जाने मिने कहा क्या टाला रह सकता है, जिनके मुँह आचार एवं विचार नहीं वे वस्तुन साधु व श्रावक कैसे हो सकते हैं ?’

(भिक्षु जग० रगायन छा० ३४ गा० ११ से १५ के आधार में)

२५०. जहाँ तेज हटा बनमी हो बड़ा पर आटा पीसने की घटी रखी हुई है । एक बहिन पीसती जाती है और आटा उड़ना जाता है । रात भर पीसने के बाद जब वह आटे को इकट्ठा करने लगती है तो उसको कुछ नहीं मिलता । वह तो ‘रात भर पीसा और हकनी में उसेरा’ वाली कहावत को खरिनायें करती है । जो माधु-घन तथा श्रावक धन को स्वीकार कर जान-बूझकर शोष लगाने हैं उनका प्रायश्चित्त नहीं करते तथा दोषों की ध्याना करने हैं उनके पास में विशेष कुछ नहीं रह पाता ।

(भिक्षु दृष्टान्त १७५)

२५१. एक वन में एक सिंह रहता था । एक दिन उसे भय के लिए घूमने-घूमने एक सियार मिला । शेर उसे खाने लगा तब वह मिथार बोला—‘महाराज ! मेरे छोटे से शरीर में तो आपके कनेश भी नहीं हो सकेया, अब मैं आपके लिए कोई मोटा-झाडा शिकार ले आता हूँ, कुछ देर आप मुफ्त में विराजें ।’ सिंह ने उसकी बात मान ली । मिथार को फिरते-फिरते एक घघा मिला । उसने उससे कहा—‘हमारे जंगल में दादगाह (सिंह) का मंत्री मर गया है, उसे प्रधान की आवश्यकता है इसलिए तुम मेरे साथ चलो, तुम्हें वह मंत्री का पद दिया जाएगा । पद का नाम तुमने ही गधे का मन लमचा पत्रा और वह झटपट सियार के साथ हो गया । उधर सिंह भूखा तो बैठा ही था, गधे को आने देखकर घड़ूना हुआ सामने आया कि गघा धक्काकर भो-भों करता हुआ वापस दौड़ गया । मिथार ने सिंह से कहा—‘मैं तो वही मुश्किल में शिकार लाया और आपने शीघ्रता की निमने वह भागकर चला गया । अब दुबारा मैं फिर जाता हूँ, किन्तु आप अल्प-बाजी मन करना ।’

मिथार वापस घूमता-घूमता गधे के पास आया और बोला—‘अरे घंघ्या ! तुम तो भोजने के भोजे ही रहे, हमारा राजा तो भावी प्रधान समझकर तुम्हारा स्वागत करने के लिए सामने आया और तू मूर्खता कर इस प्रकार भाग पड़ा हुआ ।

आई थी ?

आगन्तुक—वह वाहन थी और अभी कोई एक पहल पहने ही त्रिम मार्ग में तुम आये हो, 'उगी मार्ग' में वह सौटी थी ।

विनीत छात्र—वह किस वाहन पर चढ़कर आई थी ?

आगन्तुक—द्विनी पर ।

विनीत छात्र—वह दोनों ही आश्रमों में देखनी होगी ?

आगन्तुक—मही, वह बानी है ।

विनीत छात्र की ही गव बान छोक निकली तो अविनीत छात्र मन में बहुत दुःखित हुआ । दोनों बड़ी मात्राव के किनारे वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे कि एक बुद्धिवा पानी भरने के लिए बरतें आई । वह आना पड़ा भर सौट रही थी । दोनों आश्रम छात्रों को जब वृक्ष बैठा देखा तो वह भी उनके पास बनी आई । पहिल समझकर लगने नमस्कार दिया । उसके दिव में एक बहुत बड़ी अर्था थी । वह उनमें बने लगी—'पहिलत्री' मेरा लडका विदेश गया है । आज बारह वर्ष पूरे हो रहे हैं । उमका कोई भी समाचार नहीं है । आप पढ़े-लिखे हैं, अब बुद्धिवा पर दया कर वह बताने की कृपा करें कि वह मनुजब बय पर सौटिया ?

अपनी वेदना की बात कहते हुए बुद्धिवा को आश्रम दरवाजा धाई । गरीर धुनने लगा । उमका परिणाम यह हुआ कि निर पर रखा हुआ पानी में भरा पड़ा गिर पड़ा और बर कूट गया । अविनीत छात्र तत्काल ही बोल उठा—'बुद्धिवा ! मेरा बेटा भर गया, वह अब घर नहीं सौट मरेगा ।' अविनीत छात्र के इस कथन में बुद्धिवा के धीमन्न के वाक्य को तोड़ दिया । वह और अधिक खिन्न हो गई । वह कथन मधुसूक्त ही आश्रम पट्टबाने माना था । किन्तु दूसरे ही क्षण विनीत छात्र बोल पड़ा—'मातात्री ! बिना मन करो आपका लडका आनन्द में है और अभी आप तब घर जाओगी तब आपको यह घर पर बैठा मिलेगा ?' बुद्धिवा को इस कथन में बहुत गंभीर हुआ । उनका दुःख हलका हो गया । वह दोड़ती हुई घर गई । उपांगी अपने आगमन में धुमनी है क्योंकि अपने हृदयोंने साल को बरा बैठा देखनी है । वह तो बानी उठाने लगी । बैठा । विन्यास कर मैं अभी जाई । वह बहती हुई उठे पंगो दोड़ी । तालाब पर आई और विनीत छात्र के घरों पड़ने लगी । बोली—'यह पहिलत्री आप तो बड़ाजानी है । मानों सारा मगार आपकी आयों के सामने ही नाथ रहा है । आपका कथन पूर्णतः मजबूत है । मेरा लडका आज जबकि मैं घर पट्टुची, वहा बैठा मेरी ही प्रतीक्षा कर रहा था ।'

बुद्धिवा का यह कहना अविनीत छात्र पर लमावे का काम करने लगा । वह मन ही मन उबलने लगा । दोनों ही बार यह मज्जा निकला और मैं झूठा । पुन ने अध्ययन कराने में मधुसूक्त ही पदागत रखा है । बुद्धिवा विनीत छात्र में अपने घर बचने के लिए आग्रह करने लगी । वह कहा गया भी । बुद्धिवा ने अपने साइने

बेटे से सारी घटना कह सुनाई। बुढ़िया और उस लड़के ने उस छात्र का बहुत सम्मान किया।

अपने कार्य में निवृत्त होकर दोनों ही छात्र गुरु के पास लौटे। अविनीत छात्र पहुंचते ही गुरु पर बरसने लगा, पक्षपात का आरोप लगाने लगा। बहुत बुरा-भला बोलने लगा। गुरु ने उसे शान्त करते हुए पूछा—आखिर घटना क्या है वह तो बनावटी ताकि उसका कुछ उपचार किया जा सके ?

अविनीत छात्र ने दोनों घटनाएं सुनाई। वह बोला—‘आपने हमें ज्ञान अधिक दिया, अतः इसका कथन सत्य प्रमाणित हुआ और मुझे पूरा ज्ञान नहीं दिया, अतः असत्य।’

गुरु ने दोनों ही छात्रों से पूछा—‘दोनों ही घटनाओं का फलित तुम दोनों ने किस आधार पर निकाला ?’

अविनीत छात्र ने पहली घटना के बारे में कहा—‘अनीन पर बड़ा पाव बिज्ञित था। वह हाथी के अतिरिक्त और कितना हो सकता था। मैंने तुरन्त कह दिया कि यह पाँच हाथी का है।’

द्वितीय छात्र से गुरु ने पूछा—‘तुने किस आधार पर कहा ?’ द्वितीय शिष्य बोला—‘गुरुवर ! उन बिहू में ईषद्व्यः (बोझ बोझापन) था। हाथी के पाँच में वह आद्व्यः नहीं होती, जब कि हविनी के पाँच में होती है। हाथी पर राजा-महाराजा आदि बड़े ही ध्यक्षित सवारी किया करते हैं, अतः मैं बड़ी आसानी से यह समझा दिया।’

गुरु ने द्वितीय छात्र से बीच ही में पूछा—‘रानी का गर्भवती होना तुने किस आधार पर कहा था ?’

द्वितीय छात्र—‘गुरुजी ! मामूम पड़ता है, रानी एक जगह नीचे उतरी थी। वहाँ उसकी हुपेमी जमीन पर टिक गई थी, अतः हाथ की रेखाएं बाजू में स्पष्ट दीखती थी। मैंने उन रेखाओं के आधार पर ही उसे सद्यः-प्रभुता (शीघ्र सम्मान पैदा करने वाली) समझाया।’

गुरुजी—हविनी के बानी होने का तुमने कैसे ज्ञान हुआ।

द्वितीय छात्र—मार्गवर्ती चौंके व लंगरों की वह खानी हुई गई, ऐसा उन चौंकी में ही ज्ञान होता था किन्तु जगने एक ओर के ही छाये दोनों ओर के नहीं। यदि उनके दोनों छाये होती तो दोनों ओर के चौंके छाती।

गुरु ने दूसरी घटना के आधार के बारे में दोनों छात्रों से पूछा तो अविनीत ने कहा—‘बुढ़िया के गिर पर पड़ा था। जान करने हुए वह घुट पड़ा था, अतः उसका परिणाम तो मरी होना चाहिए था कि उसका लड़का भी मर गया।’

गुरु का सबसे पावर द्वितीय छात्र ने कहा—‘गुरुवर ! यदि वह मरी है कि बड़ा घुट गया था, किन्तु उस समय की प्रवृत्ति कुछ बिन्न थी। मैंने बाएँ ओर

नकर डानी ली जाय हुआ—आवाज आवाज में मिल रहा था, आर्त्त बहूत खण्ड था। उसमें चिन्तित मान भी मिलाया नहीं थी। बड़ी मुश्किली हवा बन रही थी। पट्टे के फूट जाने से पानी बहकर तालाब में जा मिला था और धरे की मिट्टी मिट्टी में। आ मुझे यह सारा प्रतिभाविता हुआ कि बुद्धि का गहरा भी उसे मोह ही मिल जाना चाहिये।

गुरु ने यत्ननाश के साथ स्तंभ करने हुए अविनीत छात्र से पूछा—'क्यों शिष्य ! मैंने ये बातें इतने बच बताई थीं। अविनीत छात्र का फिर श्रुत गया। गुरु ने कहा—'निरभियानता और बड़ों के प्रति समर्पण भावना ही मनुष्य को आगे बढ़ाती है।' स्वामीजी ने उस घटना को निम्नोक्त पद्यों में व्यक्त किया है—  
 केइ विनीत अविनीत भग्न दोनू गुरु कर्ने, पिय रिनी सहित भगियो विनीत हो।  
 निग में मूधोई मूडी से मूधो भरव करे, भग-भग ऊधो पटै अविनीत हो॥  
 ए दोनूई बोला में अविनीत मूडी पटवो, साथ उतरियो विनीत हो।  
 जब अविनीत घेव धरवो गुरु ऊगरे, कहै मोने न भणायो दही रीत हो॥

(विनीत अविनीत री चौ० का० १५, २१)

२५५ एक बार एक योगी आसन पर बैठा साधना कर रहा था। उसके पास में ही एक चूहा इधर-उधर घूम रहा था। इनमें में एक बिल्ली उसे शायदने के लिए आई। योगी ने अनुकंपा साकर मन पड़ा और चूहे को बिलाव बना दिया। बिलाव की धुंधराहट को देखकर बिल्ली भाग खड़ी हुई। इनमें में ही एक कुत्ता दौड़ा आया, प्योही बिलाव पर शायदने लगा कि योगी ने उसे शिकारी कुत्ता बना दिया। शिकारी कुत्ते की उछल-कूद देखकर एक भीते में उस पर ताक लगाई। योगी ने उसे सिंह बना दिया। शेर को देखकर भीता भी जान हुयेनी में रखकर भाग गया।

सिंह के पैर में जब चूहे दौड़ने लगे तब इधर-उधर शिकार की टोह में दुष्टि फैलाई। सामने माला हाथ में लिए बैठे योगी को देखकर सिंह छाने को दौड़ा। सिंह की दुष्टता पर योगी का मन तिलमिला उठा, दुष्ट ! मैंने ही तो तुझे चूहे से शेर बनाया और तू मुझे ही छाने को दौड़ता है ? योगी ने मन पड़ा—'पुनर्मूर्तिको भय' की ध्वनि निकालते ही सिंह गायब हो गया, बड़ी चूहा योगी के आस-पास दौड़ने लग गया। चूहे को देखकर फिर बिल्ली आई और उसे चलाकर चलती बनी। योगी का मन अब ध्यान से हटकर उस घटना के मर्म पर जा पहुंचा—'दुष्ट की किनना ही ऊंचा चढ़ाओ आखिर वह अपने उपकारी को ही छल करने के लिए दौड़ता है।'

(विनीत अविनीत री चौ० का० १७ वा० १ से ६ के आधार से)

२५६ यह उस समय की बात है जब जीवन की आधुनिक मुश्किल-मुविधाओं का अभाव था। अच्छे-अच्छे घरों की स्त्रियों को पनपट पर जाकर पानी लाना पड़ता

था। इसलिए घनवान पिता अपनी बेटी की सुविधा को ध्यान में रखकर पानी साने के लिए गढ़वा भी गढ़वा में दे दिया करते थे। एक महाजन की पुत्रवधू पीहर से एक गढ़वा साईं किन्तु वह गढ़वा बड़ा दुष्ट और कुटिल था। भार दोनों से बतराता था। वहां से आजाद होने के लिए उसने एक चाल चली। पानी के बर्तन लेकर घोड़ी ही दूर चलता कि किमी दीवार से टकराकर उन्हें फोड़ डालता। प्रतिदिन के इस खेल से घर वाले लज आ गये। मिट्टी के घड़ों की जगह अब सावे और पीतल के कलश उस पर रखे जाने लगे, किन्तु फिर भी वह उल्टा-सीधा चल कर पानी गिरा देता, बर्तनों में मोच डाल देता। उसकी इस दुष्टता से सभी हैरान हो गये करें भी क्या? आखिर गढ़वे के कान कतर कर उसे खुला छोड़ दिया गया। गढ़वा अपनी चाल की सफलता पर भी भो अहमाम करता हुआ जंगल की ओर शौच गया। हरी-हरी पास! छाया सरनो का ठण्डा पानी, स्वन्न बातावरण, उम्मुबत बिहार, उगने को जीवन का स्वर्ग पा लिया। बोड़े दिनों में खूब मोटा-ताजा बन गया।

एक दिन कुछ सुकिए (बोहरे) बाड़ी में सामान सादे उधर से निकले। जंगल में ही उनका पड़ाव हुआ। बाड़ी से बैलों को खोलकर घरने के लिए छोड़ दिया गया। दोनों बैल जो परस्पर मामा-भानजा थे, उस गढ़वे के निकट जा पहुँचे। गढ़वे ने उन्हें देखा और अपना साथी बनाने के लिए बड़े पीठे शब्दों में उन्हें भड़काने लगा—'देखो! तुम रात-दिन इतना भार ढोते हो, उस पर भी भार खाते हो, तुम्हारी पीठ पर नील कम गई है कितना बन्ट शेलते हो और मे स्वन्न जीवन का भानन्द लेता हूँ। मस्ती से वन-बिहार करता हूँ। बीनो तुम्हारी क्या दृष्टि है? मेरे साथी बनोते?'

भानजे ने तो उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। किन्तु मामा उसकी बात पर प्रसन्न हो गया। गढ़वे ने उसे अपने पजे में ले लिया। छूटने के लिए बदमासी निघलाई। भानजे ने मामा को बहुत लपकाया। भानिक हमारी सेवा लेता है तो करता भी है। हर प्रकार से हमारा ध्यान रखता है। भानिक के साथ इस प्रकार दुर्नीति नहीं करनी चाहिए, किन्तु मामा ने एक नहीं मानी, चूँकि उसे तो आजादी का मोम घोष रहा था।

बोहरा ने भोजन करने बैलों को बाड़ी में जोड़ा। सामान सादकर चलने लगा तो एक बैल (मामा) ने जोम निजाल दी और जोर से साँस फुमाकर पीने लुफ़क गया। आखिर बोहरों ने देखा बल भरने जाना है करने के बाद नाम नहीं आया, इसलिए छुरी से मारकर बाड़ी में डाल दिया।

एक बैल से बाड़ी चले बीने? छपर-छपर खोज पी.पी. पास ही मे. बट्ट मण्ड, घूम रहा था, उसे पकड़कर बाड़ी में जोड़ दिया। बड़े ने उस बैल की दया देयी थी, इसलिए खुपचाप सरपट शौचने लगा। सारी कुटिलता भूच गया। उसका दृष्ट



स्वीकार कर लिया। शाबोन ने उसने पाँच अक्षर लिखे—'बेटा न बेटी' और उसे दे दिया। बेटा, बेटी या कुछ भी न होने पर तीनों अवस्थाओं में उसकी कामना सफल होगी।

इस प्रकार जो अविनीत होता है वह गुरु के भक्त एवं यद्वान् ध्यात्रियों के सम्मुख गुरु के गुणानुवाद करता है और जिसे अपने वश में हुआ जानता है उसके सामने गुरु के अवर्ण्यवाद बोलता है। ऐसी दुर्गरभी बात करने वाले को इसामीजी ने सावरिया डाकोत की उपमा दी है।<sup>१</sup>

२५८. दो अनाथ शत्रुय बालक भटखते ठोकरें खाने किसी राज्य की शरण में जा पहुँचे। राजा ने उनके चेहरे पर कुछ होनहार देखाए देखी, उन्हें अपनी छाया में पाल-पोषकर पढ़ाया सिखाया। बचाने होने पर दोनों को सहमीलदार बना दिया फिर सूबेदार और आखिर में छोटे-छोटे राज्य देकर अपना सामन्त बना दिया। राजा को उनसे बड़ा स्नेह था। राज्य में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा और छाक थी। राजा जिसे बढ़ाना चाहे उसे कौन रोक सकता है।

एक बार दोनों ने राजा का कोई अपराध हो गया। जिसमें राजा का मन विष गया और दोनों सामन्तों का समस्त अधिकार छीनकर उन्हें निकाल दिया।

सामन्त अब इधर-उधर की ठोकरें खाने लगे। एक के दिल में इस घटना का रोष का ज्वार उमड़ पड़ा। वह प्रतिशोध की भावना से अपना दल संगठित करने लगा। स्थान-स्थान पर डाका डालकर, मूट-छसोट करके राज्य भर में आतंक फैलाने लगा।

दुमरे के हृदय में क्षोभ का वेग उठा। उसने अपनी बसती पर परचास्ताप किया। अपनी उस अनाथ दत्ता को यादकर बारम्बार राजा के उपकार की गरिमा गाते-गाते गद्गद् हो उठता। उसने भी अपना सपटन किया। भौंके पर राजा की सहायता करके प्रत्युपकार के लिए श्रुण-मुक्क होने की प्रतीक्षा करने लगा।

डाकुओं का भयकर आतंक राज्य का सरदर्द बन गया। राजा ने अनेक प्रयत्न करके दम्बुदल को पकड़वाया। उसी सामन्त को अपने सामने देखकर राजा कड़-कड़ा उठा। दुष्ट! कृतघ्न! एक दिने मैंने अनाथ को बड़ाकर अपना सामन्त बनाया था, उस उपकार को भूलकर आज तू मेरे साथ ही नमकहरामी करता है? राजा ने उसे फामी का हुक्म दे दिया।

१. गर्भवती ने नहै डाकोतरी, धारे होसी पुत्र अनूप।

पड़ोसण न कहै होसी डोकरी, ते पिण अतत कुरूप ॥

गुर भगता थावक थावका कर्ने, गुर रा गुण बोले ताम।

आपो वश हुबो जाणी तिण कर्ने, ओगुण बोर्ने तिण ठाम ॥

(विनीत अविनीत री चौपई वा० २ दो० २)

कुछ दिनों बाद किसी दूसरे राज्य की सेना इस राज्य पर चढ़कर आई। मार्ग में उसी निष्कासित सामत से भिड़न्त हो गई। उसने सतकारा—‘आओ अभी वह राज्य बहुत है। पहले तुम मेरे से ही भिड़ लो।’ युद्ध ठन गया। घड़ाग्रह वीर लड़ने लगे, सेना का मुखिया रणक्षेत्र में रह गया। सेना में भगदड़ मच गई। सामत ने अपने राजा के नाम की विजय पताका फहराई।

राजा को जब इस घटना की खबर लगी तो अपने सामत की कृतज्ञता पर बाग-बाग हो गया। स्वयं उसके निकट आया और सम्मान देकर उसे अपने राज्य में ले गया। सर्वोच्च सामन्त के रूप में अब उसका प्रभाव समूचे राज्य पर छा गया।

सबभुज ओ कृतघ्नी होते हैं वे किये उपकार को भुलाकर अगारे की तरह अपने आपको जलाते हैं। वे अंत में दुखी होते हैं किन्तु जो कृतज्ञ होते हैं फूलों की तरह उनकी सौरभ ससार में फैलती है और सर्वत्र उनका सम्मान होता है।

(विनीत अविनीत री चौ० डा० १७ गा० १० से ३१ के आधार से)

२५६ एक नगर में किसी बदमाश आदमी ने अपनी कुटिल चाली से हुमाया मचा रखा था। एक बार वह कोतवाल की पकड़ में आ गया। गिड़गिड़ाकर माफी मागने पर नाक काट के निकाल दिया गया। वह किसी दूसरे शहर में चला गया। इसकी नाक कटी देखकर लोग हसते मजाक करते। इस प्रकार नकटा एक तमाशा-सा बन गया। उसने दो चार साथी बनाने के लिए एक डींग रचा, सुबह सूर्य के सामने घड़ा होकर आकाश की ओर सीध बाघकर हाथ ओड़ता। लोगो ॥ पूछा—‘अरे नकटा क्या देखता है?’ वह अकड़ कर बोला—‘बुप रहो! मुझे भगवान् के दर्शन हो रहे हैं।’ लोगो ने कहा—‘कहाँ है हमें तो नहीं दीखता।’ नकटा—‘मेरी सीध में आकर देखो?’ लोगो ने सीध में घड़े होकर देखा तो कहीं भी भगवान् दिखाई नहीं दिया। नकटे ने कहा—‘भगवान् बीसे भी कैसे! तुम्हारी नाक जो आड़ी आ रही है। लोग हग पड़े—देवकूफ! नाक भी कभी आँखों के आड़े आती है? नकटा—सच कहता हूँ, अभी भगवान् नहीं दीख रहे हैं।

एक शराबी ने कहा—‘अच्छा तो मैं अभी नाक बटवा कर आता हूँ, मुझे भगवान् के दर्शन करा दो।’ वह नाक उगारवा कर आया, नकटे ने अपनी सीध में घड़ा करके कहा—‘देख इस अगुमी के इसारे पर वह भगवान् दीख रहा है।’

शराबी ने ना ना कहो तो नकटे ने पीठ पर घूसा जमाया, गधे! ऐसा माँ बोल। अब तेरी नाक तो कट ही गई है। अब यूँ वह—हां भगवान् के दर्शन हो रहे हैं ताँहि दो-चार साथी और बनें।

शराबी नाचने लग गया—हां हाँ! वह भगवान् दिखाई पड़ा, सबभुज में नाक आड़ी आ गयी। नाक कटने से भगवान् बीसेगा। इसके देखादेख कुछ व्यक्ति पानी में आ गये और नाक कटवा कर भगवान् के दर्शन करने का डींग रखने लगे।

एक प्रकार दूसरी को दोस्रो दृष्टाने के लिए जो स्वयं दोसरी बन जाते हैं और जो वे व्यक्तिजों को अपने चहुँप में जँवा लेते हैं उनको ग्वामीनी में 'बकटा' की उपाधी दी है।

(सागन-मगुड की श्री० दृ० १० दृ० ११, २० के आधार में)

२६०. चार ब्राह्मण वे जो बड़े दहायी और भाव मगुडकी थे। बिग्री अन्नधान में उन चारों को एक साथ दक्षिणा में दी। चारों एक साथ तो साथ कुछ नहीं गवने थे, इसलिए एक-एक दिन चारी लगा दी। चमरा. के साथ ही कुछ दूध लेते पर चारा नहीं खाते। वे दूध मोच लेते आज जो चारा खाया जायेगा उसका दूध तो बन जाने को मिलेगा, फिर मैं क्यों दानु? हम प्रकार मोचकर चारों में ही गाव को कुछ भी जाने-सीने को नहीं दिया। धीरे-धीरे दूध गुल गया। गाव बनने लगी। बेचारी भूखी-भ्यामी साथ एक दिन चली-बड़ी अमीन पर लुइक गई, उसके प्राण पमेक उठ गये। सोंधों ने जब हमका भेद पाया तो उरके गुल धिक्कारा। इग्री प्रकार जो अविनीन होते हैं वे दूसरों की परवाह न करने हुए अपने ही स्वार्थ की पूर्ति करने हैं। तेरुिन अन्न में उनको बड़ी दुईमा होयी है और वे गिराकार को पाते हैं।

(बिनीठ अविनीन की औरई दृ० ४ दृ० ११ से १६ के आधार में)

२६१. एक मोटा लाला बुला नहीं बिग्री 'बीमगर' के रंग की कुछ में आ गिरा। उसमें पड़ा-बड़ा गुमेरिया खाकर दुबलिया लगाने लगा। बीमगर ने उगे निशाना तो वह रग-बिरगा बहा बिबिब-आ आदर दीजने लगा। गांव की ओर दीक्षा तो वहाँ के गारे बुले हम अजीब जीव को देखकर घुर-घुर कर उसे घेर कर काटने लगे।

बड़ी मुगीशन में जान बचाकर दीक्षा और जगम में आकर एक ऊँचे टीले पर बड़े टाठ में बैठ गया। जगम के जानवरों की हम अजीब अंगु की देखकर ही आश्चर्य हुआ। सब मिलकर उसके पास जावे और पुछा—'आप क्यों हैं?' हुए अन्हकना में बोला—'मैं कुक्करराम हूँ, भगवान् ने मुझे जगम के बीचों पर भारा करने के लिए भेजा है। तुम सब लोग मेरा सागन मानो।'।

सभी उसके दबदबे में आ गये। रात-दिन उसकी सेवा करने लगे। सब बर दा कि वही राजा रप्ट हो गया तो भगवान् के दरबार में हमारी शिषाय कर देगा। बहुत दिनों तक कुक्करराम की पासबाजी चलनी रही।

एक दिन वहीं से उसे कुत्तों के भीरने की आवाज सुनाई दी। बहुत देर ता मन मनोमकर दाग काटया रहा पर आगिर रहा नहीं गया। ओर से भों-म करता हुआ वहाँ से उछलकर गांव की ओर भागा।

उसका मौकना देखकर जानकर दग रह गये। यह बुला इतने दिन हम सब को उल्लू बनाता रहा। यह कहते हुए सभी मिलकर उसे काटने दीकें और दध

वह गांव के कुत्तो की ओर दौड़ गया तो सभी इस नये जानवर पर दूट पड़े और उसका काम तमाम कर दिया।

बहुत दिनों तक अपना स्वभाव छिपाकर रखने पर भी उगका मूल स्वभाव छिप नहीं सका, वह प्रगट होकर ही रहा।

स्वामीजी ने कहा—‘इसी तरह जो साधु के वेष में गुजाता है वह आग्रि कुक्करघम की दशा को प्राप्त होता है।’<sup>१</sup>

२६२ प्याज को सो बार गगाजल से धोने पर भी उसकी बाम नहीं मिटती। उसी तरह अविनीत को गुरु द्वारा शिक्षा मिलने पर भी किंचित् मान नहीं लगती।

अनेक बार धोने से प्याज की बाम तो कुछ कम पड़ सकती है पर अविनीत को दी गई शिक्षा तो बेकार चली जाती है, वह तो कहने मान ही उन्दा पड़ा है और बवेश वेदा करता है।<sup>२</sup>

२६३ कई व्यक्ति स्वयं साधुओं की निन्दा भी करते हैं और कुटिलता करके भलग रहना भी चाहते हैं। इस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—

किसी गांव में एक घुगलघोर रहता था। एक दिन फौजी लोग बड़ा डंका बालने के लिए आए। उस पिशुन ने पुरवासियों के धन-धान का पता आदि बता दिया। फौज वाले कुछ व्यक्ति तो धन सम्पत्ति लेकर चले गये और कुछ वहीं थे। गांव के लोग भय के मारे भाग गये थे। उनमें से कुछ धन की रक्षा के लिए बागम आये। उन्होंने गुना कि घुगलघोर सबका छिपा हुआ धन बता रहा है। वे कहने लगे—‘दुष्ट! गांव वालों के साथ भी इतनी नीचता कर रहा है। घुगलघोर पहला बदमशर फौजवालों को गुनाते हुए बोला—‘नहीं मैंने किसी का धन नहीं बनाया। अगर मैं बतलाता तो अमुक का धन अमुक जगह में है, वह भी बता देना। इन प्रकार कुसुट्टि करके उसने बचावका धन भी बता दिया। डारू लोग सब धन बटोरकर ले गये। लोग बेचारे उस दुष्ट की वासी करतून को देखने ही रह गये।

१ वन मन में मगज न मारें, साधु ज्यू सोका में पूजार्थ।

मगरहाई ॥ होय रग्यो सेंडी, कुक्करघम राजा होय बेंडी ॥

(धडा वी चौपई डा० २३ गा० २१)

२ कांश ने सो बार पानी मू छोड़ियां, तो ही न मिटे निगरी बाम हो।

ज्यू बचनीन ने गुर उगदम दीवें पगो, विष मून न लागे पास हो ॥

कांश री गो बाम घोवा मुयरी पई, निरपम छै बचनीन में उपदेश हो।

जो देखें तो बचनीन बच्यो वई पगो, उन रे दिन-दिन अधिक कनेश हो ॥

(विनीन अविनीन री चौपई डा० ३ गा० २६, ३०)

रस प्रसार दुष्ट आदमी दुष्टता भी करता है और अपने को दूध-धुला मा भी दिखाना चाहता है।

(मित्रदु दुष्टात् १४४)

२१४. एक स्त्री पानी में के लिए पनपट पर गई। मित्र पर हो पड़े रसप्रसार करने लगी तब रामने ये उगरी महेमी मिल गई। एक पड़ी तक उगके साथ वह हम-हम कर काते करती रही। फिर पर पनपने ही पनि को पड़ा उगारने के लिए आवाज लगाई। पनि बिनी काई में उगन मा, उगे महेट कर आवा और पानी के विर में दोनों पड़े उगारे। उगने में उगकी स्त्री बोधावेन के आकर अट-मट बोमने लगी - 'मैं तो पड़ी-पड़ी आर में मर रही थी, मुझे उगनी आवाज लगाई तो भी बिनी केर में आये हो मन में कुछ विचार हो नहीं आता।'

स्वामीजी ने कहा—'जैसे उग औरन को पड़ी पर तो आर नहीं लगा और तो आर हाथों में वह आर के एक पड़े। बीते ही अविनीत मायु करने हविनि काई में भी पड़ों पर समय लगा देता है और मुक आदि द्वारा बड़े लज्जा बोड़े काई में भी काममदोल करता है और उसे भारभूत समझता है।'

(मित्रदु अल० रगायन डा० ४१ पा० २ से २३ के आधार में)

२१५. मोर मूह में कामने पर ठहा मगता है बिन्नु अग्नि में कामने पर भस्मक उठता है बीते ही अविनीत अविनि की स्वार्थ-गुति होने में के पड़े सीपल रहने हैं और पटवार दिने जाने पर भस्मक पड़ते हैं। मोर स्वयं अलता है और दूसरों को बलाना है, बाद में राख (भस्म) होकर उड़ आता है। उनी प्रचार अविनीत करने व दूसरों के ज्ञानादिक गुणों का नाश करता है।'

२१६. अविनीत को अपने समान अविनि की गरति मिल जाती है तो वह प्रमान होकर दुगुना बल बना लेता है। जैसे हाथन को बढ़ाने के लिए जरख मिल जाने।'

१. मोर ठंडी सारी मुन में घातिवा, अग्नि मांहे पाह्या हूँ तानी रे।

उयु अविनीत नें मोर की ओगमा, मोर उयु असवा पड़े मानो रे॥

आहार पाणी वस्त्रादिक आरिया, तो उ हवान उयु पूछ हमावे रे।

बरको बह्या उटे मोर अलन उयु गण छोड़ी एकल उठ आवे रे॥

मोर आप बने बाने और नें पड़े राख पड़े उठ आवे रे।

उयु अविनीत आप नें पर लमा, ज्ञानादिक गुण गमावे रे॥

(विनीत अविनीत की चौपई डा० २ पा० ३१ से ३३)

२. अविनीत नें अविनीत थावक मिले ए, ते पामे पयो मन हरख।

उयु आका हाती हूँ ए, बढ़ता नें मिलिवा जरख

(विनीत अविनीत की चौपई डा० २ पा० ३८)

२६७. जो साग निगुरा होता है वह दूध मिथी पित्ताने वाले व्यक्ति को पाट छाता है और जो सगुरा होता है वह दूध मिथी पित्ताने वाले व्यक्ति को घन देकर धनवान बना देता है और उसे देखकर प्रसन्न होता है ।

इसी प्रकार जो अविनीत शिष्य होता है वह सम्पात्य और धारित देने वाले गुरु के प्रति दुष्टता करता है और जो विनीत होता है वह गुरु के प्रति श्रद्धा के भाव रखता है ।<sup>१</sup>

२६८. विनयशील साधु द्वारा समझाये गये व्यक्ति धावत और दान की तरह मिल सकते हैं लेकिन अविनीत साधु द्वारा समझाये गये साग में बोकला की तरह मृषक ही रहते हैं ।<sup>२</sup>

२६९. अभिमानी शिष्य गुरु से भी बराबरी करता है क्योंकि उसमें अविनय और अह का बड़ा दुर्गुण है । वह सत्य के लिए हितकारी नहीं होता । जैसे विकृत हुआ एक पान भी दूसरों को विकृत कर देता है जैसे अविनीत दूसरों का भी विनाश कर देता है ।<sup>३</sup>

२७०. किसी विनयशील साधु की वास्तव कला एवं कठि की सरमत्ता से प्रभावित होकर लोग उसकी प्रशंसा करते हैं तब जो अविनीत और अभिमानी होता है उसका हृदय जल उठता है, उसकी खुशी घट जाती है, शोक बढ़ जाता है वह अपनी टांग ऊपर रखने के लिये लोगों से कहता है—'क्या घरा है उसमें बैच बिन्ताकर रिझाता है तब तो जानता ही नहीं । सात्विकज्ञान तो मैं ही अच्छी

१. साग ने मिथी दूध पाया पछे, डक देई ते तो साग मेरी रे ।

ज्यू ओ समझि धारित लीया पछे, हुशे साधा रो बेरी रे ॥

सुगरा साग ने दूध पाया बका, तो उ करै पाछो उपगारो रे ।

निग ने धन देई ने धनवन करे, बसे दीठा हुवे हरय अपारो रे ॥

(विनीत अविनीत री श्री० बा० ७ गा० २१, २१)

२. बनीन लजा समझाविया ए, सात दास ज्यू भेला होय जाय ।

अविनीत या समझाविया ए, ते बोकला० ज्यू बानी पाय के ॥

समझाया बनीन अविनीत रा ए त्यां मे फेर विनोयक होय ।

भू तावरो में छाटरी ए, इनरो अन्तर जोन ॥

(विनीत अविनीत री श्री० बा० १ गा० १४, १४)

\* बिना छिपवा उगारी हुई गुन्नी बकरी के छोटे-छोटे छह ।

३. बने करे अभिमानी गुरु भू बरोदरी रे, निग ने प्रबल अतिनों में अभिमान रे ।

ओ बर ताद टोना म जाछो नही रे, ज्यू बिपड़यो बिगाडे सहियो पान रे ।

(विनीत अविनीत री श्री० बा० १ गा० २८)



पाँचों दानों को एक बर्तन कहते थे बर्तन एक गण-विधि में रख कर देवी के चरणों में दान और मन्त्र उगकी संघान करनी पड़ी। चौथी रोहिणी नामक पुत्र-वधू ने लक्ष्मी के विचार कर मन्त्र निर्णय दिया कि मुने इस गणों दानों की वृद्ध करनी चाहिये। उमने कौटुम्हिक पुत्रों को बुलाकर उन चरणों के दानों को अन्न के मोती करने के लिए दिया और प्रतिवर्ष उसी वृद्धि करने का रिस्ते दिया। उन मोती के चतुर्थ पुत्र वधू के चरणों की स्वीकार किया और चरणों की वृद्धि मन चाहेम पंडा कर कोट्यार में मन्त्र दिये।

पाँच गण पूर्ण होने पर मेड ने आदिश्यों को आमन्त्रित कर उनके समुद्र चारों पुत्र वधूओं को बुलाया और चरणों के दाने मागे। पत्नी उज्जिता ने मन्त्र कोट्यार में चावल के पाँच दाने निजाम कर मेड के हाथ में दे दिये। मेड ने पूछा 'क्या मे दाने वही है?' उज्जिता—'नहीं, उनको तो मैंने पेंच दिया अभी कोट्यार में निजाम कर लाई हूँ।' मेड ने अत्रगण होकर उने घर की मन्त्र आदि का कार्य मीठा। भोगवनी ने मागे तो वधू बोली—'मैं तो उन दानों का खा गई।' मेड ने उगको रमोई आदि करने का निर्देश दिया। रक्षिता ने मागने पर मूयमूय पाँचों दाने लाकर मागने रख दिये। मेड ने मूय हाकर उने घर की मारी मन्त्रि सम्पत्ता दी। रोहिणी ने दाने चाहेम गौरने का कहा—'मैं उमने चावनों में मरी हुई बर्तन पाहिया मगवाकर मेडकी के समुद्र रखी बाधा दी। मेड उमको बुद्धि-मत्ता पर अग्रधिक प्रमत्त हुआ। उमे मूर्खवामीनी बनाकर समस्त परिवार का उत्तरदायित्व उने सौंप दिया।

(ज्ञाना० अ० १ में यह वर्णन विस्तार पूर्वक है।)

स्वामीजी ने कहा—'त्रिम प्रकार मेड ने परीक्षा कर रक्षिता व रोहिणी को घर की गुरुता व संचालन का कार्य मीठा पर उज्जिता व रोहिणी को नहीं। उसी तरह गुरु भविनीय शिष्य का रक्षिता रोहिणी की तरह समुद्र मग की त्रिमेशरी सौंपते हैं। पर जो भविनीय होता है उमे उज्जिता व भोगवनी की तरह सच भाव नहीं सौंपा जाता।

(विनीय-भविनीय की धोपई डा० ४ था० १ में ६ के आधार में)

२३६. कृतज्ञ व्यक्ति किसी द्वारा किया गया उपहार याद रखना है और समय आने पर उसमें उच्छ्रण होने का प्रयत्न करता है। भगवान महावीर ने स्थानाग मूत्र में तीन प्रकार के प्रमुख उपहार बनाया है। आचार्य भिक्षु ने भी अपनी सेविनी द्वारा उगका प्रतिपादन किया है। वे इस प्रकार हैं—

१. माता-पिता का पुत्र पर।

२. मेड का गुमागने पर।

३. गुरु का शिष्य पर।

भगवान महावीर के श्रवणों ने

अपराध में कहा—आपराध धर्मो ! नीम वह दुर्लभ वृक्ष है—उसमें उच्छ्रय होता हुआ है १. आना-दिना २. कर्मा—आनन्द वीर्यवत् करने वाला ३. धर्मोपाय ।

१. कोई कुछ करने आना-दिना का आनन्द में आनन्द, आनन्द, मेरी में करने कर, आनन्द आनन्द में उच्छ्रय कर, आनन्द, आनन्द में आनन्द कर, आनन्द में आनन्द कर, आनन्द में आनन्द कर, आनन्द में आनन्द कर (बहुते) में आनन्द कर करने कर तो भी वह उनके उपकारी में उच्छ्रय नहीं हो सकता ।

वह उनमें सभी उच्छ्रय हो सकता है जबकि उन्हें समझा-बुझाकर, प्रबुद्ध कर विचार में बनाकर वैदिकीयधर्म में स्थापित करना है ।

२. कोई अर्थवत् किसी दरिद्र का धन आदि में समुचित करना है । सर्वोपकार कुछ समय बाद या हीन ही वह दरिद्र बिना भोग सामग्री में सुख हो जाता है और वह अर्थवत् किसी समय दरिद्र होकर सहयोग की सामग्री में उनके पास जाता है । उस समय वह अनुभूति दरिद्र करने सहायी को वह कुछ अर्थ करके भी उनके उपकारी में उच्छ्रय नहीं हो सकता ।

वह उनमें सभी उच्छ्रय हो सकता है जबकि उसे समझा-बुझाकर प्रबुद्ध कर विचार में बनाकर वैदिकीयधर्म में स्थापित करना है ।

३. कोई व्यक्ति सहायक धर्म-साधन के पास एक भी आर्थ तथा धार्मिक बचन सुनकर अवधारण कर, समुचित में मर कर किसी देवमूर्ति में देवत्व में उच्छ्रय होता है । किसी समय वह धर्मोपाय की अवधारण कर देता है सुनिश्चित देता है सहज कर देता है, अथवा से बगैरी में से आता है या लम्बी बीमारी तथा आठव (साधोपासी रोग) में अभिभूत बने हुए को विमुक्त कर देता है, तो भी वह धर्मोपाय के उपकार में उच्छ्रय नहीं हो सकता ।

वह उनमें सभी उच्छ्रय हो सकता है जबकि असाधित उनके वैदिकीयधर्म में धर्म से घट हो जाने पर उसे समझा-बुझाकर प्रबुद्ध कर, विचार में बनाकर पुन वैदिकीयधर्म में स्थापित कर देता है ।

(सामान्य रथा० ३ उ० १ सूत्र ८५)

स्वामीजी ने विनीत अविनीत की ओ० उरण की बात १२ में तीनों उपकारों का स्पष्टीकरण दिया है ।

२५५. चार व्यापारी परदेश जा रहे थे । रास्ते में एक 'राधण' (रमोई करने वाली) के घर टहरे, जो आये गये बटोहियों को रमोई करके खिलाकर अपना मुकाफा करता थी । व्यापारियों के राधण के साथ रमोई करवाई । मित्रों में कुछ और माता भोजन करके व्यापारी खूब तृप्त हुए । प्रसन्न होकर चारों ने एक-एक

रघुना राधण को दे दिया ।

व्यापारी धी पटने के पड़ने ही उठकर अगनी मजिन की ओर चले गये तो राधण ने कहा—‘अरे भाईयो ! भूख कैसे जा रहे हो ? अभी मैं बिलीना बगो हूँ, ताजी छाछ पीकर जाओ ।’

राधण के प्रेम भरे आग्रह में बड़ाऊ रुक गये । राधण ने बड़ी उपासन के साथ बिलीना किया और सभी को भान मनुहार करके छाछ पिलाई । बटोरी गुन होकर राधण का आजीर्वाद लेकर आगे चल पड़े ।

गुबड़ होने होते जब राधण ने छाछ में मज़गी मलाई और कानि-कानि बिस्कि तैरते देखे तो वह अवाक रह गई । हाय ! रे हाय ! जुन्म हो गया । इन पारिमी ने तो उन बेचारे अनजान बटोहियों को छाछ क्या, मास का जहर दिया दिया वही राह चलते-चलते मर गए होंगे । राधण का कनेत्रा काप उठा । अपने उनावेदन और अभावधामी पर उसका मन घुमा में भर गया ।

बहुत बर्ष गुजर गए । अनेक राहगीर आने और रोटी खाकर चले गये । एक दिन के ही पार व्यापारी परदेस में मानोंमान होकर अपने घर सीटने समय राधण के घर आ गए । महा धोने के बाद रोटी खाकर सभी एक जगह बैठे बर्षे कर रहे थे कि व्यापारी ने पूछा—‘राधण हमें पहचानती हो ?’

मा भैया ! मेरे तो मास में सबहो बटोरी आते हैं मैं बिम-बिम को पहचानूँ ? व्यापारी बोले—‘याद करो, आज मैं कई साल पहले इस यहाँ आए थे । मुझ धी पटने के पड़ने ही जब चलने लगे तो मुने बड़ कैमी बड़िया छाछ पिलाई थी, याद है ?’

मदगा राधण को वह घटना याद आ गई । एक बार तो मारा शरीर निरुद्वार पर पसीना-पसीना हो गया, मन को धीरज देनी हुई बोनी—‘अरे भैया ! तुम हो ! बहुत अकल हुआ, गुम आ गए । जीने रहो ।’ व्यापारियों ने राधण के बेहरे पर आगहा और विस्मय के भाव देखकर पूछा—‘क्यों क्या बात है ?’ राधण ने बात की दकाने की बहुत कोजिग की पर व्यापारियों के अप्पाग्रह में उस दिन भी मारी घटना सुनाई । सुने ही व्यापारियों के शरीर में बिजली-नी कीट गई । ‘कहा मास बिलीनिया मस था’ के मास ही पारो मुझ पड़े । मास का जहर मिला पर कोई अमर नहीं कर मस के उसकी समुनि-मास में मृगु को प्राप्त हो गए ।

व्यापारी ने पुर्वहन काम-कीश को याद करने के मर्म में उपा उपासना का उपयोग किया है —

मदर मर्दन काम (छाछ) पीने जानिया,

प्यारी बाबोई न हुनो बाप रे ।

पारने पना बरमा पछे बहो,

निज म बरम पाव्या मज्जा रे ।

ए भूआ जहर घाद अणादिपा,  
 पाभी अणचितवी अममाध ।  
 म्भू भाग वल्लारी शीन सू,  
 काम भीय ने कीधा याद रे ।

(शील की नववाड डा० ७ गा० ११, १३)

२७१. एक क्षत्रिय था । एक बार समुरान से मोना (आणा) लेकर लौट रहा था । रथ के भीतर पदों में पत्नी बैठी थी जो बड़ी सुन्दर और चतुर थी । वह बाहर बैठा रथ हाक रहा था । मार्ग में एक चोर भिन्न गया । उसने क्षत्रिय पर घावा बोल दिया । क्षत्रिय का चौदप आग उठा । उसने चोर पर बाणों की वर्षा शुरू कर दी । चोर भी शस्त्रों में लैस लैम था । जमकर लड़ाई हुई किन्तु कोई हारा नहीं । बाण फँकते-फँकते अब क्षत्रिय के पास केवल एक बाण शेष रह गया । उसका कलेजा कापने लगा ।

भीतर बड़ी क्षत्रियाणी पदों की आत्मी से दोनों की मोर्चाबन्दी देख रही थी ॥ उसने पति को हारते देखकर अपने सौर चलाने शुरू किए । पर्वो उत्तार कर उसने चोर पर तीखे कटाक्ष फेंके । रूप की मदिरा ही ऐसी है कि देखते ही उसका नशा चढ़ जाता है । चोर के हाथ रुक गए । आँखें जाड़कर वह उसके रूप-सौंदर्य को निहारने लगा और युद्ध करना भूल गया ।

क्षत्रिय ने अवसर पा लिया । बाण चलतावर घमाक से उसे विरग दिया । क्षत्रिय अपनी विजय पर बहुकार करने लगा, देखा मेरा युद्ध कीमत !

चोर ने कहा—'तुम किस बात का धमक करते हो, मैं तुम्हारे बाणों से नहीं, इसके बाणों से घायल हुआ हूँ ।

स्त्री के रूप पर आसक्त होने वाले व्यक्तियों के लिए स्वामीजी ने इस दृष्टांत का प्रयोग किया है—

एक खत्री आणो लेजावला रे, मारग माहे मिलियो चोर ।  
 तिण नें खत्री बाण बाया घणा रे, चोर फरमी सू ग्हाइया तोड ॥  
 हिवे एक बाण बाकी रह्यो रे, जब अस्त्री निज रूप दियाय ।  
 ते चोर तिण रे रूप जिलवियो रे, जब खत्री बाण सू दियो दाय ॥  
 चोर पर्मां ते देखें रे, खत्री करवा लायो माण ।  
 चोर कहै गरबे किसू रे, ग्हाइये मारी नेणा रा लाग्य माण ॥

(शील की नववाड डा० ५ गा० १५, १६, १७)

२७७ पर-पुरुष एवं पर-स्त्री का सगम करना व्यभिचार कहलाता है । उस व्यभिचार की गंध सहसन छाने के समान होती है । उसे कोई व्यक्ति एकांत में जाकर छाटा है तो भी अपने-आप सत्तार में प्रकट हो जाता है ।

स्वामीजी ने व्यभिचार के लिए सहसन की उपमा का प्रयोग किया है और

रिश्ते की मनुष्य को उमने बाने की प्रेरणा दी है।'

२३८ मातृशक्तियों में 'बुधा' प्रथम शक्ति है। व्याप्तीश्री ने एक नीतिशास्त्र के माध्यम से उन पर विजय विरेचन किया है। बुध की बुद्धियों को बाधने हुए जुआरी शक्ति की बुरा दुर्गति होती है उसका सामाजिक विनाश किया है उसका सामाजिक दम प्रकाश है—

एक मातृशक्ति का बुध बुद्धि शक्ति के कारण जुआरी बन गया। पिता ने उसे प्रशस्तन रूप में बहुत सम्माना पर बेटा बुध का सम्मान नहीं छोड़ सका। बेटे ने सोचा—'मैं इसे ज्यादा बड़गा तो यह बड़ी आत्मागत करके मर जायेगा और बुध पर शासन नहीं होगी तो यह पीढ़ियों का कमाया हुआ धन भी खड़ेगा। मेरी बात को यह सिद्ध नहीं मानना। प्रभु को मरवा कराना है। मेरे पास का उदय है जिसमें बुध ने एक में जन्म लिया है। पिता मर मराने कर रहा जाता।'

कुछ समय परबान् पिता भीमार हो गया। उमने गहरा विनम्र किया और पुत्र को एकान्त में बुद्धिमान अन्विष्ट सिखा देने हुए कहा—'बेटा! मेरा शरीर अब अधिक दिन टिकने वाला नहीं है। अब मेरी मृत्यु के बाद तुम मेरे कर्तव्यनुसार कार्य करोगे तो वह तुम्हारे लिए लाभप्रद होगा।' पुत्र ने कहा—'क्या?'

संकेत—मेरे मरने के बाद मेड की पदवी का निम्न तुम्हारे मिर पर निकलेगा ही। वह निम्न तुम नगर के मरने वाले जुआरी के हाथ में करवाना। पिता की बात सुनते ही उसकी कन्धी-कन्धी घिल गई।

थोड़े दिन बाद पिता की मृत्यु हो गई। दाह-संस्कार व प्रेषणकार्य करने के पश्चात् नगर के जुआरियों को अपने घर आमन्त्रित किया।

पुत्र ने उन्हें होकर आने शक्तियों के सम्मुख पिता के निर्देश को सुनाने हुए जुआरियों को संबोधित करते हुए कहा—'आपमें जो सबसे बड़ा जुआरी हो वह मेरे मिर पर सेट की पदवी का निम्न करे। इसके लिए आप पहले अपना-अपना परिचय दीजिये।'

एक जुआरी बोला—'मेरे घर में जितना भी धनपात था उसे मैंने बुध के दाँव में लगा दिया, फिर भी सगे-सबन्धियों ने उधार लेकर जुआ खेलने के लिए हर समय कटिबद्ध रहता हूँ।'

दूसरा—'मैं इनके बड़ा जुआरी हूँ। मैंने पूर्वजों की अजित समग्र शक्ति के अतिरिक्त वस्त्राभूषण तथा यकान आदि भी चतुर् महाराज के चरणों में समर्पित कर दिये तो भी मैदान में नहीं हटा।'

१. पर पुरष है बाई जाणी समत समान, तें छुनै बस पाये जणा।

जिहो जावे जिहो परपट हूवे जी ॥

तीमरा—‘इन दोनों से मेरा स्थान तो बहुत आगे है। मैंने तो सब कुछ छोकर दिवाला भी निकाल दिया। मिर पर कर्जा होने पर भी आधी रात को तैयार रहता ॥’

इस प्रकार एक पर एक जुआरी आते गये और अपनी गरीबी का इतिहास बतलाकर अपना बहपन दिखाते गये।

सेठ के पुत्र की आख खुली। जुए के प्रति उसका मन ग्लानि से भर गया। सब जुआरियों को बिदा दी।

पिताजी द्वारा दी गई विला का हार्द उसके समझ में आ गया। साहूकार के हाथ से सेठ की पदवी का तिलक करवा कर परिवार में प्रमुख बना और पिता के नाम को उजागर किया।

(जुआ की ढाल के आधार से)

स्वामीजी ने स० १८३७ का चातुर्मास ‘पुर’ में किया। वहा के लोग जुआ बहुत खेलते थे। स्वामीजी ने उन्हें उद्बोधन देने के लिए उस चातुर्मास में सावन शुक्ला ५ शनिवार के दिन यह ढाल बनाई और जनता को समझा कर इस ध्यमन से मुक्त किया। ‘‘‘वर्ष सत्तावन, जुआ छोड़ा जाय।

(धिवखु जश डा० ६३ गा० १०)

२७६. एक बार किसी सेठानी ने ‘बदरवाई’ नामक प्रसिद्ध एवं सुन्दर चूड़ा पहना। घर के आगन में सजगज कर अच्छे आसन पर बैठ गई। उसे देखने के लिए नगर की स्त्रिया आने लगी। वे देख-देख कर फूँसी नहीं समाती और सेठानी के मुद्रांग की तथा चूड़े की सराहना करके चली जाती।

एक डोमिनी भी चूड़ा देखने के लिए आई। उसका मन ललचा गया। उसने सेठानी की तरह बाह-बाह पाने के लिए घर के चाली लोटा बेचकर बैठा ही चूड़ा मगवाया और पहनकर बैठ गई। दोपहर का समय आ गया पर देखने के लिए कोई नहीं आया।

लोगों को बुलाने के लिए उसने शोपड़े में आग लगा दी और स्वयं बाहर आकर बैठ गई। धुआधार होने ही लोग दौड़े-दौड़े आए और आग बुझाते हुए बोले—‘देखो, क्या कुछ बचा है या नहीं।’

डोमिनी ने दोनों हाथ ऊँचे करके कहा—‘और तो सब कुछ जल गया पर यह एक चूड़ा रहा है चूड़ा।’ उसे देखकर सभी ने पूछा—‘तूने यह चूड़ा बच पहन लिया।’

डोमिनी रोती हुई बोली—‘अरे पहले ही पूछ लिया होता तो झोंपटा ‘जसता’।’

लोग—क्या तुमने ही आग लगाई है?

डोमिनी—हां।

सोग — क्यों ?

डोमिनी—तुम सोगों को बुलाकर चूड़ा डियाने के लिए ।

सभी सोग उसकी मूर्खता पर उपहास करने लगे ।

(उपदेश कथा कोप भाग-१ प्रकरण ५६० :

स्वामीजी ने कहा—'जो व्यक्ति यह प्रतिष्ठा के लिए दूसरों की धोखा देकरता है वह डोमिनी की तरह मूर्ख शिरोमणि कहलाता है ।'

२५०. किसी व्यक्ति को अपना बैरी नहीं बनाना चाहिए । इस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—'ससार में तो किसी से कर्जा लेकर वापस न देने में बुराई बन जाता है । धर्म की दृष्टि से किसी को कठिन चर्चा पूछने पर जवाब न देने से वह बैरी बन जाता है अथवा किसी की नुबत निकालने से वह गुस्से आकर उसका बैरी बन जाता है ।'

(भिक्षु दृष्टान्त २११)

२५१. एक साहूकार में स्वयं की समझ तो थी नहीं । पड़ोसी के देखादेखा व्यापार करता था । पड़ोसी जो वस्तु खरीदता वह भी वही वस्तु खरीद लेता । एक बार पड़ोसी ने सोचा—'यह केवल देखादेखा करता है या हमने कुछ जान है, इसकी जाँच करनी चाहिए । उसने अपने पुत्र से कहा—'अभी पचास के भाँच बढ़ रहे हैं, जितने खरीद सको उतने खरीद लो, थोड़े ही दिनों में देखना भाँच दुगुने हो जायेंगे ।'

साहूकार ने यह सुन लिया और तुरन्त स्थान-स्थान से नये-पुराने पचास मगवाने शुरू कर दिये । पचासों का ढेर लग गया पर पुराने पचासों की खरीद कौन ! खरीददार कोई नहीं आया उसकी पूँजी नष्ट हो गयी ।

स्वामीजी की शिक्षा है कि व्यक्ति को अपनी मुक्ति के बिना केवल देखादेखा करने से बहुत खतरा उठाना पड़ता है ।

(भिक्षु दृष्टान्त २५०)

२५२. किसी गाँव में जीवोत्री मुहूर्ता ने नवग्री भस्मरुट ने कहा—'भाई साहब ! भीषणजी स्वामी कहते थे कि धान मिट्टी के समान सगे सब अन्न अन्न जानकर यावज्जीवन का अनशन कर देना चाहिए ।' आज मेरी भी वैसी स्थिति हो रही है, लेकिन मैं तो अनशन नहीं कर सकता । इस तरह कहते-कहते उसी रात्रि को उन्होंने आपुण्य पूर्ण कर दिया ।

(भिक्षु दृष्टान्त १२१)

२५३. 'सोहवा' ग्रामशामी दामोदरी ने पानी के स्थानक में जाकर स्थान

१. पर बानी में कीर्ति करत, मूर्ख शिरोमणि नाम धरत ।'

बानी मायुओं के साथ चर्चा की। उसमें बितने ही प्रश्नों के जवाब तो उन्होंने दिए और बितने ही प्रश्नों के जवाब वे नहीं दे सके। स्वामीजी के पास में जाकर उन्होंने इस बात की चर्चा की तब स्वामीजी बोले—‘दामाशाह ! बोरी धूँधी (भोले-गीने धुन) और दो तीर मेजर सधाम करने में बिजय प्राप्त कैसे हो सकती है ? तीरों का खनना (बमड़े आदि का पैसा) पीठ में बंधे होने में युद्ध में बिजय प्राप्त हो सकती है।’

दियो के साथ चर्चा करने में पहुँचे प्रश्नों का जवाब अच्छी तरह तीव्र सेना चाहिए। बिना जानकारी के चर्चा नहीं करनी चाहिए।

(मित्रगु दुष्टान्न १२४)

२०८. एक अंश आरमी आध की उद्योग न होने के कारण जंगल में दुधर-उधर भटक रहा था। दूसरा वंश व्यक्ति नहीं बच सके के कारण बंटा था। दोनों बहुत दुःख का अनुभव कर रहे थे। सयोगजन अघा वंश के पास पहुँचा। परस्पर बातचीत हुई। वंश बोला—‘मैं बच नहीं सकता।’ अघे ने कहा—‘मैं देख नहीं सकता।’ वंश ने कहा—‘तुम मुझे कण्ठों पर बिठा लो, मैं मार्ग बताया जाऊँगा और तुम बचने आना।’ इस प्रकार दोनों सयोगीत कर सहजान अपने गाँव पहुँच गये।

स्वामीजी ने कहा—‘अघे और वंश की तरह व्यक्ति को मोक्ष नगर में पहुँचने के लिए ज्ञान और क्रिया की अपेक्षा रहनी है।’

२०९. कुछ महाकवयित्री की मायना है कि सन्मुख, गिरनार, अष्टावह, समेत गिरार, आशु, ये पाँच तीर्थ हैं। वहाँ अनेक मायु अनशन कर यात्रा के बलमान प्राप्त कर मोक्ष पहुँचे अतः वह स्थान बदनीय है। वहाँ यात्रा करने तथा वहाँ के द्रव कुई के हवच्छ पानी द्वारा स्नान करने से आरम्य शुद्धि-परक धर्म होता है।

स्वामीजी ने इसका समाधान करते हुए कहा—‘अगर सन्मुख आदि क्षेत्रों में गिरा होने से वह स्थान बदनीय होता है तो ४५ साय योजन प्रमाण अक्षाई द्वीप (मनुष्य क्षेत्र) भी बदनीय होना चाहिए। क्योंकि ऐसा कोई स्थान नहीं कि जिस स्थान में सिद्ध न हुये हों। वास्तव में शील रूप तीर्थ, ज्ञान-दर्शन चारित्र्य-सा और सयम रूप यात्रा तथा त्रिभुजित धर्म रूप द्रवकुड एक शुभ ध्यान, योग व लेश्या रूप सलित है। इनके द्वारा ही आत्मा की शुद्धि होती है। भगवान् महावीर ने उत्तराध्ययन अध्ययन १२ और ज्ञाता मूल अध्ययन ५ आदि अनेक स्थलों में ऐसा प्रतिपादन किया है।’

१. मितियाँ आँधों ने बालों से दोष, मुखे नगर पोहना मोय।

ज्यु ज्ञान क्रिया में सयोग थाय, तो जीव मुक्त माहे जाय ॥

(उपदेश की चौपई-सारिक डा० ३ गा०)

स्वामीजी ने इस सबब में शत्रुजय विषयक नीतिका (थड़ा की चौड़ाई ३०) में विस्तृत प्रकाश डाला है।

२८६ एक व्यापारी की प्रामाणिकता और मिसन-सारिका के कारण शत्रु-पास के गाँवों में अच्छी धाक जमी हुई थी। छोटे-बड़े सभी उसकी दुकान पर आते। सबको एक दाम और एक भाव से एक जैसा भास दिया जाता। उन्हीं के पड़ोस में एक दुकानदार रहता था। बेईमानी के कारण उसका समूचा श्रावण खोराट हो गया। उसका स्वभाव बड़ा ईर्ष्यालु था। वह सेठ की दुकान पर इनो भीड़ देखकर खूब असंतोष था। आखिर उसे एक उपाय सूझा।

एक दिन वह गया होकर पागम की तरह नाचने लगा। तमाशा देखने के लिए लोग इकट्ठे हो गये। भीड़ को देखकर सेठ बहुत घुस हुआ।

स्वामीजी ने उक्त दृष्टान्त का हार्दिक बतलाते हुए कहा—'इसी तरह साधुओं के व्याख्यान में परिपक्व देखकर विपत्ति लोग अप्रसन्न होते हैं और कदापि के द्वारा मनुष्यों को इकट्ठा करके खुशी मनाते हैं।'

(भिक्षु दृष्टान्त २१२)

२८७ अपनी महिमा बढ़ाने के लिए जो कपट से बोलते हैं, उनकी पहचान के लिए स्वामीजी ने कहा—'बिभी ने बोला—दो दिन का तप किया। वह आने बैसे की प्रसिद्धि के लिए उपवास वाले की प्रशंसा करता है—'तुमको धन्य है जो तुमने गर्मों की कठोर श्रुति में उपवास किया है।' तब उपवास करने वाला कहता है—'धन्य तो तुमको है जो तुमने बेले का तप किया है, मैंने तो उपवास ही किया है।' इस तरह छल पूर्वक अपने बैसे की प्रसिद्धि करता है वह यज्ञ का आकाशी और अभिमानी बहलाता है।'

(भिक्षु दृष्टान्त २४१)

२८८. स्वामीजी ने कहा—'वैराग्यवान् सतः पुष्पों की वैराग्य मरी जाती गुलने में हृदय में वैराग्य भावना जागृत होती है, अन्यथा नहीं। जिस तरह कमूरा स्वयं जलता है तब करन पर रंग चढ़ता है, पर स्वयं न जलने में कमूरा की गंध बांधे तो भी रंग नहीं चढ़ता।'

(भिक्षु दृष्टान्त २२४)

२८९. (क) एक बार स्वामीजी सिरियारी से विहार करने लगे तब सामकी भगवती स्वामीजी के चरणों में पगड़ी रखकर बोले—'स्वामीनाथ! आज तो विहार न करे।' स्वामीजी ने कहा—'आज तो यही रहने हैं पर आगे अभी इन प्रकार की विनयी मन करना।'

गुरु के चरणों में उबिन विनयी भी यात्रक की अवसर देखकर करती चाहिए।

(भिक्षु दृष्टान्त ८२)

(घ) एक बार स्वामीजी 'आगरिया' से विहार करने लगे तब भाईयो ने वहाँ ठहरने के लिए बहुत आग्रह किया, लेकिन स्वामीजी ने उनकी बात नहीं मानकर विहार कर दिया। गांव के बाहर कुछ दूर तक गये तब भारीमालजी स्वामी ने कहा—'आज विनती स्वीकार न करने से लोग बहुत नाराज हो गये।' स्वामी बोले—'चलो, आज तो वापस चलो, पर आगे कभी भी इस प्रकार की प्रार्थना मत करना।'।

(भिक्षु दृष्टान्त ८५)

२६०. स्वामीजी ने सूखे पत्तों की तरह जिन्दगी की अस्थिरता बतलाते हुए समझदार व्यक्ति को मोघातिमोघ धर्म-क्रिया करने के लिए प्रेरित किया तथा जीवन की मजबूती के लिए 'उपदेश श्री० गणेश्वर सिखावणी' डाल १ में २३ उदाहरण दिये हैं—

- |                                 |                             |
|---------------------------------|-----------------------------|
| १. वृक्ष का सूखा पत्ता          | १२. नारी की प्रीति          |
| २. बाघ के अप्र भाम का जल बिन्दु | १३. तुण्डों की अग्नि का ताप |
| ३. स्वप्न की माया               | १४. उष्णकान का मेघ          |
| ४. मंदिर की ध्वजा               | १५. कन्या रूप धन            |
| ५. पानी में बहाता               | १६. पतक का रंग              |
| ६. बाजीगर का तमाशा              | १७. आँख का फुरकना           |
| ७. नदी का वैष                   | १८. इन्द्र-ध्वज             |
| ८. घाव की छाया                  | १९. हाथी के कान             |
| ९. जुआरी का धन                  | २०. सध्या का रंग            |
| १०. वायुरूप का वचन              | २१. पानी का बुदबुदा         |
| ११. भविष्य की दी गई शिक्षा      | २२. झालर की झकार            |

२३. बिजली का प्रकाश ।

२६१. एक वणिक् के धो और तम्बाकू इन दो ही वस्तुओं का व्यापार था। धो तो आसपास के गांवों से ही काफी आ जाता था, किन्तु तम्बाकू बाहर से मगानी होती थी, इसलिए कभी-कभी धो और तम्बाकू के भाव समान हो जाते थे। व्यवसाय में प्रामाणिकता रखने से उसकी शहर में प्रतिष्ठा थी।

उसके एक भोला-भाला सटका था। एक दिन सेठ को किसी कार्यवश बाहर जाना पड़ा। उसने अपने भेदे को दुकान पर बिठा दिया और उसे धो और तम्बाकू

१. वृक्ष तर्कों ग्यु पाकी पानडो, ते पड़ता काय न लार्प बार रे।

ग्यु टूटे भाउखी भरता मिनख मो रे, जब कोई न सकै राखणहार ॥

दील मत करज्यो पतुरा धर्म मो रे ॥

(उपदेश श्री० वैराग्य री डाल १ पा० १)

● ● ● ● ● ● ● ●

[illegible]

... ..  
... ..  
... ..

[illegible]

1. 1945년 8월 15일 일제강점기 종결 후, 우리 민족은 오랜 독립투쟁의 열매를 맺고 자유와 독립을 얻었다. 그러나 이 시점에서 우리 민족은 여전히 분단 상태에 처해 있다. 이 분단은 우리 민족의 통일을 가로막는 가장 큰 장애물이다.

[illegible][illegible][illegible][illegible]

सुत भद्र तदाप्यु स पात्री, न भङ्गु ही सवत् विवाहं २॥

અનુજ વિખાત કાળે રહ્યો ॥

(1)  $\pi_1$  and  $\pi_2$  are the projections of  $\pi$  onto  $\mathcal{A}_1$  and  $\mathcal{A}_2$  respectively.

सात्वत यह है कि समस्तदार व्यक्तियों को सौविक एवं सौकीलर उपकार को अलग-अलग समझना चाहिए ।

२६२. सौविक उपकार तथा आध्यात्मिक उपकार पर स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—'किमी व्यक्ति को सर्प खा गया । मन्त्रवादी ने 'शाड़ा' देकर उसकी रक्षा की तब वह उसके पैरों में गिरकर बोला—इनने दिन तो माँ बाप ने मुझे जीवनदान दिया और आज से आपने । उनके माता-पिता बोले—आपने हमें पुत्र दिया । यहन बोली—आपने मुझे साईं दिया । पत्नी ने प्रसन्न होकर कहा—आपने मुझे अमर मुहान दिया । सब सत्य-अम्बानी खुश होकर बोले—आपने बहुत काम किया, किसी को साथ रुपये दे उससे भी यह उपकार बड़ा है, लेकिन सांसारिक उपकार ही है ।'

जगत में किसी व्यक्ति के सर्प ने डक लगा दिया । अकस्मात् साधु आ गये । वह बोला—'मुझे साँप ने बाट लिया इसलिए आज शाड़ा देकर मुझे बचाइये ।' साधु बोले—'हम शादा जानते हैं पर देने की हमारे विधि (मर्यादा) नहीं है ।' वह बोला—'मुझे कोई दवा बताओ ?' साधु ने कहा—'हम भीषण जानते तो हैं पर यत्रा नहीं सकते ।' तब वह जोश में आकर बोला—'क्या केवल मूढ़ को बांध कर ही फिरने हो या कुछ करामात है ?' साधु बोले—'हमारे पास एक ऐसी करामात है कि जो व्यक्ति हमारी बाट को मान लेता है उसे जन्म-जन्मान्तर में साथ खाता ही नहीं । वह बोला—'वही बताओ ।' साधुओं ने कहा—सागरी (अर्वाध सहित) अनशन करो, जैसे इस उपद्रव से बच जाओ तो ठीक करना भार प्रवार का आहार नहीं करूया ।

इस प्रकार उसे सागरी अनशन करवा कर नमस्कार महामय सिखाया, चार शरण दिलाये और उसके भाव चढ़ाये, जिससे वह आनुष्य पूर्ण करके स्वर्ग में गया एवं मोक्षगामी हुआ । यह आध्यात्मिक उपकार है ।

(भिक्षु दृष्टान्त १२६)

२६३. एक साहूकार के दो स्त्रिया थी । एक धर्म-परायण और दूसरी धर्म से अनभिज्ञ । पहली ने कर्म बंध का हेतु समझ कर रोने का त्याग कर दिया । समयानुसार उसका पति विदेश में मृत्यु को प्राप्त हो गया । समाचार सुनकर पहली ने तो विधि का योग समझकर समता धार ली और दूसरी ने बहुत जोरों से बिलापात करना प्रारम्भ कर दिया । सौम-नुयाइया बहू पर दृष्टे हुए । वे सभी रोने वाली की सराहना करते—'यह धर्म है सच्ची पतिव्रता है और जो नहीं रोती है उसकी निन्दा करते—यह तो पापिनी है, पति को मारना ही चाहती थी, इसलिए इसके आँसू तक नहीं आये ।'

स्वामीजी ने कहा—'साधु तो न रोने वाली की धर्मता व समता की सराहना करेंगे न कि रोने वाली के मोह एवं दुर्बलता की, क्योंकि दृष्ट वस्तु का वियोग

होने पर रोना आस-ध्यान है ।

इस दुष्टान्त से मोक्ष एवं संसार के मार्ग को असंग्रस्तन समझना चाहिए ।

(भिक्षु दुष्टान्त १३०)

२६४. एक नगर में चोरो का बड़ा आलेख रहा करता था । राजा ने जन-धन की सुरक्षा के लिए इनाम घोषित करके चोरों को पकड़वाया । इस चोर राजा के सामने आकर पड़े बिसे भये । राजा ने उन्हें धिक्कार देकर फाँसी का हुकम दे दिया । एक छत्रवान सेठ ने दयाई होकर राजा से उन चोरों को प्रायश्चन देने की प्रार्थना की । राजा ने कहा — 'ये बड़े दुष्ट हैं । इन्हें जीवित छोड़ना देश के लिए खतरा मोम लेना है ।'

सेठ—'महाराज ! एक-एक के पाँच सौ रुपये लीजिए पर इन्हें मुक्त कर दीजिए । यदि इस को नहीं तो नौ की ही छोड़ दीजिए ।'

राजा ने स्वीकार नहीं किया । आखिर सेठ के अति आग्रह से राजा ने पाँच सौ रुपये लेकर एक चोर को छोड़ दिया ।

नगर के लोग सेठ की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'अग्य है सेठजी को, जिन्होंने एक बंदी को छुड़ाकर बड़ा उपकार किया है ।' वह चोर भी बहुत धुन हुआ और बोला—'सेठ साहब ने मुझे जीवनदान देकर बड़ा उपकार किया है, मैं इसे जिन्दगी भर नहीं भूल सकूँगा ।'

चोर अपने घर गया । उन मौखी चोरों के घर वालों को सब हकीकत कही । वे द्वेष से भाग-बदला हो गये । वह चोर अन्य सुटेरों को साथ लेकर उसी नगर में आया । दरवाजे पर सूचना-पत्र लगा दिया कि साहूकार तथा उनके सम्बन्धी जनो के अतिरिक्त शहर के निम्नाणवे मनुष्यों को मारकर ती चोरी का बदला लिया जायेगा । लोगो ने जब यह खबर सुनी तो उनका कलेजा धक्-धक् करने लग गया, होश उड़ गये । तस्कर-दन हत्या पर हत्या करने लगा । किसी का बेटा, किसी का भाई और किसी का बाप मार दिया गया । नगर में हाहाकार मच गया । लोग सेठ को गालियाँ देने लगे, उसके घर पर दहन मचाते हुए कहने लगे—'हाम रे पापी ! तुम्हारे पाप में धन ज्यादा था तो कुछ में डाल दिया होना । अगर तू एक चोर को न बचाता तो इतने मनुष्य क्यों मारे जाते और क्यों सैकड़ों नर-नारिनों को आसूँ बहाने पड़ते ।'

सबकी दुष्कार से सेठ क्षुब्ध हो गया और शहर को छोड़कर एक दूसरे गाँव में आकर रहन लगा । दुःखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा ।

सामाजी ने माराज की भाषा में कहा—'सामाजिक उपकार इस प्रकार का है । जिस सेठ की भोग एक दिन प्रसन्न करते थे, वे ही बाद में उसकी निन्दा करने लग गये । मोक्ष के उपकार में किसी प्रकार का खतरा नहीं है ।'

(भिक्षु दुष्टान्त १४०)

२६५ किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—‘असंयमी जीवों के पोषण करने में आप पात्र कहते हैं उसका क्या दृष्टिकोण है?’ स्वामीजी ने कहा—‘एक साहूकार रुपयों को नीची कमर में बांधकर जा रहा था। रास्ते में चोर उसके पीछे पड़ गया। साहूकार तो आगे और चोर उसके पीछे दौड़ा जा रहा था। दौड़ते-दौड़ते आवश्यक टोकर सधने से चोर नीचे गिर पड़ा और आगे चलने में असमर्थ हो गया। उस समय चोर को किसी ने अफीम छिनाकर तथा पानी पिलाकर स्वस्थ कर दिया तो वह अफीम खिलाने वाला साहूकार का शत्रु बन गया, क्योंकि उसने साहूकार के बैरी को सहयोग दिया।

इस प्रकार छह प्रकार के जीवों का बंध करने वालों का पोषण करने से वह छहवाय के जीवों का बैरी बन जाता है क्योंकि वह छहवाय को हिंसा करने वाले को सहयोग देता है।

(भिक्षु दृष्टान्त १३८)

२६६ एक बिमान ने छेती की। फलत अछठी निपजी और सनुगल सेती पक गई। उस समय छेत् के मालिक के घर में ‘बाला’ (नेहरुवा नामक रोग व इसका बीड़ा) निकल गया जिसके कारण वह धान्य नहीं काट सका। किसी व्यक्ति ने छेने भीषण देकर स्वस्थ कर दिया और उसने अछठी तरह फल को काट लिया इससे सहयोग देने वाला भी छेती काटने में जो हिंसा हुई उसका भागी बन गया क्योंकि उसने बिमान को सहायता दी।

इसी तरह जो अधार्मिक प्राणी हैं उसको शारीरिक सुख-सुविधा देने से धर्म कैसे हो सकता है।

(भिक्षु दृष्टान्त १३९)

२६७ सत्तार में दया-दया तो सभी पुकारते हैं पर यथायं स्वरूप समझकर पालन करने से ही आत्मवस्थान होता है। स्वामीजी ने लौकिक और अध्यात्मिक दया का पार्यंक्य बतनाते हुए कहा है—

दया दया सहु को नहे, ते दया धर्म छे छीक।

दया मोलख नें पालमी, स्थानें मुगल मजीक ॥

(अनुकम्पा री चोपई डा० ८ दो० १)

माय भैस आक योहरनो, ए च्यारुई दूध।

तिम अणुकम्पा जाणजो, रासे मन मे सुध ॥

आक दूध पीछा यका, जुदा करे जीवि काय।

ज्यू सावज्ज अणुकपा किया, पाष कर्म नछाय ॥

भोनेह मत भलुओ, अणुकपा रे नाम ॥

बीजो अतरंग पारखा, ज्यू सीझ आत्म काय ॥

(अनुकम्पा री चोपई डा० १ दो० २, ३,

२६८. स्वामीजी ने निम्न पद्य में वास्तविक दया का निरूपण किया है—  
 जीव जीवें ते दया नहीं, मरें ते हो हिंसा मत जान।  
 मारण वाला मैं हिंसा बहो, नहीं मारे होते तो दया गुण खोज।

(अनुकम्पा री चौगई का० ५ गा० ११)

२६९. बुद्ध दया के 'जैन सिद्धान्त दीपिका' में तीन साधन बताये हैं—  
 १. सदुपदेश २. विषाक-(कर्म-फल) चिन्तन ३. प्रत्याख्यान।

३००. (क) भगवान् अरिष्टनेमि धीकृष्ण के खचेरे आई थे। एक दिन अरिष्टनेमि धूमते-धूमते धीकृष्ण की आयुधशाला की ओर आ निकले। वहाँ का कर उन्होंने धीकृष्ण का पाञ्चजन्य नामक शस्त्र बजाया तो द्वारिका बोल उठी। धीकृष्ण बलभद्र आदि दोड़े दोड़े वहाँ पहुँचे। वहाँ अरिष्टनेमि को देखकर बर शास्त हो गये। धीकृष्ण की दृष्टि में वे अतुल बली और अजेय हो गए। अतएव धीकृष्ण ने उनका विवाह करना चाहा किन्तु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। आखिर बहुत लम्बी खर्ची होने के बाद अनिच्छित होते हुए भी उन्हें विवाह सब्जी अनुरोध स्वीकार करना पड़ा। दूब सजयम के साथ उनकी बर-यात्रा महाराज अग्रमेन की नगरी मधुरा की ओर चल पड़ी। राजकुमारी राजीप्रती के साथ उनका विवाह होना निश्चय हुआ था जो महाराज अग्रसेन की पुत्री थी। नगरी के बासवास बाड़ो में मधे हुए भूक-पशुओं की कवण कराह और विजरे में बरी बने व्याकुल पशियों की बहबहाहट ने राजकुमार का मुकुमार हृदय बीच डाला। सहसा राजकुमार ने सारथि से पूछा—'यह इतना कवण-कन्दन क्यों हो रहा है? ये इनने पशु-पक्षी बाड़ो और विजरो में क्यों भरे गये हैं? इसका क्या कारण है?' सारथि बोला—'प्रभो! यह सब आपके लिए है। यह बर-यात्रियों के लिए भोजन-नामसी है।' यह सुनते ही राजकुमार सहम उठा और बोला—'मेरे लिए इतना समर्थ! इतना आयाचार! मैं ऐसा विवाह कभी नहीं कर सकना। शिममे मेरे लिए इनने अशेष प्राणियों का वध हो, यह मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं होगा।'।

इस प्रकार विचार कर राजकुमार विवाह के लिए इन्कार हो गये और अन्ततः बर की ओर मोड़ लिया।

(उत्तराध्यायन अध्यायन २२ के आधार से)

भगवान् अरिष्टनेमि ने जो उपन अनुकम्पा की वह आत्म-मुक्तिरूप होने से पारमात्मिक है।

१. यह नाम कारण एव, हस्मिन्निति अनु श्रिया।

२. मे एव तु निवनेन, परमोके चविन्दई॥

(ख) जम्पा नगरी में साकन्द्री सार्यवाह के जिनपाल और जिनरक्ष दो पुत्र थे। उन दोनों भाइयों ने ध्यारह बार लवण-समुद्र की यात्रा की थी और अपने ध्यापार से बहुत सारा धन एकत्रित किया था। बारहवों बार वे फिर लवण-समुद्र की यात्रा के लिए प्रस्तुत हुए। माता-पिता ने निषेध किया पर उन्होंने वह नदी माना और यात्रा के लिए चल पड़े। जब जहाज समुद्र के बीच पहुँचा तो बड़े जोर का तूफान आया। समुद्र की उत्तुंग सहरों से टकराकर जहाज नष्ट-भ्रष्ट हो गया। टूटा हुआ एक काष्ठ-खंड डूबते हुए दोनों भाइयों के हाथ लगा। उस पर बैठकर दोनों भाई सहज गति से तैरते हुए रत्नद्वीप नामक स्थल पर जा पहुँचे। उस द्वीप की स्वामिनी का नाम रमणादेवी था। उसने उन दोनों को देखा और उन्हें अपने आश्रय में ले लिया। तब से वे दोनों भाई उस कामातुर देवी के साथ भोग-विलास करते हुए वहीं रहने लगे।

एक दिन लवण-समुद्र के अधिष्ठापक मुखियत नामक देव की आज्ञा से वह रमणादेवी लवण-समुद्र की सफाई करने के लिए गई। जाते समय उन दोनों भाइयों को उसने कहा—‘दक्षिण दिशा के वन-खण्ड को छोड़कर और किसी भी दिशा के वन-खण्ड में भ्रमण कर सकते हो।’ पीछे से दोनों भाइयों ने इच्छानुसार भ्रमण किया। सहसा मन में आया, दक्षिण दिशा के लिए देवी ने निषेध क्यों किया? वहाँ अवश्य कोई रहस्य है। हमें चलकर देखना चाहिए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, सैकड़ों मनुष्यों की हड्डियों के ढेर लगे हुए हैं और एक भीवित पुष्प शूली में विरोधा पड़ा है। यह स्थिति देखकर वे बहुत चबराये और उस मरणासन्न पुष्प से कुछ जानना चाहा। उसने कहा—‘जहाज के टूट जाने से मैं यहाँ आ पहुँचा था। मैं साकन्द्री नगरी का रहने वाला योद्धा का व्यापारी हूँ। बहुत दिनों तक यह देवी मेरे साथ काम-भोग भोगती रही। मेरे द्वारा एक छोटा-सा अपराध हो जाने पर उसने यह दण्ड मुझको दिया है। तुम दोनों की भी किसी दिन यही स्थिति होने वाली है। पहले भी इसने कितने लोभों को मारा है, ये हड्डियों के ढेर स्वयं बता रहे हैं।’ यह सुनकर दोनों भाई बहुत भयभीत हुए और वहाँ से भाग निकलने का उपाय उसने पूछने लगे। उसने बताया—‘पूर्व दिशा के वन-खण्ड में शैलक नामक एक यक्ष रहता है। उसकी आराधना करने से वह तुम्हें इस देवी के प्रपंच से छुड़ा सकता है।’ दोनों भाई पूर्व दिशा के वन-खण्ड में आये और उन्होंने शैलक यक्ष की आराधना की। प्रसन्न भूदा में यक्ष प्रकट हुआ और कहने लगा—‘मैं तुम्हें तुम्हारे इच्छित स्थान पर पहुँचा दूँगा, किन्तु वह देवी मार्ग में ही आकर तुम्हारे से अनुनय-विनय करेगी और अपने हाव-भाव से तुम्हें मोहित क पाहेगी। यदि तुम मन से भी उसकी ओर विचलित हुए तो मैं तुम्हें बीच में छोड़ दूँगा।’ दोनों भाइयों ने कहा—‘हम ऐसा नदी होने देंगे। किसी भी प्रकार हमें ले बलिये।’ यक्ष ने घोड़े का रूप बनाया और दोनों भाइयों को अ

पीठ पर बैठ जाने को कहा। दोनों भाई पीठ पर बैठे और मोक्ष प्राप्त वेग में आकाश मार्ग में उड़ने लगा। देरी आने स्थान पर लौटि और दोनों भाइयों को पकड़ नहीं देगा तो उगने बहुत शोक हुआ। उगने आगे दक्ष-गणपती ज्ञान में सम्मान पत्र प्राप्त मया विराटिक संतक धन की पीठ पर बैठकर दोनों भाई आकाश मार्ग में जा रहे हैं। वह सम्मान पत्र पट्टरी और उठे मोहित करने के लिए अनेक हावभाव दिखाने लगी। आगे विरह की अगस्त्य देना अभिप्राय करने लगी। त्रिनयन दृढ़ रहा, विचलित नहीं हुआ। त्रिनयन को उगरी अभ्यर्चना पर अनुकम्पा आई और वह रागसूत्र उगरी और देगने लगा। धन ने उगने विचलित हुआ समझकर पीठ में नीचे गिरा दिया। भीमे गिरने हुए त्रिनयन को देरी में गच्छ में गिरो लिया और उगने दृढ़ के दृढ़ के कर दिये। त्रिनयन मनुष्यत्व सम्पानगरी में पहुँचा। अपने माता-पिता से मिला। कुछ समय तक सामारिक मुष्ट भीम कर उगने दीक्षा ग्रहण की। आगु सेव कर मोक्षमें देवलोके में पहुँचा। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में उल्लास होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

(ज्ञाना गुरु अभ्यया ६ के आधार में)

त्रिनयन ने रचनादेवी पर जो अनुकम्पा की वह मोक्षपरक होने में साधक है।

१०१ दया का स्वरूप समझने के लिए दशमीजी ने तीन दृष्टान्त दिये—

(क) एक माहेश्वरी की दुकान में साधु टहरे हुए थे। रात को चोर आये। तावे लोहकर धन की धैलियाँ लेकर चसने लगे। इनमें में साधुओं की भीड़ खूब गई, उन्होंने चोरो को उपदेश दिया, चोरी की बुराई बतलाई, समझ कर चोरी का परित्याग कर दिया।

गुबह होते ही सेठ दुकान पर आया। एक बार तो वह दृश्य देखकर दबराया फिर चोरी द्वारा सारी स्थिति जानने पर पूसा न समझा और साधुओं के चरणों में झुककर उनका गुणगान करने लगा।

यहाँ दो कार्य हुए—‘एक तो चोरी ने चोरी छोड़ी और दूसरा सेठ का धन बचा। पहला धर्म है और दूसरा अनुसामिक फल। साधुओं ने चोरो की चोरी छुड़ाने के लिए उपदेश दिया पर धन बचाने की भावना न साधुओं की थी और न चोरो की—’।’

(ख) कमाई बकरो को लेकर बघ-भूमि की ओर जा रहा था। रास्ते में उसे मुनि मिल गये। उन्होंने हिंसा का दुष्परिणाम बतलाकर उसे समझाया। वह धर्म को समझ गया और उसने उसी समय आजीवन बकरो को मारने का त्याग कर दिया।

यह दूसरा दृष्टान्त है इसमें भी दो कार्य हुए —‘एक तो बसाई हिंसा से बचा और दूसरा उसके साथ-साथ बकरो के प्राण बच गये। इनमें पहला धर्म और

दुमरा उमरा प्रासंगिक पत्र है। मुनियों का प्रपाम हिमा छुड़वाने के लिए या पर पदों के विषय में न मुनियों का चिन्तन था और न बसाई का।

भोर भोरी के पाप में बने और बसाई बकरों की हिमा से। यहाँ उनकी आत्ममुक्ति हुई वह निन्देह धर्म है पर उनके साथ-साथ धन और बकरे बंधे, उन्हें यदि धर्म के साथ में जोड़ दिया जाये तो तीसरे दुष्टान्त पर ध्यान देना होगा।

(ग) रात्रि के समय एक दूधान में बैठे बैठे साधु स्वाध्याय कर रहे थे। सामने में तीन व्यक्ति निजने, जो बेध्या के पास जा रहे थे। साधुओं ने उन्हें तन्वी धिन कर पूछा तो उन्होंने गुरुचिन्तन होने हुए भी अपनी कुर्सी आसन को मुनियों के सम्मुख साफ-आत शरों में रख दी। मुनि ने व्यभिचार का भयकर दोष बतलाते हुए उन्हें तत्प्राप्त करने की प्रेरणा दी। उनका दिव्य प्रकाश से पर गया और उन्होंने उस जपन्य कृति को निमोत्रि दे दी।

जब बहुत देर तक वे नहीं आये तब बेध्या उनके पास आई और आकुल-आकुल होकर बोली—‘तुम लोग जल्दी चलो, नहीं तो मैं कुए में गिरकर आत्म-हत्या कर लूंगी।’ वे बोले—‘बहन ! हमने पर-स्त्री गमन का परित्याग कर दिया है इसलिए हम तुम्हारे पास नहीं आयेगे। तुमको भी हमारा यही कहना कि तुम भी मुनियों के समक्ष हम निवृत्त पाप को छोड़ दो, लेकिन वह नहीं मानी और कुए में गिरकर मर गई।’

यह तीसरा दुष्टान्त है यहाँ पर भी दो बातें हुई—‘एक तो साधु के उपदेश से व्यभिचारियों का व्यभिचार छूटा और दूसरी उनके कारण वह बेध्या कुए में गिरकर मर गई।’

अब हमें यह सोचना है कि यदि भोरी-त्याग के प्रसव में बचने वाले बकरों से साधुओं की धर्म हुआ माना जाये तो व्यभिचार त्याग के प्रसव में बेध्या के मरने के कारण साधुओं की पाप हुआ भी मानना पड़ेगा।

(शिवशु दुष्टान्त १४६)

उन सद्वर्ध में आचार्य भिक्षु द्वारा रचित पद्य—

भोर हिसक में कुसीनिया, मारे ताई हो दीघी साधो उपदेश।  
रथानें सावग्न रा निरवद-बिया, एहको छे हो त्रिष दया धर्म रस ॥  
ध्यान दर्शन चारिख तीनू रणों, साधो कीघो हो त्रिष भी उपहार।  
ते तो तिरण ठारण हुआ तेहना, उतारया हो त्यागें ससार भी पार।  
ए तो भोर तीनू समझयो बका, धन रहयो हो धनी में कुसले खेम।  
ईहसक तीनू प्रतिबोधिया, जीव बबिया हो कीघो भारण रो नेम ॥  
संभ जादरियो तेहनी, स्त्री हो पदी कूजा माई जाय।  
भोरो पाप धर्म नहीं साथ में, रहया भूजा हो तीनू इविरत माय ॥

घन रो घणी राजी हुवो घन रह्यो, जीव बचिया हो ते पिण हरपन पाय ।  
 साधु तिरण तारण नहो तेहना, नारी नै पिण हो नहो डबीई बाय ॥  
 कोई मूढ़ पिध्याति हम कहै, जीव बचिया हो घन रह्यो ते धर्म ।  
 तो उण री घडा रे लेखें, अस्तरी हो मूई तिण रा सार्य कर्म ॥  
 नोव आवादिक विरख मो, किण ही कीघो हो वाकण रो नेम ।  
 इविरन घटी तिण जीव मो, विरख उमो हो तिण रो धर्म केम ॥  
 सर इह तलाव फोहण सणों, सूस लेह हो भेटया आवना कर्म ।  
 सर इह तलाव भर्या रहै, तिण माहि हो नहो जिणजी रो धर्म ॥  
 साइ धेवर आदि पकवान ने, खाणा छोडया हो आत्म आणी तिण ठाप ।  
 बैराग बध्यों तिण जीव रें, साइ रह्या हो तिण रो धर्म न थाय ॥  
 दव देवो गाम जलायवों, इत्यादिक हो सावजन कार्य अनेक ।  
 ए सर्व छोडाई समझाय में, सगला री हो बिघ जानों तुमे एक ॥

(अनुकम्पा री ओपई का० १ ना० ५ मे १० तथा १२ से १५)

३०२ पुन दया का मर्म समझाने के लिए स्वामीजी द्वारा दिये गये साठ  
 दृष्टान्त—

(१) भैंस—नाडे (छोटी तलाई) में जा रही है जिसमें भैंसक, मछलियाँ,  
 फूलन, सट, फुहारे आदि अनेक जस स्थावर जीव हैं ।

(२) बकरे—पुराने घास के दिगने पर जा रहे हैं जिसमें सटें, घुन आदि  
 जीव विचरित रहते हैं ।

(३) बंस—जमीकंद (धूमी गाजर आदि) से भरे हुए नाडे की तरह समन  
 कर रहा है ।

(४) नाव—बच्चे जल से भरे मटके पर आकर खड़ी हो गई ।

(५) पत्थी—घास से भीगी हुई अकबुरही पर कितविन करते हुए जन्तुओं  
 को खूगने के लिए इकट्ठे हो रहे हैं ।

(६) बिजली—झूठे पर झगट लगा रही है ।

(७) मस्जिदा—गुद, बीनी आदि मोठे इन्धों पर बँठी मस्जिदों की बड़ी  
 मस्जिदा पकट रही है ।

इनमें यदि झूठे पर झगटती हुई बिजली को दूर करने में धर्म हो तो भोग आदि  
 को हटाने में धर्म होना चाहिये पर अहाँ अमंजबो प्राणी की प्राण रक्षा में अनयम  
 का पोषण, मनवयोग आदि होता है वहाँ कभी भी धर्म नहीं हो सकता । साधु  
 कभी बीनी के प्रति समता भाव रखने है जन बिजली को भी पकट हो ऐसा कार्य  
 नहीं कर सकते ।

इन सबमें स्वामीजी द्वारा निम्न वच—

नाही बचियो छै बेदक मःछर्या, माहे नीमल कूमन रो दूर हो । मस्जिद ॥



यह बोला—‘बीड़ी को बीड़ी जानना जान है।’ स्वामीजी—‘बीड़ी को बीड़ी धड़ना सम्भव है या बीड़ी सम्भव है?’ यह व्यक्ति—‘बीड़ी को बीड़ी धड़ना सम्भव है।’ स्वामीजी—‘जिमी ने बीड़ी मारने का त्याग दिया वह दया है या बीड़ी रही वह दया है?’ वह व्यक्ति—‘बीड़ी रही वह दया है।’ स्वामीजी—‘बीड़ी वायु में उड़ गई तो क्या दया उड़ गई?’ जब उसने मोच-विचार कर कहा—‘बीड़ी को मारने का त्याग दिया वह दया है पर बीड़ी रही वह दया नहीं है।’ स्वामीजी—‘यह दया का करना चाहिए या बीड़ी का?’ यह व्यक्ति—‘यह दया का करना चाहिए।’ जो व्यक्ति महत्त्वना में विचार करना है वह तब को समझ देता है।

(भिक्षु दृष्टान्त १६)

३०५. पीपल में अन्य मनुष्य के अनुपायी श्रावक ‘मालत्री’ को बर्बाद के प्रसंग में स्वामीजी ने पूछा—‘छद्मवास के जीवों को मारने में क्या हुआ?’ वे बोले—‘पाप हुआ।’ स्वामी ने पुनः पूछा—‘शिवाने में क्या हुआ?’ उन्होंने कहा—‘पाप ही हुआ।’ स्वामीजी ने भारीमानत्री स्वामी को संबोधित करते कहा—‘तुम एक पत्र में लिख तो—मानवी पानी विनाश में पाप करने है।’ यह सुनते ही मालत्री खींच कर बोले—‘मैंने पानी पीने में पाप कर कहा था।’ स्वामीजी बोले—‘पानी छद्मवास में आया या नहीं?’ वे बोले—‘है-है-है पर सिखना मन, सिखना मत, सिखना मन।’ ऐसा कहते हुए उठकर चले गये।

(भिक्षु दृष्टान्त २००)

३०६. जिमी ने कहा जैनागमों में कहा है—‘साधु को जीवों को रक्षना (रक्षा करनी) चाहिए।’ स्वामीजी बोले—‘बहु ठीक है, उसका तात्पर्य है कि शिव प्रकार जीव है उन्हें उसी प्रकार रक्षना पर जिमी को कुछ नहीं देना।’

(भिक्षु दृष्टान्त १५०)

३०७. कुछ लोगों की मान्यता है कि आग बुझाने में अन्य पाप और बहुत निर्दोश होती है। लेकिन आचार्य भिक्षु की यह मान्यता नहीं है। वे कहते हैं कि अगर आग बुझाने में अन्य पाप और बहुत निर्दोश होनी तो—१. सिंह जो मनुष्य, गाय, भैंस, अरुंधती आदि को मारता है। २. कुमाई जो प्रतिदिन पांच मो भैंस मारता है। ३. सांप जो ऊदरों को खाता है। ४. मनुष्य—जो पिता की मृत्यु मृत्यु के पीछे बड़बो, श्याम, नगर आदि जलाता है। ५. सेनाधिकारी—जो शान, नगरवासी प्राणियों को मारता है। उस समय कोई व्यक्ति उन मारने वाले सिंहादिक प्राणियों को मार देता है तो उसे भी अन्य पाप और बहुत निर्दोश होती चाहिए जो सम्भव नहीं है। यदि उन प्राणियों को मारने में अन्य पाप और बहुत निर्दोश नहीं है तो आग बुझाने में भी नहीं है क्योंकि एक कार्य में पुण्य पाप दो

नही हो सके ।

(मित्रवृ द्वाज समाप्त डा० २० गा० १ से १३ के आधार में)

१०८. बिमी ने कहा—‘एवेन्ट्रिड को मार कर एवेन्ट्रिड का पोषण करने में धर्म होता है ।’ स्वामीजी ने कहा—‘एक व्यक्ति ने मुझसे अनेक चीजें पूछी हैं कि वह क्या करना चाहता है, क्या उसमें धर्म है ?’ अथवा बिमी का ‘गोरा’ (धर्म आदि का गोरा) अन्धकार में बहने वालों को भुला दिया तो क्या उसमें धर्म है ?’ वह बोला—‘इसमें तो धर्म नहीं, क्योंकि उसमें मार्ग का ही इच्छा बिना देना दिया है ।’ तब स्वामीजी बोले—‘एवेन्ट्रिड ने कहा कि हमारे प्राण मृत्युकर हमारे जीवों का पोषण करना ?’ पोषण करने का नाम को एवेन्ट्रिड जीवों की चारी लक्ष्मी है इसलिए धर्म नहीं होता ।

(मित्रवृ द्वाज २६४)

निर्वन जीवों को धारण करने वाले प्राणियों के पोषण करने की बात व्यावहारिक दृष्टि में भी दर्शाया है फिर भी उन कार्य में धर्म अन्तर्भाव है वह उन मरीच जीवों का मनु होता है । ऐसा स्वामीजी का अभिमत है ।

१०९. कुछ व्यक्तिओं का कहना है कि हिमा के बिना धर्म नहीं होता, इस पर वे उदाहरण देते हुए कहते हैं—‘दो व्यावृत्त थे । उनमें एक ने अग्निवायु के आरम्भ-समारम्भ का त्याग कर दिया और एक ने त्याग नहीं किया । दोनों में एक-एक पैसे के चने छरीरे । जिसने नियम नहीं किया था उसने तो चनों को तोड़ कर भूमि में छर भिरे और जिसने नियम किया था वह चोरे चनों को छाने लगा । इनमें से एक छाया मान लो के कारणों के दिन बड़ी मिठा के लिए आ गया । जिसने आरम्भ-समारम्भ का त्याग नहीं किया था उसने तो भूमि में बहराकर तीर्थंकर शोध का उपार्जन कर लिया और जिसने त्याग किया था वह देखना ही रह गया । इसलिए हिमा के द्वारा ही धर्म होता है लेकिन बिना हिमा के धर्म नहीं होता ।’

स्वामीजी ने उनकी भुक्त का समाधान करते हुए कहा—‘दो व्यावृत्त थे, उनमें एक ने आग्नेय अन्तर्भाव का स्वीकार किया । एक ने बुद्धि का त्याग न करके शादी की । कामान्तर में उनके बीच बेटे हुए । बड़े होने पर धर्म के मर्म की समझ, वैराग्य भावना जाग उठी । माता-पिता ने प्रसन्न होकर दो बेटों को दीक्षा दिलाई, भावों की उत्कर्षणा से उन्होंने तीर्थंकर शोध का उपार्जन कर लिया ।’

स्वामी ने उन्हें आश्वासन करते हुए कहा—‘अगर तुम शोध हिमा में धर्म कहने

१. राजा ने मार धीमा में पोछा, ए तो बाग सीमें छणी मेरी ।

त्रिज माहि दुष्टी धर्म बनाई, ते राज जीवां रा उठ्या मेरी ॥

(पञ्चावत चउई डा० ७ गा० ४)

हो तो कुशील में भी तुम्हें धर्म कहना पड़ेगा, जो सिद्धान्त के विरुद्ध है। क्योंकि तुम्हारे दृष्टिकोण में हिमा के बिना धर्म नहीं होता तो कुशील के बिना भी धर्म नहीं हो सकेगा।' ये वापस जवाब देने में अगममर्ष होकर चले गये।

हिमा और दया की करणी (त्रिया) में धूप और छायाकी तरह भिन्नता है। त्रिप्रकार पूर्व और पश्चिम का मार्ग नहीं मिल सकता उभी तरह दया में हिमा और हिमा में दया का मिलान नहीं हो सकता।

(भिक्षु दृष्टान्त २१०)

२१०. कई व्यक्ति कहते हैं कि एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा पंचेन्द्रिय जीवों की पुण्यवानी अधिक है, इसलिए एकेन्द्रिय जीवों को मारकर पंचेन्द्रिय जीवों को बचा लिया जाये तो उनमें धर्म होता है।

स्वामीजी ने उन व्यक्तियों से पूछा—'एकेन्द्रिय से द्वीन्द्रिय की तथा द्वीन्द्रिय से त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय प्राणी को थोड़ी-सी सट्टें खिलाकर बचा लेता है तो उनमें धर्म हुआ या पाव?'

ये इसका कोई भी जवाब नहीं दे सके क्योंकि द्वीन्द्रिय को मारकर पंचेन्द्रिय को बचाने में भी धर्म नहीं मानते थे। स्वामीजी बोले—'जैसे द्वीन्द्रिय को मारकर पंचेन्द्रिय को बचाने में धर्म नहीं होता वैसे एकेन्द्रिय को मारकर पंचेन्द्रिय को बचाने में भी धर्म नहीं हो सकता।'

(भिक्षु दृष्टान्त २४८)

भगवान् ने अहिमा में धर्म कहा है न कि हिमा में। यदि हिमा में धर्म हो तो जल-मग्नन में भी भी निश्चय सकता है, पर ऐसा कभी नहीं हो सकता।

२११. स्वामीजी ने कहा—'धर्म दया में है।' एक हिमा-धर्मी बोला—'दया-दया बया कर रहे हो, दया रांड रही अबकुरही पर सोट रही है।' स्वामीजी बोले—'दया की तो जनामों में माता के तुल्य कहा गया है। त्रिप्रकार सेठ के मरने के बाद घर में सेठानी रही। अगर उसका बेटा सपूत है तो वह अपनी माता की सेवा-गुप्त्या करता है और सपूत बेटा है तो जप्ता-भीछा बोसना है माता को मरिया देता है। उभी प्रकार दया धर्म बनाने वाले भगवान् तो मोक्ष में पथार

१. हिमा की करणी में दया नहीं छै, दया की करणी में हिमा नाही जी। दया ने हिमा की करणी छै थारी, जू तावडो ने छाही जी॥ और कमल में भेल हुवे गिल, दया में मही हिमा रो भेलो जी॥ जू पूर्व ने गिल रो मारग, गिल विध बावें भेलो जी॥

(अनुपम्या की चौदई डा० २ भा० ७०, ७१)

२. त्रिप्रकार की नीक दया पर, यो जी हुवे तो पावे जी। जो हिमा मरु धर्म हुवे तो, जल मरिया की आवे जी॥

गये। पीछे जो मृत आवक तथा साधु होने हैं वे तो दया माता का यत्न करते हैं और तुम्हारे जैसे कपूत प्रकट हुए हैं जो दया को रांड-रांड बहकर पुकारते हैं।'

(भिक्षु दृष्टान्त २६७)

११२. सं० १८५३ में पानी में एक बार हेमराजजी स्वामी 'टीकमजी' से चर्चा कर रहे थे। एक माहेश्वरी भाई ने बीच में ही प्रश्न पूछा—'कासबेलिए को चार पैसे देकर सर्प को छुड़ाया उसमें क्या हुआ?' टीकमजी बोले—'अच्छा घर्म हुआ।' माहेश्वरी—'वह सर्प सोया चूहे के बिल में चला गया तो?' टीकमजी—'बिल में चूहा होगा ही नहीं तो?'

यह बात हेमराजजी स्वामी ने स्वामीजी को कही तब स्वामीजी बोले—'किसी ने काग को मारने के लिए गोली भसाई। इनने में काग बहा से उड़ गया और आयुष्य सम्बा होने से वह खप गया पर गोली खाने वाला तो पाप का भागी बन गया। ज्यों साँप को छुड़ाने पर वह साँप ऊदरे के बिल में चला गया, अन्दर चूहा न मिला तो उसकी विरभत थी पर सर्प को छुड़ाने वाला तो हिंसा का भागी बन चुका।'

भीखनजी स्वामी ने हेमराजजी स्वामी से कहा—'ऐसा जवाब देना चाहिए।'

(भिक्षु दृष्टान्त २७३)

११३. किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—'कोई हिंसक व्यक्ति बकरा मार रहा था। उसे बकरे को बचाने में क्या हुआ?' स्वामीजी बोले—'ज्ञान के द्वारा समझाकर हिंसा छुड़ाने में घर्म होता है। स्वामीजी ने दो भगुलिया ऊँची करके कहा—एक तो राजपूत मारने वाला और एक बकरा मारने वाला दोनों में भव समुद्र में डूबने वाला और नरक निगोद में भ्रमण करने वाला कौन है?' वह बोला—'मारने वाला राजपूत।' तब स्वामीजी ने कहा—'साधु राजपूत को समझाकर उसे हिंसा से बचाते हैं वह मोक्ष का मार्ग है पर बकरे के जीने की वाछा नहीं करते। जिस प्रकार एक साहूकार के दो बेटे हैं उनमें से एक तो दूसरों से ऋण लेता है और एक उतारता है। पिता जो ऋण लेता है उसे मना करता है और जो उतारता है उसे मना नहीं करता। वैसे ही साधु तो पिता के समान है और राजपूत व बकरा दोनों पुत्र के समान हैं। बताओ इन दोनों में कर्म रूप ऋण कौन लेता है और कौन कर्म रूप ऋण को उतारता है? उचित उत्तर यही होगा कि राजपूत तो कर्म रूप कर्जा लेता है और बकरा अगले बंधे हुए कर्म रूप ऋण चुकाता है।'

साधु राजपूत को मना करते हैं—'तुम कर्म रूप कर्जा तिर पर मत करो। इससे ससार में भ्रमण करना पड़ेगा।' इस तरह उसे समझाकर हिंसा से

३१७ एक बूढ़ भिक्षुक गावरा कर रहा था। किसी ने अनुकम्पा नाकर उसे एक सेर चने दे दिये। उगल कर एक बहिन को कहा—‘एक माँस न मुझे चने तो दे दिये पर दोन नहीं होने में उन्हें चबा मझे मरना भर भाग अनुकम्पा करके उन चनों को पिमाया पीजिए’ तब दूसरी बहिन ने कहा भाग में उन चनों को पीनकर उग बे दिया। आगे जाकर उमरी फिर एक बहिन ग कहा—‘एक धर्मोपा गावरा न मुझे चने दिये, दूसरी बहिन ने पीनकर माँस बना दिया, अब तुम मुझे रोटी बना दो’ तब तीसरी बहिन ने अनुकम्पा करके आटे में नमक-पानी मिलाकर रोटियाँ बना दी। वह रोटी खाकर तुष्ट हो गया। बोझी देर बाद मर्यादिक ग्राम सभी सब एक घर में जाकर कहा—‘अ है कोई धर्मोपा जो मुझे पानी पिमाये?’ तब चौथी बहिन ने दया भाव से उसे कच्चा पानी पिलाया।

एक व्यक्ति ने भिक्षु को एक सेर चने दिये। दूसरी बहिन ने पीनकर माँस बना दिया। तीसरी ने रोटियाँ पका दी और चौथी ने पानी मिलाया। अब सातव दान में धर्म एव पुण्य कहते हैं उनसे पूछना चाहिए कि अधिक धर्म किसको हुआ?

सात्पर्य यह है कि जहाँ आरम्भ-अमारम्भ होता है वहाँ धर्म नहीं होता।

(भिक्षु दृष्टान्त ४४)

३१८. ‘रीया’ ग्राम में अमरतिहरी की सम्प्रदाय के तिमोक्तव-दजी नामक साधु ने भीषणजी स्वामी से पूछा—शास्त्रों में भगवान् ने अन्न पुष्प, पान पुष्प आदि सब प्रकार का पुष्प कहा है। पर अन्न पान आदि नहीं कहा तथा परदेकी राजा की दानशाला कही है पर पापशाला नहीं कहा, लेकिन तुमने तो दान दवा को ही उठा दिया।’

स्वामीजी बोले—‘किसी व्यक्ति ने किसी को एक सेर बाजरी दी उसमें है तो पुष्प ही?’ तिमोक्तजी बोले—‘हम क्या जानें, हम तो जो पुस्तकों में लिखा है वह पढ़ते हैं। हमने आगरे का पानी पिया है, दिल्ली का पानी पिया है, इस तरह अनगँस बोलते लग गये।’ स्वामीजी ने कहा—‘दिल्ली, आगरे में तो गाँव भी कटती हैं, ऐसी फिजूल बातों में क्या है, अगर शास्त्रों का अध्ययन किया हो तो बताओ?’ इतनी देर में सूँका गच्छानुयायी ‘रतनजी’ नामक जती आ गये। उन्होंने यह बात सुनकर तिमोक्तजी को डाटते हुए कहा—‘हम शिथिल हो गये फिर भी एक घान के दाने में चार पर्याय और चार प्राण मानते हैं तो उसको खिलाने में पुष्प कैसे होगा? तुम मुहपटी बांधकर छराब क्यों हुए? तुम्हारी कितनी विरुद्ध माय्यता है कि एकेन्द्रिय खिलाने में पुष्प कह रहे हो? इस तरह कहने से वे कहीं से चले गये।’

सकता है, केवल जोश में आकर बोलने से नहीं।

(भिक्षु दृष्टान्त २४)

३१६. किसी ने कहा—‘अनुकम्पा साकर किसी को कच्चा पानी पिलाने में पुण्य होता है क्योंकि उसकी उस प्राणी के प्राण बचाने की भावना है पर पानी के जीवों को मारने की भावना नहीं है।’

स्वामीजी ने कहा—‘एक व्यक्ति हाथ में कटारी लेकर किसी को मारने लगा।’ तब वह बोला—‘तुम भुझे मत मारो।’ उस आदमी ने कहा—‘मेरी तुमको मारने की भावना नहीं है, मैं तो कटारी की परीक्षा करता हूँ और देखता हूँ कि धार कौसी है।’ वह बोला—‘रहने दो तुम्हारी परीक्षा, मेरी तो जिन्दगी जा रही है।’ इस तरह जो जीव बिलाने में भावना मज्झी बताते हैं उनकी भ्रष्टा ही विपरीत है।

(भिक्षु दृष्टान्त १०१)

३२०. कोई सावध दान में पुण्य कहते हैं, पर समझदार आदमी अपनी बुद्धि से उसकी परीक्षा करता है और उनसे पूछता है कि आप असयमी को देने में पुण्य तो कहते हैं लेकिन स्वयं असयमी को देते हैं या नहीं? वे कहते हैं—‘हमको तो देने में दोष लगता है क्योंकि हमारे कल्प में नहीं है।’ इसके लिए स्वामीजी ने दृष्टान्त दिया—‘एक पुरुष को किसी ने कहा—‘तुम्हारे वायु का रोग है इसलिए तुम सानपें मज्जिल वाले भकान की छत से नीचे गिरो तो तुम्हारा वायु का रोग मिट जायेगा। वह पुरुष बोला—‘भाई साहब! यह वायु की बीमारी तो आपके ही है, इसलिए पहले आप गिरकर बताइये। वह बोला—‘मेरे तो हाथ-पैर टूट आये अतः तुम ही गिरो। उस पुरुष ने तपाक से कहा—‘जब ऊपर से गिरने पर आपके हाथ-पैर टूट जाते हैं क्या मेरे हाथ-पैर नहीं टूटेंगे।’

इस प्रकार वे कहते हैं कि असयमी को देने में हमारी साधुता चली जाती है अतः तुम दो, तुम्हें पुण्य होगा पर चतुर मनुष्य तो उसे स्वीकार नहीं करता हुआ तत्काल उसका उत्तर दे देता है कि जिस दान से आपको साधुता चली जाती है तो उस दान से हमें पुण्य कैसे होगा?

(भिक्षु दृष्टान्त ७२)

३२१. दो व्यक्तियों के परस्पर में बहुत समय से बैर-विरोध चल रहा था। कालान्तर से दोनों के आपस में प्रेम हो गया। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपने घर पर भोजन के लिए ले गया। भोजन परोसकर वह कहता है—‘भाई साहब! भोजन कीजिए।’ तब वह दूसरा व्यक्ति कहता है—‘आप भी साथ में भोजन के लिए बैठिये।’ वह शामिल बैठना चाहता नहीं, तब उसने कहा—‘तुम्हारे बिना यह भोजन करने का त्याग है।’ उसने यह अन्दाज लगा लिया कि यदि भोजन में जहर मिलाया हुआ है तब तो वह शामिल भोजन करेगा नहीं और यदि जहर



हवा बड़ा-ब गुन होना या भाग्य ?' बड़ बोला—'गुन ही होना क्योंकि उगना अधिक काम दिवने में पायदा होता ।'

स्वामीजी ने कहा—'गुन लोग कहते हैं कि भी-उलखी के धावक दान नहीं देने जब तो मेने बाड़े जिाने पायब है के मझी मुहारे द्वार पर आवेंगे और मुहारे कपनानुसार बड़ धर्म मुहारे ही होता । इसलिये गुन भाग्य क्यों होते ? और साधुओं को निन्दा क्यों करने होते ?' बायन जवाब देने में अलग-अलग होकर बड़ अपने स्थान पर चला गया ।

(भिक्षु दृष्टान्त १४६)

१२५. कई अगर मर्यादा के साधु गुरुत्व लोगों में करने हैं—'जिसे जो भक्त आदि देने में गुण तथा मित्र (गुण पात्र) होता है ।' गुरुत्व बोले—'आपके आहार अधिक हो गया तो भोजन देने है या नहीं ?' वे बोले—'हम तो नहीं दे सकते क्योंकि वह हमारी विधि (कर्म) के अनुपम नहीं है अगर हम दें तो हमारी साधुता गड़बड़ होनी है । लेकिन गुन लोग दूसरों को देने को उगम मुहारे गुण तथा मित्र होता ।'

इसका स्पष्टीकरण करने के लिए स्वामीजी ने कहा—'जिग तारह जिग हवा में हाथी उड़ जाने है उस हवा में कई चींटी भी क्यों नहीं उड़ सकती ? अर्थात् भक्षण ही उड़ेंगी । उमी साहू साधु में दान व्यक्ति को दान देने में साधु के धर्म का भंग होता है तो गुरुत्व को पाप (दोष) क्यों नहीं लगता ?'

(भिक्षु दृष्टान्त २०६)

१२६. कई लोग आरोग्य मगाने हुए स्वामीजी से बोले—'आपने तो क्या दान ही उड़ा दिया है, आप जमी भाग्यता तो हमने कहीं नहीं देखी ।' स्वामीजी ने उन्हें समझाने हुए कहा—'आप लोग भी वर्तुषण के दिनों में 'आटा' (धान के बज) तथा आटा आदि किसी को नहीं देने । वर्तुषण तो विशेष रूप में धर्म करने के दिन है, अगर इनमें दान देना धर्म हो तो दान देना क्यों नहीं किया ? यह परम्परा भी बहुत पहल में चली आ रही है । उस समय हम तो थे ही नहीं, फिर वर्तुषण में नहीं देने की स्थापना किसने की ?'

(भिक्षु दृष्टान्त १४५)

१२७. कुछ साधु कहते हैं कि किसी को रुपये देने से उगकी ममता उतरती (पड़ती) है, इसलिये उसे धर्म होना है । इस पर स्वामीजी ने कहा—'किसी के पास २० बीघा तथा २० हज की जमीन लेनी करना के लिए थी । उसने १० बीघा तथा १० हज की जमीन ब्राह्मणों को दे दी । इसमें भी उगकी मायनानुसार उगकी यह ममता भी उतर गई और उसे धर्म भी कहना चाहिए ।'

अधन में रही हुई वस्तु का त्याग करने में ही ममता मिटती है पर असयती को देने से नहीं ।

(भिक्षु दृष्टान्त २२१)



दोनु धारा साधु मही कोनी, गुन छै अथवा गुन माही रे।

ते बग्नयो बरगमान् बान् आभी, ये भोष देख्यो मन माही रे॥

(बिरल बिरल री ओपई का० ३ गा० १७ मे २१)

११०. एक बार स्वामीजी 'कादरना' पछारे। वहाँ मुनि-प्रतिष्ठा करवाने के लिए छतिविजयजी भी आये। एक दिन रातने में दोनों का मिलन हो गया। छतिविजयजी ने स्वामीजी से पूछा—गुम्हारा क्या नाम है? स्वामीजी ने कहा—मरा नाम भीषण है।

छतिविजयजी—क्या वे छैराजकी भीषणकी गुम्हीं हो?

स्वामीजी—हां मैं वही हूं।

छतिविजयजी—गुम्हारे साथ निधोपों के विषय में चर्चा करनी है। स्वामीजी ने चर्चा प्रारम्भ करने हुए पूछा—निधोप किन्ने हैं?

छतिविजयजी—निधोप चार हैं—१. नाम २. स्थापना ३. इन्ध ४ धाव।

स्वामीजी—चारों में बग्ननीय कौन-गा है?

छतिविजयजी—चारों निधोप ही बग्ननीय हैं।

स्वामीजी—एक भाव निधोप को तो हम भी बग्नना करते हैं। शेष तीन निधोप बग्ननीय हैं। उनमें प्रथम भाव निधोप है। जैसे किसी कुम्हार का नाम भगवान् दे दिया तो क्या भाव उठे बग्नना करने है या नहीं।

छतिविजयजी—उसे क्या बग्नना की जाए, जबकि उनमें प्रभु के गुण ही मही हैं।

स्वामीजी—गुणवृत्त नाम को तो हम भी बग्नना करते हैं।

स्वामीजी—दुसरा निधोप स्थापना है यदि रत्नों में बनी हुई भगवान् की प्रतिमा हो तो आप उसे बग्नना करते हैं या नहीं।

छतिविजयजी—हां, रत्नों की, सोने की, चांदी की एक तई घातु की प्रतिमा हो तो भी हम उसे बग्नना करते हैं।

स्वामीजी—परवर की हो तो?

छतिविजयजी—हां बग्नना करते हैं।

स्वामीजी—उमो प्रकार मोहर की बनाई हुई हो तो?

यह सुनते ही छतिविजयजी मुझे से आकर बोले—गुम्हारे साथ निधोपों की चर्चा नहीं करनी है क्योंकि तुम प्रभु की आशातन्ना करते हो जिसे हम सहन नहीं कर सकते। इस प्रकार कहकर वे अपने स्थान पर चले गये और स्वामीजी भी अपने स्थान पर आ गये।

कुछ दिन पश्चात् लोगों के कहने से छतिविजयजी पुनः चर्चा करने के लिए आये। उनके साथ अनेक भाई भी थे। लोगों द्वारा निवेदन करने पर स्वामीजी भी मुनि भारमलजी को साथ लेकर पछारे। निकटस्थ एक दुकान में चर्चा प्रारम्भ

हुई।

स्वामीजी बोले—आज आचाराग आदि ११ अंगों के मन्त्र में चर्चा करती है। आचाराग मूल अध्ययन ५ उद्देश २ में इस प्रकार कहा है—सम्मे वाणा मयो भूया मयं जीवा सम्मे सत्ता हनन्ता, एत्य वि जागन् मन्विष्य शोभो मगादि-वयणमेव। अर्थात् सर्व प्राण भूत जीव और सत्त्व का वध करना चाहिए क्योंकि धर्म के लिए प्राणियों की हिंसा करने में दोष नहीं है, यह अनार्य दुष्टों की वाणी है।

प्रतिविजयजी ने कहा—‘यह पाठ गलत है।’ उन्होंने अपने शिष्य द्वारा दूसरी प्रति मंगाकर देखा तो उगमें भी वही पाठ निरुत्ता तब वे स्तब्ध से हो गये।

स्वामीजी बोले—इसे पढ़िये। पर में परिवर्तन नहीं पड़ने। ज्ञान बंद हो गई और हाथ कापने लगे। स्वामीजी फिर बोले कि आपके हाथ क्यों काप रहे हैं। हाथ धूजने के चार बारणो—१ कपन वायु २. प्रोध ३. चर्चा में पराजित ४ मिथुन (कामोत्तेजना) में कौन-सा कारण है? यह मुन्ने ही वे आवेश में आकर बोले—‘साले की सिर छेद डायू।’ स्वामीजी—गस्तर में जिनकी भी निन्दा है वे मेरे मा-बहिर्न के समान हैं तुम्हारे घर में यदि स्त्री हो तो वह मेरी बहन है। इस दृष्टि में आदमे मुझे माता कहा तो ठीक है। अगर आदमे घर में स्त्री न हो और मुझे साला कहा तो आपका कथन मिथ्या ठहरता है। फिर मन बाद कि जब आप साधु बने थे तब आपने यह प्रकार के जीवों के हनन करने का श्राव किया था। उस समय क्या मुझे मारने का आधार (छूट) रखा था?

प्रतिविजयजी इसका कुछ उत्तर न दे सके और घर में अत्यधिक चिन्त हुए। उस समय उनके श्रावक गौरीराम चौधरी ने कहा—‘आप अनार्य ब्रह्म बहुर हमें क्यों लज्जित कर रहे हैं, यहाँ से चलिए।’ इस प्रकार हाथ पकड़ कर वह उन्हें ले गया।

उन्के बाद स्वामीजी और प्रतिविजयजी पीपाड गये पर यहाँ नहीं पहुँचे। पीपाड के पश्चात् पायी पहुँचे तो एक दिन महज ही चर्चा-प्रमाण पाय पड़ा।

स्वामीजी—यदि भिक्षा में भूख में मिथी के बच्चे नमक आ जाए तो क्या करना चाहिए।

प्रतिविजयजी—मातु के पात्र में आ गया अतः उसे खा लेना चाहिए।

स्वामीजी—तब तो कोई व्यक्ति गुह के बच्चे में अर्धम और मिथी के बच्चे में मित्रकारी बहुरा दे तो उसे भी खा लेना चाहिए। प्रतिविजयजी जरा देते में असमर्थ हुए।

(भिन्नु दृष्टान्त २१)

१३१. स्वामीजी स्वामी गुमानजी के शिष्य रानोजी ने अपने गुरुजी से कहा—

‘मैं भीषणजी से चर्चा करना चाहता हूँ।’ गुमानजी ने उन्हें समझाते हुए कहा—  
‘उनसे चर्चा करते तो हमें भी भय लगना है, तब तू क्या चर्चा करेगा।’

रत्नजी ने भय लगने का कारण पूछा तो गुमानजी बोले—‘भीषणजी चर्चा का जो उत्तर देते हैं पीछे उमड़ी जोड़ कर देते हैं याम-याम में उसे भाइयों को सिखा भी देते हैं। जिससे वे सब चर्चा के लिए खड़े हो जाते हैं तब चर्चा हमारे लिए महंगी पड़ जाती है, इसलिए हम सकोच करते हैं।’

(भिक्षु दृष्टान्त ६५)

१३२. पुर में स्वामीजी से चर्चा करते हुए गुलाब अर्थात् जब निरुत्तर हो गये तो कहने लगे—‘मुझे निरुत्तर करने से कुछ नहीं होगा। हमारे गोमुन्दा के आबक तूगिया नगरी के आबको जैसे हैं, अजदरी मौहूर के समान हैं, उनसे चर्चा करोगे तब तुम्हें पता चलेगा।’ स्वामीजी बोले—‘अजसर आने पर उनसे भी चर्चा करने का विचार है।’

कुछ समय पश्चात् स्वामीजी गोमुन्दा पधारे। वहाँ के आबकों को चर्चा करके समझाया। वे तत्पश्चात् समझकर स्वामीजी के अनुयायी हो गये।

गुलाब अर्थात् ने जब यह बात सुनी तो स्वयं बड़ा आये और स्वामीजी से चर्चा करने लगे।

आबको ने स्वामीजी को रोबते हुए कहा—‘ये हमारे पहलू के गुरु हैं अतः हम भी इनसे चर्चा करेंगे।’ स्वामीजी ने उनकी बात मान ली। भाइयों ने गुलाब अर्थात् से ऐसी चर्चा की कि उन्हें निरुत्तर हो जाना पड़ा। आश्रित क्रुद्ध होकर कहने लगे—‘गोमुन्दा के भाई तो डीकरी’ (मिट्टी) के निकले निकले।’

(भिक्षु दृष्टान्त ६०)

१३३. पुर में ‘मेधजी’ भाट ने स्वामीजी के साथ चर्चा प्रारम्भ की। उन्होंने कहा—‘बानवादी ऐसा कहते हैं—भीषणजी ने एक गाथा में तो ऐसा कहा है कि—

एकलक्ष जीव यामी गीना, जद आहा नही आवै बंटा पोता।

नरक माहे छाता मारो, पायो धनुष जमारो मन हारो ॥

पर नव पदार्थ में पाच जीव बहने हैं इसलिए उनको ‘पाचलक्ष जीव यामी गीना’ इस प्रकार कहना चाहिए।’ स्वामीजी बोले—‘वे बानवादी मिट्टी में कि ‘नो आत्मा कहते हैं?’ मेधजी—‘चार आत्मा बहने हैं।’ स्वामीजी—‘उन चार आत्मा को बानवादी जीव कहते हैं या अजीव।’ मेधजी—‘चार आत्मा को जीव कहते हैं।’ स्वामीजी—‘सिद्धों में बानवादी चार आत्मा कहते हैं, चारों को जीव भी कहते हैं इसलिए उनके बधनानुसार ही चैतन्य जीव तो मान्य हो गया।

एक लक्ष हमारी अर्थात् हो गई। इस प्रकार गद्यज्ञान में वे बहुत प्रदम्य हुए।

(भिक्षु दृष्टान्त ३०)

१३४. माण्डूकेय ने शासक गुजरगर्भ की तथा केसूरासत्री के चर्चा करने-बाने आरम्भ में शिवाच हो गया। गुजरगर्भ की का कहना था कि 'शासन में अन्ध आचार है। यदि शासक में चास्त्रि आचार न हो तो इतिहासी के त्याग करने का क्या प्रयोजन ? और केसूरासत्री करने से मान। इस प्रकार चर्चा चल रही थी कि इतने में अचानक स्वामीजी बड़ी पगार मारे। उनसे परस्पर में तनाव पैदा एक व्यक्ति ने अचानक 'गुप्त रूप में से बागचीय न कर मारे इतिहास' दोनो मरक बाजोंट रक्त दिये। फिर स्वामीजी ने त्याग और युक्ति में दोनों को समझाया। स्वामीजी ने कहा—'शासक में गोप चास्त्रि नहीं इस अपेक्षा से मान आचार ही कहनी चाहिए और त्याग की अपेक्षा से देश चास्त्रि करना चाहिए।' (भिवन्तु दुष्टान्त ११)

१३५. स्वामीजी में तत्त्व-चर्चा की अद्भुत क्षमता थी। वे कठिन-मे-कठिन गुप्ती को इतनी जल्दी समझाने कि प्रश्नकर्ता की तर्क-विमर्क का अवकाश ही नहीं रहता। विशेषी ओग तो उनके साथ चर्चा करने में सदैव सक्षम रहे। तत्त्व जिज्ञासु उनके द्वारा दिये गये समझाने में इतने संतुष्ट होने कि उन्हें कभी झुन नहीं मचने। जब कभी कठिन चर्चा का काम पड़ेगा तब भाषी पीढ़ी उन्हें याद करती रहेगी। इस विषय में कहा है—

हिंस्र मोक्षों तो पार्व नहीं थे, भीष्म मरीया साध।

करलो काम परभी परचा तर्कों से, निग आवेला याद ॥

(मुनि बेणी० वृत्त भिवन्तु चरित का० ११ गा० १३)

१३६. किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—'आपका यह कठोर मार्ग (तेरापथ) कितने वर्षों तक चलेगा ? स्वामीजी ने कहा—'जब तक साधु-साध्वी श्रद्धा आचार में दृढ़ रहेंगे, वस्त्र-यात्र उपकरण आदिक की मर्यादा का उत्तमपन नहीं करेंगे, साधु के निमित्त बना हुआ स्थान, भोजन-पानी आदि नहीं लेंगे, तब तक अच्छी तरह चलेगा, ऐसा विश्वास है।' (भिवन्तु दुष्टान्त १०७)

१३७. स्वामीजी को किसी ने नम्र निवेदन किया—'गुरुवर ! आप बुद्धि हैं अवस्था प्राप्त हैं, इसलिए आपको तो बैठे-बैठे ही प्रतिप्रमण' करना चाहिए, क्योंकि खड़े-खड़े प्रतिप्रमण करने में आपको बहुत तकलीफ पड़ती है।' (भिवन्तु दुष्टान्त १०७)

स्वामीजी ने तत्काल फरमाया—'अगर हम बैठे-बैठे प्रतिप्रमण करेंगे तो आगे आने वाले साधु सोये-सोये प्रतिप्रमण करेंगे, ऐसी संभावना है। हम खड़े-खड़े करते हैं तो ये कम-से-कम बैठे-बैठे ही करेंगे।' स्वामीजी के दूरदर्शितापरक

१. जैन साधु की आवश्यक विद्या, जो कि ज्ञान-अज्ञान में हुए दोषों के प्रापश्चित्तार्थ रात्रि के प्रथम और अन्तिम मुहूर्त में की जाती है।

वचन सुनकर प्रश्नकर्ता का मन आह्लाद से भर गया ।

(भिक्षु दृष्टान्त २१२)

३३८. बूढ़ी में सवाईरामजी ने स्वामीजी से पूछा—‘आप ध्याध्यान समाप्ति के समय भाई-बहनों से नौने क्यों सेते हैं, अर्थात् सौपघ (नियम) क्यों दिलाते हैं ? जैसे किसी सेठ ने अपनी पुत्री का विवाह किया । उस समय समग्र जाति भाइयों को भोजन कराया । जोमनवार में खर्च अधिक लगने से वह उमकी पूति के लिए सम्बन्धी इनों से नौना सेता है । वैसे आपके भी क्या कुछ कमी है जिसकी पूति के लिए आप ऐसा करते हैं ?’

स्वामीजी ने एक दृष्टान्त के द्वारा उक्त प्रश्न का समाधान करते हुए फरमाया—‘एक सेठ ने अपनी बेटी का विवाह किया । अनेक गावों के सगे-सबधी एवं ज्ञानि-परिवार को बुलाया उन्हें बहुत दिनों तक बड़े प्रेम से नाना प्रकार के मनोज्ञ पकवान खिलाये । आखिर सम्मानपूर्वक बिदा देते समय उनके साथ मिठाइयों से भरी रैलिया दे दी, क्योंकि रान्ने में जब-जब भूख लगे तब-तब वे खाते जाए और खेम-कुशल से अपने घर पहुँच जाए । ठीक इसी प्रकार हमने भाई-बहनों को अनेक दिन वैराग्यमय व शिक्षाप्रद श्रावण सुनाया । भव्यमनों ने मुन-मुन कर परम आनन्द का अनुभव किया और कर्म निर्जरा कर आत्मा को उज्ज्वल बनाया । अब हम विहार कर रहे हैं अतः त्याग रूप पकवानों की रैलिया देते जा रहे हैं, जिससे वे सील मार्ग में मुखपूर्वक गमन कर सकें तथा पीछे से हमारे द्वारा दिये गये उपदेशों को याद कर-कर धर्म ध्यान में लगे रहें । इस प्रकार दूसरों की कमी पूर्ण करने के लिए नीति सेते हैं ।’

सवाईरामजी तथा अन्य श्रोतागण सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ।

(भिक्षु जश रसायण डा० ४१ दो० १ से ६)

३३९. नायटारा से ‘मोटागाव’ जाने समय बाटी की घाटी, भूताने का घाट, मोड़ी आदि ग्राम बीच में आते हैं जो क्रमशः दस, छह और तीन मील की दूरी पर हैं । एक बार वृद्धावस्था में स्वामीजी उम रास्ते में पधार रहे थे । चलते-चलते अधिक थकावट आने से स्वामीजी ने रुककर एक गाथा फरमाई—

बाटी री घाटी हो चढ़ता दोहिली, दोहिलो भूताने री घाट ।

मोड़ी सी पग पाछा मोडे घणा, पर आये है चारत्तीर्य रा ठाट ।

त्रिनेश्वर देवा ! बुझापो आया हो चनणो दोहिलो ॥

वरजुन बुझापो में चलना कितना कठिन होता है वह स्वामीजी ने इस गाथा से प्रकट कर दिया ।

(युनानुयुत)

३४०. स्वामीजी का अधिकांश समय सिद्धान्तों के पठन-पाठन एवं चिन्तन-मयन में व्यतीत होता था । रात-दिन वे स्वाध्याय ध्यान में तन्मय रहते हुए जनु-

६. मुनि मेनगीजी (२२)
७. मुनि बेणीरामजी (२८)
८. मुनि हेमराजजी (३६)
९. मुनि रायचन्द्रजी (४१) आदि।

### आयक गेदलालजी व्यास

१४६ गेदलालजी व्यास जोधपुर के पुष्करणा वाहन थे। स्थानवासी सम्प्रदाय से पृथक् होकर स्वामीजी जोधपुर पधारे। वहाँ व्यासजी आदि १३ भाईयों की सम्प्रदाय। ये स्वामीजी के प्रथम अनुयायी (श्रावक) बने। व्यासजी स्वामीजी के शुद्ध आचार-विचार में बहुत प्रभावित हुए। दया दान आदि मूलमूल सिद्धान्तों की उन्होंने बड़ी भारीकी से सम्पत्ता और हृदय धनानु जन गये।

व्यासजी के जैनी बनने में ब्राह्मण लोग बहुत नाराज हुए। उन्होंने व्यासजी के साथ अपना व्यवहार बद कर दिया। पर व्यासजी की थडा अहिम भी इमनिद से विरोध से धमराये नहीं। व्यासजी का पुन विवाह के योग्य हो गया पर वहा कोई अपनी पुत्री देने के लिए तैयार नहीं हुआ। आग्रिउर उन्हें अपने पुन का मवय किमी दूसरे ही गाव मे करना पटा।

विवाह के समय पुत्री के पिता ने दहेज में मुकुवस्त्रिक, पुत्रनी और आसन भी (सामायिक के उपकरण) दिया। उन्हें देखकर लोगों ने व्यासजी से कहा— 'सम्बन्धी ने आपके साथ मजाक किया है।' व्यासजी गभीर विनन करके बोले— 'मेरे सम्बन्धी यहें बनुर हैं, उन्होंने सोचा कि व्यासजी जैन धर्म को मानने वाले हैं, मेरी सझकी उनके घर पर जायेगी तो उसे वहाँ सामायिक, पीपघ आदि के लिए आवश्यक सामग्री की अनेता रहेगी। इसलिये उन्होंने ये वस्तुएं दी हैं।' उनका यह उतर सुनकर परस्पर में विद्वाने वाले लोग खूब हो गए।

व्यासजी तैरापथ के प्रथम श्रावक होने के साथ-साथ दूर देशों में धर्म प्रचार करने कार्य में भी प्रथम थे। वे एक सेठ के यहाँ नौकरी करने थे। वे जहाँ जाते वहाँ ध्याभाविक धर्मा के साथ प्रसन देखकर धार्मिक धर्मा भी दिया करने थे। एक बार स. १८५१ में वे माछवी बंदर (कच्छ) गए। वहाँ स्थानवासी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध श्रावक टीहमजी डोगी के वहाँ ठहरे। डोगीजी भी धर्म-प्रिय और धर्म विज्ञानु स्मरिक् थे। भोजन आदि से निवृत्त होने के पश्चात् दोनों धार्मिक धर्मा करने मंगे। डोगीजी को यह जानकर बहुत आश्चर्य एवं प्रसन्नता हुई कि व्यासजी भी जैन धर्म को मानने वाले हैं।

टीहम डोगी ब्राह्मणों की आटा, चावल, धी आदि देकर, 'सदाशन' (हमेशा भूखों और बगीचों को भोजन देने का कार्य) किया करने थे। उसी प्रसंग को सेठ

ध्यासजी के माय दान विपयक चर्चा होती । ध्यासजी ने सैद्धान्तिक प्रमाण<sup>१</sup> ॥ माय न्यामीजी के विचार उनके सम्मुख रहे । डोगीजी स्वयं समझदार थे अतः ध्यासजी द्वारा कही गई बात उनके हृदय में बैठ गई । उन्होंने कहा—‘माने मेरी आँखें खोल दी हैं, मैं भी आपने हमी भडा को और आचार्य भिनु को गुरु रूप में स्वीकार करता’ ॥ १’

ध्यासजी टीकम डोगी के हृदय में सहरी छाप छोड़कर चले आये । पीछे से वे अन्य लोगों को सरत समयमाने समय गेरसासजी का नाम आने रखते और अपने आपको ‘गेरपपी’ कहते ।

सं० १८१३ में उन्होंने मारवाड़ में आकर स्वामीजी के प्रत्यक्ष दर्शन किए एवं गुरु धारणा स्वीकार की । वापस आकर उन्होंने अनेक परिवारों को श्रद्धालु बनाया । कच्छ प्रदेश में तेरापय का जो सर्व प्रथम प्रचार हुआ वह टीकम डोगी के द्वारा ही हुआ । साधु समुदाय के न जाने पर भी उन्होंने तेरापय एवं स्वामी भीषणजी के नाम की प्रख्यात कर दिया<sup>२</sup> ।

कुछ वर्षों के बाद टीकम डोगी के मन में अनेक लोगों की शका पड़ गई तब सं० १८१६ में वे दूसरी बार मारवाड़ में आये । शकाओं के २६ ‘भीतीये’ (पत्ने) लिपकर लाये । पाली चानुमांस में स्वामीजी के दर्शन किये और चर्चा करने लगे । स्वामीजी ने २६ ‘पत्नी’ में लिखे गए सवेहारमक प्रश्नों का समाधान किया । वे

१. समणीवामगस्त न भंति ! तद्वाच्यं न मन्त्र-विरय-महिम्न-वचन-व्याय-व-कम्म पागुण्यं वा, अफामुण्यं वा, एतज्जिणं वा, अणेमणिज्जेण वा अमण-पणि-आदमज्जादमेण पडिसाभेमानसम हि कज्जई ?

गोपया ! एमणसो से पावे कम्मे कज्जई, नत्थि से काइ निज्जराकज्जई ।

(धम्मपटी शतक = उद्देश ६ सूत्र २४७)

२ गेरसासजी ध्यास रे, ध्यासक तेरा माहिलो ।

ते कच्छ देगे गयो ताम रे, टीकम ने समत्रावियो ॥

(मित्रवृ० ज० २० दा० ५३ सो० ३)

टीकम डोगी देश नरुछ थे, तिण ने ध्यास गेरसास मिलिया रे ।

पूज दीदार देख्यां विण डाट्टे, ज्ञाव सुणी गुरु करिया रे ॥

(धा० सोमजी कृत पूज गुणी दा० १४ गा० २८)

३. टीकम डोगी आम रे, देश कच्छ में दीपतो ।

तेपने गुणसठे ताम रे, पुज्यवने आयो प्रकट ॥

प्रकट तेह प्रजोग रे, कच्छ देशे धर्म बाधियो ।

स्वाम तर्ण सजीव रे, जीव हजारों उद्धर्या ॥

(मित्रवृ० ज० २० दा० १३ सो० ४,५)

गदगद होकर आँखों में आँसू बरसाने हुए स्वामीजी के चरणों में झुककर बोले—  
‘भाग न होने लो न जाने मेरी क्या रीति होगी ? आज तो तीर्थंकर एव नेत्रजाली  
के मुन्ना है । स्वामीजी द्वारा रचित ‘चोटीयाँ’ सुनकर वे बोले—‘ये तो अंगनों  
की नियमितिनयों हैं ।’ इस प्रकार स्वामीजी के मुताबिक वे मुनगाए दिने । प्रोक्त  
दिनों तक मेरा वह वापस बचपु देन में गए ।

बड़े बर्गों बाद फिर सजाओप हो गये । स्वामीजी का सम्पर्क न होने से उनमें  
मंदेहो का निराकरण नहीं हो गया । अब मैं उम्होंने चौखटार मधारा रिता और  
बहु—‘मेरी सजा तो सीमघर स्वामी ही मिटायेगे ।’ १५ दिन के सपारे में  
आशुप्य पूर्ण किया ।

(भिक्षु दृष्टान्त १८० और १९४)

सुना जाता है कि अनशन में भयंकर तृषा परिणत उत्पन्न होने पर भी के  
अक्षिप्त रहे । उम्होंने उस समय कहा—‘मैं तो अनशन की पार पट्टा दूंगा पर  
चौखटार अनशन पूर्ण मोक्ष-विचार के ही करना चाहिए ।’ दूसरी बात उम्हें  
कही—‘योगी की चर्चा में अधिक नहीं उत्तमाना चाहिए ।’

### ध्यायक शोभजी

१४७ स्वामीजी के सुप्रसिद्ध, अतन्व भक्त ध्यायक शोभजी का जन्म केरल  
(मेवाड) के कोठारी (चोरटिया) परिवार में हुआ । स्वामीजी ने स० १८१७  
का सन्ध्यायम चानुर्मास केलाश में किया, तब उनके पिता मेनजी ने परिवार  
सहित स्वामीजी से सम्बन्ध अर्थात् स्वीकार की थी । उस समय शोभजी गर्भ में थे ।

अद्यात्त घर में जन्म लेने से शोभजी की सहज ही धार्मिक अर्थात् के सत्कार  
प्राप्त हो गये । बड़े होने पर तत्त्व समझकर वे दृढ़ ध्यायक बन गए । स्वामीजी के  
प्रति उनकी अटूट श्रद्धा थी । वे काव्य-रस के बड़े रसिक व कुशल कवि थे । उनकी  
कविता में भक्ति-रस कूट-कूट कर भरा हुआ है । उनके द्वारा रचित गीतकारिक  
की पढ़कर पाठक हर्ष विभोर हो जाता है । उनके सुललित पद्य व्यक्त को सम्पन्न  
बना देते हैं और सुषुप्त मानस का शरभोर देते हैं ।

उनकी समग्र रचना अनुमानतः अठतीस सौ पद्यों में है । स्वामीजी ने १६  
हजार लगभग गायत्री की रचना की । उनको ध्यान में रखते हुए शोभजी ने सो-  
सौ पद्यों के पीछे दस-दस पद्य बनाए ।

शोभजी धार्मिक तथा सांसारिक दोनों ही क्षेत्रों में निपुण थे । युवावस्था प्राप्त

१ शोभो गर्भ माहे वर्ष सतर, जद बादल जाजा शरिया ।

जनम रिहयाण थी पूज वेसवे, साध कई सचरिया ॥

(पूज० गृणी० डा० १४ गा० १७)

करने के बाद उनको घर का भार सभालने के साथ केलवा ठिकाने का प्रधान बनने का उत्तरदायित्व भी प्राप्त हुआ। कई वर्षों तक उन्होंने उस दायित्व को सफलतापूर्वक निभाया। परन्तु एक बार किसी बात को लेकर तत्कालीन ठाकुर साहब से मतभेद हो गया। धीरे-धीरे मतभेद के साथ मनोभेद भी बढ़ने लगा। शोभजी ने अपने प्रतिकूल वातावरण देखकर तत्काल अपनी व्यवस्था की और परिवार सहित गुप्त रूप से केलवा को छोड़कर नाथद्वारा में बस गये।

केलवा के ठाकुर शोभजी से दृष्ट तो वे ही जब उन्हें पता लगा कि वे भाग कर नाथद्वारा जा बसे हैं तो वे और अधिक उत्तेजित हो गये। उन्होंने उसका बदला लेने के लिए नाथद्वारा के बड़े जागीरदार गुमार्दजी ॥ सम्पर्क किया और शोभजी पर कल्पित आरोप लगाकर उन्हें बन्दी बनाकर कारागार में डलवा दिया।

स्वामी श्रीखणजी उस समय आसपास के गाँवों में बिघर रहे थे। उनके पास जब वे समाचार पहुँचे तब वे शीघ्र ही अवसर देखकर नाथद्वारा पधारे और शोभजी को दर्शन देने के लिए कारागृह में गये। स्वामीजी जब उनकी कोठरी के सम्मुख पहुँचे तो देखा कि शोभजी एकाग्र होकर ग्रा रहे हैं—

मोटो फड इण जीव रे रे, कनक कामणी होय।

निकल सकू नहीं उलझ रह्यो रे, तिण सू दरसन पड़्यो रे बिछोय।

पूजमी का दरसन किण दिन होय, स्वामी सू मिसणो किण दिन होय ॥

कुटव रिघ सहु बिचरियै रे, अत रहै सब रोय।

मगलीक दरसन पूज रो रे, सेवग दीपक सोय ॥

(पूज गुणी डा० ५ गा० १, २)

हरमादिक पद्य बोलते हुए दास का अन्तिम पद बोला—

दरसन श्रीजीदुवार मे रे, सेवग दीपक सोय।

भाण भलो जदे उगसी रे, शोभो चरण सुकमल लपोय ॥

(पूज गुणी डा० ५ गा० १३)

स्वामीजी क्षण भर रुककर बोले—‘शोभजी ! हम तुम्हें दर्शन देने के लिए आ गये हैं (दरसन इण विधि होय)।’

स्वामीजी के शब्द सुनते ही शोभजी ने आँखें खोली और देखा कि साक्षात् स्वामीजी ही खड़े हैं तो उनके हृदय में प्रमन्नता का सागर उमड़ पड़ा। वे भाव-विह्वल होकर दर्शन करने के लिए आये बड़े कि तत्काल पैरों में बधी हुई बेदिया (लोह शृङ्खला) लडाक से टूट गई।

जैन के सरसक इस घटना को देखकर स्तब्ध हो गये। उन्होंने इसे दैवी घटना माना। शोभजी के बन्धन टूट जाने की सूचना शहर में पहुँची तो सज्जन लोग प्रसन्न हुए। गुमार्दजी ने जब वे समाचार सुने तब एक बार तो दुविधा में पड़

गये पर आखिर जेल में रचना उचित न समझकर उन्हें ही शोमजी को छोड़ दिया।

शोमजी जैसे श्रद्धाशील थे वैसे ही कमेंट थे। वे जहां बंदी जाने बड़ा मगर्ज में आने वाले व्यक्तियों को धर्म का मर्म समझाते। उदयपुर के सुप्रसिद्ध बेगाजी महारी को उन्होंने ही समझाया था।

शोमजी द्वारा रचित 'पूज गुणी' नामक कृति है उसमें लगभग ३० गीतिकाएँ हैं वे गीतिकाएँ अत्यंत भाव-भरी व प्रेरणादायिनी हैं कि माने-गाते श्रद्धा के प्रति महज ही श्रद्धा-रस उमड़ पड़ता है। कई-कई ठानों में तो इतनी सुन्दर ठानाएँ और भावामिष्यक्ति की है कि भक्ति रस से आत्माविवश भक्त का हृदय ही बोल रहा हो।

उनकी प्रमुख गीतिकाओं के कुछ आकष्यक एवं रोचक पद्य निम्नोक्त हैं—

पूज भीखणजी रो ममरण कीजै, भव दुख जाई मवें भागजी।

बामो वही तो देवलोक माहि, पामें मुक्ति पुरी नो रात्र जी॥

श्री पुण्य भीखणजी रो ममरण कीजै॥

भी—बहुता भीनू ब्रज लीला, ख—बहुता छिम्पा रम पीतजी।

न—बहुता सावत्र बाम निशार्या, जी—बहुता इन्द्या ने जीत जी॥

ओ ममरण चित्तामनि चार आखर रो हो, तिन माही गुण छी अदाग जी।

बन्नी निधान जू ओ ममरण मार्ग, त्वारो वीर बहो कह्यो भाग जी॥

(पूज गुणी डा० १२ गा० १ मे ३)

देवलोक बन्नी हो घन तप बार मू, बम मू टहर्यो देवल भार हो।

जु भरत केन में भक्ति लगे, धर्म रा बम पूज आगार हो॥

भोमो अरज करै दर्शन तनी, ए तो यावक केनवे मेहर हो।

मैं तो माता गूषी पूज गुन लगी, गुह्ये ओ दिग्दा में देहर हो॥

पूज महम मुख कक बँकरे, साये एक भव रमना रदान हो।

महम आरु मग गुन कक, तो तिन पूरा कछा न जान हो॥

(पूज गुणी डा० ११ गा० ३१ से ४१)

कर हो जीव नू मरत भीनू तनी, मिहू टनी परे तेहू मूर्ख।

बगन दागी करै घेन मरदे करी, ते मुन दाखर भोज भूज॥

कर हो जीव नू मरत भीनू तनी॥

पूज भीखणजी ने भेटयो भाव मू, त्या तनी मरतो नू जान मोटी॥

बम कू बाटिने मोख कू मरिदई, छोहो दाखर छैन मोटी॥

पूज भीखणजी ने देवदा देवल मेवना, बमन ना पूज जू तेहू मूर्ख॥

मन मरत एही पूज ओ टपारोना, केन कर तीरथ धार मूर्ख॥

एन महका बंवा में देवल मरिदा, जलनी एहो पूज जानो।

बान हो दुखर मे मरतु मरिदा, मरिद करै हीछे हाथ जानो॥

बोले दया दुर इन्द्र में ऊँच रहा, मोक्ष बड़े उनी जगदान देगा ।  
 धन धन की कोई पूछ भी मागधा, ली मान लो दूना कपाय रंगा ॥  
 काम लीला में एक साहस ब्रह्म ही, यदि कबना यदिय राखी ।  
 अनन्य आल ली काम एकपुत्र ही, आ धर्मा की प्रीति लइ मोक्ष भाखी ॥  
 (पुत्र दुली की सा० १६ पा० १,२,३,४,५ और ४०)

### धातक विजयचन्द्रजी

१४८. विजयचन्द्रजी पटवा धामी (धारवाह) के निव गी और ज्ञानि मे  
 पोरवान थे । धामी उम समय धारवाह के बड़े इन्द्रों में मिला ज्ञाना या और  
 व्यापार का भी एक प्रमुख केन्द्र था । वही अनेक धर्मिक परिचार रहने थे । पटवा-  
 जी उन मध्य में अधिक सेनी में जाने जाने थे । वे धार्मिक भावना में भी अग्रणी थे ।  
 उनमें लक्ष्मिन्धु कुछ सम्मरण दिग्ग प्रचार है—

१. एक बार स्वामी भीष्मजी धामी पधारे । वही विजयचन्द्रजी पटवा गया  
 उनके एक मित्र वर्धमानजी भी भीमान थे । वे दोनों स्वामिन्धुधामी धातक थे ।  
 उन्होंने मन-ही-मन यह कहकर किया कि यदि भीष्मजी हमारे प्रभों का समुक्तिन  
 समाधान कर देंगे तो हम उनके अनुयायी बन जायेंगे ।

साधारण प्रतिक्रिया होने के कारण वे दोनों दिन में स्वामीजी के पास जाने  
 का साहस नहीं कर सके । रात को भी जब एक शहर के लगभग राति अनीत हो  
 चुकी थी तब वे स्वामीजी के पास पहुँचे । मोक्ष व्याप्यान सुनकर अपने-अपने घर  
 चले गये थे । माधु सोने की लीलागी कर रहे थे । स्वामीजी ने जब इन दोनों मना-  
 गन्तुओं को देखा तो गलों में कहा—‘तुम लोग मो जानो, मैं अभी कुछ देर इन  
 लोगों में बातचीत करूँगा ।’ स्वामीजी दुबान में बाजोट पर बैठ गये और वे दोनों  
 बीचें खड़े हो गए । किसी धार्मिक विषय पर चर्चा प्रारम्भ हुई । स्वामीजी उनके  
 प्रभों का मुक्तिपूर्वक उत्तर देने लगे । वे दत्तचित्त बाल बुद्धि से सुनने लगे । चर्चा  
 में रम करगने मना और चर्चा जारी सम्भी होती गई । तब आगन्तुक दोनों ही  
 भाई बैठ कर यात्र करके गये । आग्रि बालपीत करते-करते प्रणिममण का समय  
 (एक मुहूर्त राति अवसंभ रही) हो गया तब वहीं चर्चा समाप्त हुई । दोनों  
 धर्मिणों ने करबद्ध धर्म होकर गुरुधारणा स्वीकार की । स्वामीजी के घरणों में  
 इनका भाव से बदल कर वे अपने-अपने घर चले गये ।

स्वामीजी ने गलों को जगाने हुए कहा—‘उठो, प्रणिममण का समय हो गया  
 है ।’ तब उठे और स्वामीजी को पूछने लगे—‘आपको जगें कितनी देर हो गई?’  
 स्वामीजी ने मुस्कराते हुए कहा—‘पहले यह तो पूछो कि सोया ही कौन था?’  
 तब आश्चर्यचकित होकर बोले—‘तो क्या सारी रात आप चर्चा ही करते रहे?’  
 स्वामीजी ने सहस्र भाव से कहा—‘जब उरकार हो तो राति जागरण भी

कायदायक न होकर आनन्ददायक हो जाता है।' बाद में विजयचन्द्रजी और चर्ममानजी की पत्नियाँ ने भी मुक्त-धारणा स्वीकार की। इन प्रकार शक्ति को समझाने के लिए स्वामीजी को अथक प्रयास करना पड़ा था।

(भिक्षु दृष्टान्त ३३ तथा कुछ अणु अनुभूति के आधार में)

२ एक बार आमकरणाजी दाँती ने विजयचन्द्रजी पटवा से कहा—'भीषण-जी दूसरों को तो बिबाह घोसकर रद्दों में दोष बगनाते हैं और स्वयं अमुक जगह बिबाह घोसकर 'घेरी' में टूटने दे।'।

पटवाजी ने कहा—'ऐसा नहीं हो सकता।' आमकरणाजी अपनी बात पर बल देते हुए बोले—'विजयचन्द्र मुझ मेरा विश्वास तो करो, मैं बिम्बुन गप्प बह रहा हूँ।' पटवाजी ने कहा—'मुझे तुम्हारा पूरा प्य होगा है कि मुझ इस विषय में कभी सत्य नहीं सोचते।'।

इस तरह पटवाजी ने उन्हें निःमकोच जवाब दे दिया पर साधुओं से आकर पूछा तक नहीं। स्वामीजी ने जब यह घटना सुनी तो कहा—'सगता है कि विजयचन्द्रजी पटवा क्षायक-गम्यवर्षी हैं। सोच साधुओं में अनेक दोष बगनाते हैं और उन्हें मुताते हैं किन्तु वे वापस सगों को पूछते ही नहीं, ऐसी धर्म और साधुओं के प्रति उनकी दुष्टतम आस्था है।'।

(भिक्षु दृष्टान्त १५५)

३. एक बार पटवाजी किसी कार्यवश कचहरी में गये। अनेक लोग भी उपस्थित थे। उनके सम्मुख हाकिम साहब ने पटवाजी से पूछा—'आप बतलाइए कि पति, सवेगी, धार्मिक टोला और तेरापणियों में किसका मार्ग अच्छा है?'

समयश पटवाजी ने कहा—'जिनमें अधिक गुण हों, वही मार्ग अच्छा है।'।

(ध्रावक दृष्टान्त ७)

४. एक व्यक्ति ने पटवाजी से कहा—'आपने यह क्या मत (धर्म) स्वीकार किया है जो समझ में भी नहीं आ सकता कि वह अच्छा है या बुरा। हम तो हमारे स्वीकृत धर्म को ही अच्छा समझते हैं।'।

पटवाजी ने उन्हें समझाते हुए कहा—'घर में सपन अघेरा है, उसे कोई आदमी सौ बार साटी से पीटें तो भी वह मिट नहीं सकता परन्तु वहाँ एक दीपक जला दिया जायें तो वह तुरन्त नष्ट हो जायेगा। ठीक इसी प्रकार हृदय में ज्ञान-रूपी दीपक जलने से मिथ्यात्वमय घोर अन्धकार दूर हटेंगा तभी धर्म का मर्म समझ में आ सकेगा।'।

(ध्रावक दृष्टान्त ८)

५. पटवाजी अपना सजाक करने वाले व्यक्तियों को उसी प्रकार उत्तर देने में बड़े निपुण थे। एक बार वे सोवाचार में गये थे। वहाँ से निवृत्त होकर वापस आते समय शारीरिक शुद्धि के लिए अन्य सभी लोगों के साथ वे भी तालाब पर

स्नान करने के लिए ठहरे। अन्य लोगों ने प्रायः मूर्ति-पूजक थे। वे सभी तालाब में घुमकर स्नान करने लगे। पटवाजी एक बड़ा सोटा भरकर सूखे स्थान पर स्नान करने लगे। उन्हें सबसे पृथक् स्नान करते देखकर एक वावेचा जाति के भाई ने कहा—‘तुम बूढ़ियों की यह क्या पद्धति है? तालाब में घुमकर अच्छी तरह से स्नान न कर केवल लोटे भर पानी से शरीर को धोना कर लेते हो। पाप का भय क्या तुम्हें ही लगता है और किसी को नहीं?’

पटवाजी ने कहा—‘तुम लोग अपने आपको कितना ही बड़ा क्यों न समझते हो पर तुम्हारी दशा तो उन लड़कियों जैसी है जो होली के दिनों में गोबर के ‘घरमोलिदे’ बनाती हैं और कल्पना करती हैं कि यह मेरा खोपरा है, यह मेरा नारियल है आदि। किन्तु कल्पना मात्र से वह खोपरा और नारियल नहीं होता वह तो गोबर का गोबर ही रहता है।’

तुम लोगों ने मनुष्य का जन्म पाया पर दया धर्म के सही पहचान के बिना वास्तविक तप्य को प्राप्त नहीं कर सकते।

(भावक दृष्टान्त ५)

१ एक दिन विजयचन्द्रजी पटवा दुकान से सीधे उठकर स्वामीजी की सेवा में सामायिक करने के लिए गये। वे प्रायः ध्याध्यान के समय ही सामायिक किया करते थे। प्रतिदिन के क्रम से ज्यों ही उन्होंने सामायिक स्वीकार की त्यों ही उन्हें याद आया कि अभी जो आदमी पाच सौ रुपये की एक पैली दे गया था उसे मैं दुकान के बाहर बरामदे में ही भूल आया हूँ। उन्होंने अपनी बात स्वामीजी के सम्मुख रखते हुए कहा—‘आज तो सामायिक में आधेध्यान का कारण उपस्थित हो गया है।’

स्वामीजी ने कहा—‘सामायिक में ममता भाव ही रखना चाहिए। उसकी तुलना में रुपये का कोई मूल्य नहीं।’

स्वामीजी के शब्दों से पटवाजी का आत्म-विश्वास जगा और वे चिन्तन करने लगे कि यदि तुम्हारे भोग में आने की वस्तु हमी तो कही जायेगी नहीं और यदि आने वाली है तो रहेगी नहीं अतः तुम्हें अपने मन की सुस्थिर रचना चाहिए।

सामायिक का कालमान (४८ मिनिट) पूरा हुआ कि उन्होंने सदा की तरह दूसरी सामायिक भी ग्रहण कर ली। माला-जाप तथा ध्याध्यान श्रवण में तल्लीन हो गये। दोनों सामायिक पूरी होने के पश्चात् वे स्वामीजी को बचना करके दूकान पर गये तो देखते हैं कि एक बकरा उम पैली में मटककर बैठा हुआ है और वह ज्यों की त्यों थड़ी हुई है। पटवाजी ने पैली को उठाकर अन्दर रख दिया।

आत्म-विश्वास तथा धार्मिक श्रद्धा से ऐसे प्रामाणिक कार्य सहज ही फलित हो जाते हैं।

(अनुपुति के आधार से)

उ पटवाजी की धार्मिक दुकान इतनी सज्ज थी कि दूसरा कोई उन्हें प्रार्थना करने की चेष्टा करता तो वे उसके प्रभाव में नहीं आते। आश्चर्यजनक होने पर उत्तर दे देते, अन्यथा मौन धारण कर लेते।

स्वामीजी से अलग होने के पश्चात् तिलोकचन्दजी चन्द्रमाणजी एक बाग़ पानी गये। उन्होंने पटवाजी के सम्मुख बहुत सी निन्दारसक बातें कही। पटवाजी चुपचाप गुनते रहे। उन्होंने न तो किसी बात का उत्तर दिया और न उत्तर देने की कृपा। उस समय जो व्यक्ति उनके पास बैठे थे उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने उनकी मौन से समझा कि पटवाजी चन्द्रमाणजी से सहमत हैं।

कालान्तर में जब स्वामीजी पधारते तब कुछ व्यक्तियों ने पटवाजी की बहुधा शिकायत के रूप में स्वामीजी के सामने रखी पर स्वामीजी ने पटवाजी से न तो कुछ पूछा और न कुछ कहा। उन्होंने सोचा यदि पटवाजी के मन में कोई क्रोध होना हो तो वे स्वयं पूछ लेंगे। पटवाजी ने उस विषय में कोई बात नहीं बताई।

स्वामीजी ने पानी में एक महीने प्रवास किया। पटवाजी ने दमोदर-मठ में व्याख्यान श्रवण आदि का पूरा-पूरा लाभ लिया। स्वामीजी जब विहार करने के लिए तैयार हुए तब एक दिन पहले उन्होंने पटवाजी से कहा—‘मैंने सुना है कि तिलोकचन्दजी, चन्द्रमाणजी ने तुम्हें बहुत सी निन्दारसक बातें कही हैं, क्या उस विषय में तुम्हें कुछ पूछना है?’

पटवाजी बोले—‘महाराज ! मैं क्या पूछूँ ? मुझे विश्वास पुरा है कि आप ऐसे आत्मार्थी हैं कि समय में जान-बूझकर कभी दोष नहीं लगाने तथा गण में बहिर्मुख व्यक्ति जो अनंत शिष्टों की साक्षी से किये हुए स्वार्थों को भी तोड़ देता है वह मुझे बोलने में कैसे सकोश करेगा।

स्वामीजी ने सतो में कहा—‘विजयचन्दजी की धर्म एवं धर्मतम के प्रति भक्ति भ्रष्टा सबके लिए अनुकरणीय है।’

(ध्यानधुन)

८. विजयचन्दजी जितने सख्त और दृढ़ थे उतने ही विनम्र थे। एक बार रायबाम के समय वे सामायिक और प्रतिजमण करने के लिए स्थान पर आए। वे स्वामीजी की सेवा में बैठे थे। बादलों के कारण सूर्य नहीं दिखाई देने से उन्होंने स्वामीजी से प्रार्थना की कि अब सूर्यास्त का समय हो गया है अतः आप पानी पी लीजिए। स्वामीजी ने पानी पीकर स्वागत कर दिया। थोड़ी देर बाद वापस हमारे जाने में धीरे निश्चय आई और अधिक दिन दिखाई देने लगा।

स्वामीजी ने पटवाजी को उलाहना देते हुए कहा—‘साधुओं को रात में पानी पीना नहीं करना अतः उन्हें व्यास का परीपद सहना पड़ता है। गृहस्थ के रात में पानी पीने का स्वागत न होने से व्यास सने तब ही पानी पी लेता है अतः साधुओं को कोई बात कहनी पड़े तो पहले अच्छी तरह निगाह करके कहनी चाहिए।’

पटवाजी स्वामीजी के घर भी भे झुककर बोलें—‘महाराज ! आप तो अवसर के जानकार हैं जिससे तत्काल पानी पीकर त्याग कर दिया । मुझे मालूम नहीं पडा जिसमे मेरी भूम हो गई । मैं आपसे बारम्बार समझायाचना करता हू ।

इस प्रकार बिनम्र भावों में उन्होंने स्वामीजी की शिक्षा को हृदयगम किया ।

(भिवजु दृष्टान्त १८६)

॥ विजयचन्द्रजी धर्मनिष्ठ होने के साथ-साथ व्यवहार कुशल भी थे । छोटे दूकानदारों की कटिनाईयों को हल करना, समय समय पर उन्हें सहयोग देना वे अपना बर्तव्य मानते थे । इसलिए वे वहाँ के अग्रणी और अर्थाग्र्य व्यापारी माने जाते थे । अपभ्रष्ट में वे जिसना बचाव रखते थे उतना ही अवसर आने पर व्यय करने की क्षमता रखते थे ।

एक बार जोधपुर नरेश विजयसिंहजी ने पानी के साहूकारी में एक लाख रुपये की माग की । उस समय पानी में दो ही सबसे बड़े व्यापारी गिने जाते थे । एक पटवाजी और दूसरे एक भाटेश्वरी साहूकार । राज्याधिकारी जब बड़ा पटुचा सब पटवाजी वहाँ बाहर गये हुये थे । उसने सब भाटेश्वरी सेठ के सम्मुख ही सारी बात कही । बाजार के अन्य व्यापारी भी बुला लिये गये । सेठ के मुनीम ने सुझाव दिया कि प्रत्येक दूकान में वसूल कर यह रकम इकट्ठी कर लेनी चाहिए । सेठजी ने भी उस बात का समर्थन किया । कुछ लोगो का सुझाव था कि बड़े व्यापारियों को ही इस रकम की पूर्ति करनी चाहिए । छोटे व्यापारियों के तो आमदनी भी थोड़ी होती है । सेठजी ने कहा—‘इतनी बड़ी रकम दो चार आदमी कैसे दे सकते हैं, यह तो सभी को देनी पड़ेगी ।

सेठजी के मुनीम ने सब प्रत्येक दूकान के नाम में पुष्क-पुष्क रकमे लिखना प्रारम्भ किया । लोगो ने एक दूसरे से तुलना करते हुए उसे उसने सामर्थ्य से अधिक बतलाना प्रारम्भ किया । नाम आये नहीं बडा तब लोगों ने कहा—‘पटवाजी के आने पर ही आये रकमे निम्नी जाएगी ।’

सेठजी बोले—‘क्या अकेले पटवाजी यह रकम दे देंगे ? देना तो सभी को पड़ेगा । अभी दो या घटे बाढ़ में दो ।’ आखिर यही निर्णय हुआ कि पटवाजी के आने पर रात को फिर इकट्ठा होकर निर्णय करना चाहिए ।

पटवाजी जब सायंकाल बाहर से आये तब लोगो ने उनसे सारी बातें बतलाई और कहा—‘छोटे व्यापारियों के पास में तो मूलतः ही रकम की कमी रहती है । वे कुछ दे भी देंगे तो उसने क्या महारा लगेगा । आखिर अधिकांश रुपये बड़े व्यापारियों को ही देना होगा तो फिर थोड़े रुपये के लिए सबको क्यों क्या जाये ।’

पटवाजी को यह बात अच्छी नहीं । रात को जब सभी लोग इकट्ठे हुए तो पटवाजी ने छोटे व्यापारियों को इससे मुक्त रखने के लिए कहा ।

सेठजी ने गरम होने हुए कहा—‘तो फिर इतना रुपया कहाँ से आये



‘पर ही क्या बराबरी कर सकते हो।’

(धृतानुधृत)

### गुमानजी सुनावत

१४१. गुमानजी सुनावत पीपाड के रहने वाले थे। वे धर्मनिष्ठ एवं तत्त्वतः ध्यावक थे। उनका तत्वज्ञान गहरा था और उनकी बुद्धि प्रखर थी। उन्होंने स्वामी जी द्वारा रचित अधिवांश साहित्य बंटाकर करके लिखा। उनके हाथ से लिखा हुआ वह दर्शनीय पोथा ‘जैन विश्व धारती’ के प्राचीन पुस्तक भंडार में सुरक्षित है।

वे कटस्थान ग्रन्थों का चिन्तन मननपूर्वक समाधान भी करते थे।

उनकी आस्था व त्याग भावना भी बेजोड़ थी। उन्होंने बारह द्रवों को बिस्तारपूर्वक ग्रहण किया था। यह बात उक्त पोथे में उल्लिखित है।

१४०. स्वामीजी जीवन पर्यन्त ग्रामानुग्राम पाद-विहार करते रहे। बुढ़ावस्था में भी उन्होंने कहीं स्थिरवास नहीं किया। स्वामीजी का शरीर निरोग एवं पाँचों इन्द्रिया समस्त थी।

१४१ स्वामीजी का विहार-क्षेत्र राजस्थान ही था। उस समय राजस्थान एक प्रान्त के रूप में न होकर पृथक्-पृथक् रियासतों के रूप में था और वहाँ विभिन्न राजाओं का राज्य था। उस समय के राज्यों के अनुसार मेवाड़, मारवाड़, बुवाड़ और हारोती ये चार राज्य ही प्रमुखतया स्वामीजी के विहार-क्षेत्र रहे थे। एक बार घसी में भी पधारे थे। जिसका कारण था कि गण से बहिर्भूत मुनि चन्द्रभाणजी, तिलोकचन्दजी, ने स्वामीजी के शिष्य मुनि सतोकचन्दजी, शिवरामजी को फटा सिया था। उनकी समझाने के लिए स्वामीजी ने स० १८१७ के पादू चानुर्माम के पत्राढ घसी की तरफ विहार किया। बोरानद में मुनि भारमलजी को बेलक निकलने से उनको वहाँ ३ साधुओं से रखा। स्वामीजी दो साधुओं से घसी में लाइनू (सेवगी के बास में टहरे) बीदासर, राजसदेसर, रतनगड, (पडी-

१. पाचू इन्द्रयां परवरी, न वही काई हाण।

बुधपणं पिण पूज नी, शोध चास शुभ चीन ॥

पाणं कठई ना यया उदमी इधिक अपार।

चार चर्चा करण भित्त पूज तणे बति प्यार ॥

(भिक्षु जश० डा० १३ दो० १, २)

आख्या बाद इन्द्रया तणो, रह्योच रुडो तेज।

शरीर निरोगो निर्मलो, तिण दीठा उपज हेज ॥

(भिक्षु चरित्र डा० १२ दो० ३)



‘पर की क्या करताहरी कर गजले हो ।’

(धुतानुपुन)

## गुमानजी सुनावत

३४९. गुमानजी सुनावत पीपाइ के रहने वाले थे । वे धर्ममिष्ट एवं तपस्व थावक थे । उनका संवत्सान गहरा था और उनकी बुद्धि प्रखर थी । उन्होंने स्वामी जी द्वारा रचिन अष्टिकांश साहित्य कंठस्थ करके लिया । उनके हाथ से लिया हुआ वह दर्शनीय पोषा ‘जैन विश्व भारणी’ के प्राचीन पुस्तक भंडार में सुरक्षित है ।

वे कठस्थित दृष्टियों का चिन्तन मननपूर्वक समाधान भी करते थे ।

उनकी आस्था व स्वाग भावना भी बेजोड़ थी । उन्होंने बारह जनों की विस्तारपूर्वक ग्रहण किया था । यह बात उक्त पोषे में उल्लिखित है ।

३५०. स्वामीजी जीवन पर्यन्त ग्रामानुष्ठान वाद-विहार करते रहे । बृद्धावस्था में भी उन्होंने कहीं स्थिरवास नहीं किया । स्वामीजी का शरीर निरोग एवं पोषो इन्द्रियां सशक्त थी ।

३५१. स्वामीजी का विहार-क्षेत्र राजस्थान ही था । उस समय राजस्थान एक प्रान्त के रूप में न होकर पृथक्-पृथक् रियासतों के रूप में था और वहाँ विभिन्न राजाओं का राज्य था । उस समय के राज्यों के अनुसार मेवाड़, मारवाड़, बूझाड़ और हावेली ये चार राज्य ही प्रमुखतया स्वामीजी के विहार-क्षेत्र रहे थे । एक बार यली में भी पधारे थे । ज्ञाता कारण था कि यण से बहिर्भूत मुनि चन्द्रभाणजी, तिलोत्तमजी, मे स्वामीजी के मिथ्य मुनि सनोकचदजी, गिरधरामजी को फटा लिया था । उनको समझाने के लिए स्वामीजी ने स० १८३७ के पादु शानुर्मान के पत्रदान यली की तरफ विहार किया । बीराचड़ में मुनि भारमलजी को चेचक निकलने से उनको वहाँ ३ साधुओं से रखा । स्वामीजी दो साधुओं से यली में सादरू (संवगो के बास में ठहरे) बीराचड़, राजसदेसर, रतनगढ़, (पड़ी-

१. पांचू इन्द्रियां परवरी, न पड़ी बाईं हाथ ।

मुधपनी पिण पूज नी, जीघ चाल मुम धीन ॥

• माणे कठेई ना यया उदमी इधिक अपार ।

चाह चर्चा करण चित्त पूज तणे अति प्यार ॥

(मिक्खु जश० ढा० ५३ दो० १, २)

आरुपा आद इन्द्रिया तणो, रह्योव रुठो तेज ।

शरीर निरोगो निर्मलो, तिण दीठां उपज हेज ॥

(मिक्खु चरित ढा० १२ दो० ३)

4-11-12 2 3 5 7 11 13 17 19 23 29 31 37 41 43 47 53 59 61 67 71 73 79 83 89 97 101 103 107 109 113 127 131 137 139 143 149 151 157 163 167 173 179 181 187 191 193 197 199 211 223 227 229 233 239 241 247 251 257 263 269 271 277 281 283 287 293 299 307 311 313 317 331 337 341 347 349 353 359 367 373 379 381 387 391 397 401 403 407 409 413 419 421 427 431 433 437 439 443 449 451 457 463 467 473 479 481 487 491 493 497 503 509 511 513 517 521 523 527 529 533 539 541 547 551 557 563 569 571 577 581 583 587 593 599 607 611 613 617 631 637 641 647 649 653 659 667 673 679 681 687 691 693 697 703 709 711 713 717 721 723 727 729 733 739 741 747 751 757 763 769 771 777 781 783 787 793 799 807 811 813 817 831 837 841 847 849 853 859 867 873 879 881 887 891 893 897 903 909 911 913 917 931 937 941 947 949 953 959 967 973 979 981 987 991 993 997 1003 1009 1011 1013 1017 1021 1023 1027 1029 1033 1039 1041 1047 1051 1057 1063 1069 1071 1077 1081 1083 1087 1093 1099 1103 1107 1111 1113 1117 1121 1123 1127 1129 1133 1139 1141 1147 1151 1157 1163 1169 1171 1177 1181 1183 1187 1193 1199 1203 1207 1211 1213 1217 1221 1223 1227 1229 1233 1239 1241 1247 1251 1257 1263 1269 1271 1277 1281 1283 1287 1293 1299 1303 1307 1311 1313 1317 1321 1323 1327 1329 1333 1339 1341 1347 1351 1357 1363 1369 1371 1377 1381 1383 1387 1393 1399 1403 1407 1411 1413 1417 1421 1423 1427 1429 1433 1439 1441 1447 1451 1457 1463 1469 1471 1477 1481 1483 1487 1493 1499 1503 1507 1511 1513 1517 1521 1523 1527 1529 1533 1539 1541 1547 1551 1557 1563 1569 1571 1577 1581 1583 1587 1593 1599 1603 1607 1611 1613 1617 1621 1623 1627 1629 1633 1639 1641 1647 1651 1657 1663 1669 1671 1677 1681 1683 1687 1693 1699 1703 1707 1711 1713 1717 1721 1723 1727 1729 1733 1739 1741 1747 1751 1757 1763 1769 1771 1777 1781 1783 1787 1793 1799 1803 1807 1811 1813 1817 1821 1823 1827 1829 1833 1839 1841 1847 1851 1857 1863 1869 1871 1877 1881 1883 1887 1893 1899 1903 1907 1911 1913 1917 1921 1923 1927 1929 1933 1939 1941 1947 1951 1957 1963 1969 1971 1977 1981 1983 1987 1993 1999 2003 2007 2011 2013 2017 2021 2023 2027 2029 2033 2039 2041 2047 2051 2057 2063 2069 2071 2077 2081 2083 2087 2093 2099 2103 2107 2111 2113 2117 2121 2123 2127 2129 2133 2139 2141 2147 2151 2157 2163 2169 2171 2177 2181 2183 2187 2193 2199 2203 2207 2211 2213 2217 2221 2223 2227 2229 2233 2239 2241 2247 2251 2257 2263 2269 2271 2277 2281 2283 2287 2293 2299 2303 2307 2311 2313 2317 2321 2323 2327 2329 2333 2339 2341 2347 2351 2357 2363 2369 2371 2377 2381 2383 2387 2393 2399 2403 2407 2411 2413 2417 2421 2423 2427 2429 2433 2439 2441 2447 2451 2457 2463 2469 2471 2477 2481 2483 2487 2493 2499 2503 2507 2511 2513 2517 2521 2523 2527 2529 2533 2539 2541 2547 2551 2557 2563 2569 2571 2577 2581 2583 2587 2593 2599 2603 2607 2611 2613 2617 2621 2623 2627 2629 2633 2639 2641 2647 2651 2657 2663 2669 2671 2677 2681 2683 2687 2693 2699 2703 2707 2711 2713 2717 2721 2723 2727 2729 2733 2739 2741 2747 2751 2757 2763 2769 2771 2777 2781 2783 2787 2793 2799 2803 2807 2811 2813 2817 2821 2823 2827 2829 2833 2839 2841 2847 2851 2857 2863 2869 2871 2877 2881 2883 2887 2893 2899 2903 2907 2911 2913 2917 2921 2923 2927 2929 2933 2939 2941 2947 2951 2957 2963 2969 2971 2977 2981 2983 2987 2993 2999 3003 3007 3011 3013 3017 3021 3023 3027 3029 3033 3039 3041 3047 3051 3057 3063 3069 3071 3077 3081 3083 3087 3093 3099 3103 3107 3111 3113 3117 3121 3123 3127 3129 3133 3139 3141 3147 3151 3157 3163 3169 3171 3177 3181 3183 3187 3193 3199 3203 3207 3211 3213 3217 3221 3223 3227 3229 3233 3239 3241 3247 3251 3257 3263 3269 3271 3277 3281 3283 3287 3293 3299 3303 3307 3311 3313 3317 3321 3323 3327 3329 3333 3339 3341 3347 3351 3357 3363 3369 3371 3377 3381 3383 3387 3393 3399 3403 3407 3411 3413 3417 3421 3423 3427 3429 3433 3439 3441 3447 3451 3457 3463 3469 3471 3477 3481 3483 3487 3493 3499 3503 3507 3511 3513 3517 3521 3523 3527 3529 3533 3539 3541 3547 3551 3557 3563 3569 3571 3577 3581 3583 3587 3593 3599 3603 3607 3611 3613 3617 3621 3623 3627 3629 3633 3639 3641 3647 3651 3657 3663 3669 3671 3677 3681 3683 3687 3693 3699 3703 370

• Substrates are a type of reactant that undergo a chemical reaction

$\frac{d}{dt} \left( \frac{\partial L}{\partial \dot{x}} \right) = \frac{\partial L}{\partial x}$

3.  $f \in L^1$  and  $f \geq 0$  a.e.

$$x \rightarrow y^{-1} \quad x \rightarrow xy \quad x \rightarrow x^2 \quad y \rightarrow xy \quad x(yz) = (xy)z \quad z(xy) = (zy)x \quad (x^2)^2 = x^4$$

—46—

[illegible]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

[illegible][illegible]

$\frac{1}{\sqrt{2}} \begin{pmatrix} 1 & i \\ 0 & 1 \end{pmatrix}$

३६९ एति हि त्रु भवतु नृपति एव भवति एव ते हिम एव ते एति भवति नृपति

1. 1950년대 초반에 시작된 '국민소득 100달러 달성'을 위한 경제개발 계획이 수립되었다.  
 2. 이 계획은 주로 수출 중심의 경제 성장을 추구하는 데 중점을 두었다.  
 3. 1960년대에는 '경제개발 5개년 계획'이 수립되어, 수출 주도형 경제 성장을 가속화하였다.  
 4. 이 시기에 '한강의 기적'이라고 불리는 급속한 경제 성장을 경험하였다.  
 5. 1970년대에는 '중화학공업 육성'을 위한 정책이 시행되어, 자동차, 조선, 석유화학 등 중화학공업 분야에 집중하였다.  
 6. 1980년대에는 '기술 집약적 산업 육성'을 위한 정책이 시행되어, 반도체, 전자, 자동차 등 기술 집약적 산업 분야에 집중하였다.  
 7. 1990년대에는 '자유무역 지역화'를 위한 정책이 시행되어, WTO 가입을 추진하였다.  
 8. 2000년대에는 '신성장 동력 창출'을 위한 정책이 시행되어, IT, 바이오, 우주 등 신성장 동력 분야에 집중하였다.  
 9. 2010년대에는 '고성능 산업 육성'을 위한 정책이 시행되어, 반도체, 자동차, 조선 등 고성능 산업 분야에 집중하였다.  
 10. 2020년대에는 '디지털 전환'을 위한 정책이 시행되어, AI, 빅데이터, 클라우드 등 디지털 전환 분야에 집중하였다.

අප්පාදානං ආරාධනං ආරාධනං ආරාධනං ආරාධනං ආරාධනං

[illegible]

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

[illegible]

ନିର୍ଦ୍ଦେଶକ: ଶ୍ରୀମତୀ ସୁମିତ୍ରା ମହାନ୍ତି

११५१:४ २११५१:४ १०-११-१ ०१/०४/११ २, ०१/११/०१/११ ०१/११/११ २ ॥

[illegible][illegible][illegible]

मेरा है मगर जमान की ना मरती है, चाँद है आकाश की नीचे है

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ, ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਪਤਾ ਲੱਗੇ।

शरीर के अंदर कुछ नशेवादी हैं, वे भी अलग भाषा ही जानते हैं।

ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਦੇ ਭਾਈ ਅਮਰ ਸਿੰਘ ਦੀ ਸਥਾਪਨਾ ੧੯੧੯, ਜਦੋਂ ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ ਦੇ ਭਾਈ ਅਮਰ ਸਿੰਘ ਦੇ।

ਮਾ ਕਾਨ ਹੇ ਕਾਨ ਨ ਰਾਖੀ ਨਹੀਂ ਦੇ, ਧੀਰਜ ਨ ਖੋਹੀ ਕਾ ਮਾਨੁ >

गुण र गुण साधा ने बनना है, अनायास ही रहना है।

આ છેલ્લો ર છેદ્યો બિનાયન ધારી ૯, મૂલ્ય મૂલ્યે મહત્ત્વ ૯

मगधा र मगध्या गांध माधुरी रे, राधवी हेत दिग्ध रे।  
दिव्य दिन ते ते दिन दिन ते ते दिन दिन ते ते दिन दिन ते ते दिन दिन ते

उत्तर १३० न २ विषय १३० न ११ प्रश्न १) हे, विषय १३० न ११ प्रश्न १)

(वेणी मुनि वृत्त भिन्नम् अत्रिच इति ६ गा० १ मे ७ तथा १२)

जरज्या भाखा में एषणा, इत्यादिक बाठ प्रवचन ।  
मन वचन काया करी, कीज्यो घणा जनन ॥  
साधपणो सुध पालज्यो, चिता फिर म करज्यो तास ।  
गहामुई मिलेला ग्यानी मोटका, वले बेगो करोला मुगत मे वास ।  
चेला री भमता करज्यो मनी, लीओ सुध जोय जोय ।  
असल आचार पास तको, काचो म पालज्यो मण मे कोय ॥  
असल आचार आछी ठरें, पालज्यो प्रभु वचन पिछाण ।  
आप्या म सोपज्यो अरिहुत नी, तो वणा पाममो निरवाण ॥  
हू तो जातो दीसू परभवे, सीछ दीधी छं घाने जाम ।  
लोक बतावै कोई आगली, कदीय म कीजो एह्यो काम ॥

(हेम मुनि कृत भिक्खु चरित डा० ७ गा० १५ से १६)

३५५. स्वामीजी की उपर्युक्त हित शिक्षा इनकी सारगर्भित और आकस्मिक थी कि सुनने वाले आश्चर्यचकित हो गये । भारीमासजी स्वामी भादि साधुओं ने स्वामीजी से पूछा—'क्या आपके शरीर में कोई विशेष तकलीफ है? स्वामीजी ने कहा—'नहीं! चालू तकलीफ के अतिरिक्त कोई दूसरी तकलीफ नहीं है, परन्तु मुझे लगता है कि अब मेरा आयुष्य नजदीक है । इसलिए यह अन्तिम शिक्षा दी है । मुझे मृत्यु का किंचित् मात्र भी भय नहीं है । मेरे मन में अत्यन्त हर्ष है कि मैंने भगवान् महावीर के सत्य मार्ग को अवलम्ब कर अनेक व्यक्तियों को सम्मत्तवी, देशव्रती और महाव्रती बनाया । जनता को सुधमनया समझाने के लिए मैंने तत्त्वज्ञान विषयक जो रचनाएँ की हैं वे सब सूत्र न्याय के अनुसार हैं । मुझे शुद्ध अन्तःकरण से जैसा ज्ञात हुआ वैसा कहा है । मेरे मन में पूर्ण सतोष है । मैं किसी भी प्रकार की कमी अनुभव नहीं करता । तुम साधुओं से भी मेरा यही कथन है कि स्थिरचित्त होकर त्रिनेश्वर देव के मार्ग का अनुसरण करना । कुकुडि और कथाग्रह को छोड़कर आत्मा की उज्ज्वलता हो, वैसा कार्य करते रहना ।

बालक मुनि रायचन्दजी की शिक्षा देते हुए स्वामीजी ने कहा—'तू बुद्धिमान बालक है, अतः किसी प्रकार का मोह मत करना ।' वे बोले—'प्रभुवर ! आप तो आत्मकल्याण कर रहे हैं, फिर मैं मोह क्यों करूँ ?'

(भिक्खु जश रसायण डा० ५६ दो० १ से ४ तथा गा० १ मे ८ के आधार से)

३५६. मुनि श्री सेतमीजी ने स्वामीजी से निवेदन किया—'प्रभुवर ! आप तो अब सुरवन्द में जा रहे हैं और हमारे आपका विरह पड़ रहा है ।'

स्वामीजी निरपेक्ष भाव से बोले—'शिष्यो ! मुझे स्वर्ग के सुखों की किंचित् भी चाह नहीं है । उन्हें जीव अनेक बार प्राप्त हो चुका है पौद्गलिक सुख, नश्वर एवं नरक के हेतु हैं । मेरा मन मोक्ष के आन्मिक सुखों के प्रति लगा हुआ है । तुम लोग भी पौद्गलिक सुखों की वाछा मत करना ।



किया। आपने फरमाया—‘अब तुम सोच ऐमा मत जानना कि मैं आहार करूँगा। मेरा मन अनशन के लिए उतावला हो रहा है।’

दोपहर के बाद स्वामीजी कच्ची दूकान से सामने वाली पक्की दूकान में पधारे। शिष्यों ने बिछोना कर दिया। उस पर बैठकर विग्राम करने लगे। कुछ ही समय हुआ होगा कि दूकान में बालक मुनि रायचन्दजी ने पास आकर कहा—‘स्वामिन् ! कृपाकर दर्शन दीजिये।’ यह सुनकर स्वामीजी ने अपने नेत्र धोले और उनकी तरफ देखते हुए उनके हास्तक पर अपना हाथ रखा। ऋषि रायचन्दजी अवस्था में बालक ही थे किन्तु बड़े समझदार थे। स्वामीजी की शारीरिक स्थिति देखकर उन्होंने कहा—‘स्वामिन् ! अब तो आपके शरीर का पराश्रम शीघ्र पड़ रहा मानस देना है।’

यह सुनते ही स्वामीजी मिट्टी की तरह उठे और बोले—‘भारीपालजी तथा जैनसीजी को शीघ्र बुलाओ।’ याद करते ही वे उद्विग्न हो गये। स्वामीजी ने अतिरिक्त मिट्टी को नमस्कार कर उच्चैः स्वर से भाई-बहनों के सम्मुख आजीवन हीनो आहारों का त्याग कर दिया। शिष्यों ने प्रार्थना की—‘भगवन् ! अमृत का तो आगार रखना था।’ स्वामीजी ने फरमाया—‘आगार जिस बात का, अब कौन सी सार-समाल करना है? इस प्रकार स्वामीजी ने भाद्रव शुक्ला १२ को पश्चिम प्रहर ■ आश्विरी दुषट्टिया (अमृत) में अनशन ग्रहण किया।’

अनशन के समाचार सुनकर अनेक गावों के भाई-बहन दर्शन के लिए आते तथा विविध प्रकार के त्याग करते, मुक्त कठों में आचार्य भिक्षु के यशोगान गाते एवं अनशन की सराहना करते। विपक्षी लोग भी बड़े प्रभावित हुए, नहीं नमने वालों का भी श्रद्धा से सिर झुक गया। कई भोले आदमियों ने यह अभिग्रह किया कि यदि भीखणजी का निकाला हुआ मार्ग मूढ़ और सही है तो उन्हें अन्तिम समय में अनशन आएगा। उन्होंने जब सवारों के सवाद सुने तो वे महान चमत्कार को प्राप्त हुए और उन्हें विश्वास हो गया कि मार्ग मूढ़ है।

सामकाल प्रतिक्रमण करने के पश्चात् स्वामीजी ने भारीपालजी आदि शिष्यों को व्याख्यान प्रारम्भ करने के लिए कहा। शिष्य गण ने विनती की—‘आपके सपारा है अतः व्याख्यान न भी हो तो क्या आपत्ति है।’ उन्होंने कहा—‘जब साध्वियों के अनशन होता है तब व्याख्यान देते हो तो मेरे सवारों पर व्याख्यान क्यों नहीं देते?’ शिष्यों ने तत्काल व्याख्यान चालू कर दिया।

वारस की रात बीती, तेरस का सूर्य नया प्रभात व नई रोजनी लेकर आकाश

१. भाद्रवा सुदि बारस भनी, निधि सोमवार सुविचारो।

अनशन आदर्यो बैराग आजी नै, मुड छेहलो दुषट्टियो सारो ॥

(भिक्षु जश रसायण दा० १६ पा० १५)

में उद्दिष्ट हुआ। लक्ष्मण चरित्र दिव्य चरित्र के बाद स्वामीजी ने चाहे तब से गयी थी। साधु स्वामी स्वामी-प्राप्ति का मेरा भी बड़ा हुन। स्वामीजी के दिव्य दिव्य को देखकर रोम रोम में उन्मत्त हो रहे थे। लक्ष्मण के चरित्र दिव्य चरित्र। अहमदाबाद स्वामीजी ने कहा था— साधु का रहे है, उनके नामों का भी, साधुओं की आ रही है।

एक मुक्त में समझ बीता कि मुनि भी वेणीगाम्भी (२८) और कुमागम्भी (३८) को साधु पत्नी से बनकर आये और स्वामीजी के चरित्रों में बहुत मर। स्वामीजी ने उनके लिए घर हाथ लगा। मुनि भी द्वारा मृत्यु-मृत्यु करने पर स्वामीजी ने उनकी आस्था की तरफ से अनुमति का ऊँची करके ज्ञानी साधुओं की मरने के लिए पूछा। मुनि भी स्वामीजी के वाक्य-वचन से अनुमति में मरने लगे।

दो मुक्त हुए ही तीन साधुओं का भी बनगुत्री (२३) भूमिगम्भी (६६) और बाह्यगम्भी (३३) ने आकर स्वामीजी के दर्शन लिए।

स्वामीजी द्वारा कही गई बातों का मैं साक्षात् मिल गई। स्वामीजी ने उक्त वाक्य अनुमान में, प्राविप्रज्ञान में या अविप्रज्ञान में रहे ऐसा विविध रूप में तो सर्वज्ञ ही जान सकते हैं। पर स्वयंकार में लगता है कि उगटे अविप्रज्ञान उन्मत्त हुआ था। जमाचार्य भी उगे स्वीकार करने हुए विचरते हैं—

१. दिन चढ़े दो दोहर दोहर आगरे, साधुवर्गों मनु कोय।

बचन प्रकाश किन विधे भक्त सजिदै भवि कोय॥

साधु आवै साहसो जायो, मुनि प्रकाशे जाण।

बने साधुकिमो आवै बारै, स्वामी बोले बचन सुहाण॥

(भिवन्तु जग रसायण का० ६१ दो० ५ गा० १)

२. पामी रा बालिया पाछरा दोय साध जाया निग बार।

रिग देणीदास कुशासत्री, देखी इवरज पास्या नर-नार॥

(वेणी मुनि वृत्त—भिवन्तु चरित का० ११ दो० १)

दोय आगुमी बची, सैन करो नै जाणी।

मृगसाना पूछन, बची बन्धु पहिछाणी॥

पहिछाणी जो उच्चरग आणी, सावचेत इया मुनि गुण पाणी।

धिन धिन भिन्नु स्वाम, महाकीर्ति माणी॥

(सधु भिवन्तु चरित का० ५ गा० ३२)

३. अनुमानन 'खरवा' से बनकर आई।

४. ये तो बहो अटकन उनमाने, के बहो बुद्धि प्रमाण।

कै कोई अविप्रज्ञान ऊपनों, से जाणै सर्वनाथ॥

(भिवन्तु जग रसायण का० ६१ गा० २)

भिक्षु अथ श्रद्धा पाव स, ध्यायता निरयत ध्यान ।  
सके तो आणू स्वाम नै, ऊपनो अवधि सुज्ञान ॥  
माघ आदिका होवै सही, वैमानिक विध्यात ।  
अवधिज्ञान तभु ऊगर्ज, आगम वचन आख्यात ॥

(भिक्षु अथ रसायण ढा० ६१ दो० ३, ४)

स्वामीजी को लेटे हुए अधिक समय हो जाने पर साधुओं ने आपको बैठा करने के लिए पूछा । आपने स्वीकृति दी तब आपको बिठलाकर साधु हाथ का सहारा देकर पीछे बैठ गए । आप ध्यानासन में बैठकर निर्मल ध्यान में मगलीन हुए कि अचस्मात् आपुष्य पूर्ण हो गया ।

उधर दर्जी ने तेरह खरी मही के सिसाई का कार्य सम्पन्न कर सूई पगड़ी में सगाई हो की कि इधर स्वामीजी ने प्राणों का त्याग किया ।

इस प्रकार स० १८६० भाद्रप शुक्ला १३ मंगलवार को बैठ प्रहर दिन अवशेष रहा तब स्वामीजी ने ७ प्रहर के तिबिहार अनशन में सिरियारी में परम समाधि-पूर्वक स्वर्ग प्रयाण किया ।

साधुओं ने स्वामीजी के शरीर को 'ओसरया' और चार लोगस्त का ध्यान किया । उस दिन के लिए आहार का भी संधी ने परित्याग कर दिया ।

भिक्षु अथ रसायण ढाल ६६ से ६१ में उक्त वर्णन विस्तृत रूप में है ।

स्वामीजी वडे भाग्यशाली एवं प्रगाढ़ पुण्य के छनी थे, जिससे अन्तिम समय में चार तीर्थ का योग मिल गया ।

१. बैठा हुआ तिन अवसरे रे, ध्यान आसन श्रीकार ।

आनक जिनजी किराजिया रे, न आणी अस्मता तिंगार ॥

तेरे खडी त्यारी हुई रे, आनक देव विमाण ।

सतो तत इसरो मित्यो रे, पूज बैटाई छोड्या प्राण ॥

(वेणी मुनि कृत भिक्षु चरित्र ढा० ११ गा० ७, ८)

२. सम्बत अठारै साठे वर्षे, भाद्रवा सुदि तेरस मंगलवार ।

पूज पोहता परलोक सिरियारी, गुण गावै नर नार ।

दिन पाछजो दौड पोहर आसरे, उण नेला आउमो आपो ।

दिवसे भरवो रात्रि अनमवो, कहे विरला न थापो ।

(भिक्षु अथ रसायण ढा० ६१ गा० १६, १७)

३. चिड तीर्थ आवी मित्या, स्वाम तणै सवार ।

मास भाद्रवा रे मझै, अचरज ए अधिकार ।

प्रबल पुण्य ना पोरखा, प्रबल गुणामर जाण ।

पूज हुना प्रगट वर्षे, परमव कियो पयाण ॥

(भिक्षु अथ रसायण ढा० ६२ दो० ६, ७)



### महवत्पूर्ण वर्ष

१. जन्म सबत्—१७८३ आषाढ शुक्ला त्रयोदशी
२. द्रव्य दीक्षा सबत्—१८०८ मार्गशीर्ष कृष्णा द्वादशी
३. बोधि प्राप्ति सबत्—१८११
४. भाव दीक्षा सबत्—१८१७ आषाढ पूर्णिमा
५. स्वर्गवास सबत्—१८६० भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी ।

### महस्वपूर्ण स्थान

१. जन्म स्थान—कटातिया
२. द्रव्य दीक्षा स्थान—बगड़ी
३. बोधि प्राप्ति स्थान—राजनगर
४. भाव दीक्षा स्थान—केलवा
५. स्वर्गवास स्थान—सिरियारी ।

३६२. स्वामीजी ने स० १८१७ से १८६० तक ११ गावों में ४४ चातुर्मास रिकये । उनकी तालिका इस प्रकार है—

स्थान	चातुर्मास संख्या	सम्बत्
केलवा	६	१८१७, २१, २५, ३८, ४६, ५८ ।
बड़लू	१	१८१८ ।
सिरियारी	३	१८१६, २२, २६, ३६, ४२, ५१, ६० ।
राजनगर	१	१८२० ।
पाली	७	१८२३, ३३, ४०, ४४, ५२, ५५, ५६ ।
कटातिया	२	१८२४, २८ ।
केलवा	५	१८२६, ३२, ४१, ४६, ५४ ।
बगड़ी	३	१८२७, ३०, ३६ ।
माधोपुर	२	१८३१, ४८ ।
पीपाड	२	१८३४, ४३ ।
आमेट	१	१८३५ ।
पाडू	१	१८३७ ।
नाथडास	३	१८४३, ५०, ५६ ।
पुर	२	१८४७, ५७ ।
सोवत	१	१८५३ ।



संख्या	ठाणा	स्थान
१८४४		वासी
१८४५		पीगाड
१८४६		मेरवा
१८४७		पुर
१८४८		सवाई माधोनुर
१८४९		केमवा
१८५०		भीमोदारा
१८५१		निरिपारी
१८५२		वासी
१८५३		सोजत
१८५४	४ <sup>१</sup>	मेरवा
१८५५	४ <sup>२</sup>	वासी
१८५६	५ <sup>१</sup>	भीमोदारा
१८५७	५ <sup>२</sup>	पुर
१८५८	६ <sup>१</sup>	केमवा
१८५९	६ <sup>२</sup>	वासी
१८६०	७ <sup>०</sup>	निरिपारी

- १ स्वामी भीखणजी, भारीमानजी, सेतमीजी, हेमराजजी ।  
(हेम नवरसा डा० ४ गा० १)
- २ स्वामीजी भीखणजी, भारीमानजी, सेतमीजी, हेमराजजी ।  
(हेम नवरसा डा० ४ गा० २)
- ३ स्वामी भीखणजी, भारीमानजी, सेतमीजी, हेमराजजी, उदयरामजी ।  
(हेम नवरसा डा० ६ गा० ३, ४ तथा भिक्षु दृष्टान्त १८८)
- ४ स्वामी भीखणजी, भारीमानजी, सेतमीजी, हेमराजजी, उदयरामजी ।  
(हेम नवरसा डा० ४ गा० ५)
- ५ स्वामी भीखणजी, भारीमानजी, सेतमीजी, उदयरामजी, रायचन्दजी, जीवोजी ।  
(अनुमानत )
- ६ स्वामी भीखणजी, भारीमानजी, सेतमीजी, उदयरामजी, रायचन्दजी, जीवोजी ।  
(अनुमानत )
- ७ स्वामी भीखणजी, भारीमानजी, सेतमीजी, उदयरामजी, रायचन्दजी, जीवोजी, भयजी ।

(भिक्षु जल रसायन डा० ५३ गा० १३ से १५)

२६३. स्वामीजी के जीवन प्रगंथ पर लिखे हुए मूलभूत चार आख्यान हैं—

(१) भिक्षु चरित—यह मुनिश्री हेमराजजी द्वारा रचित है। इसकी १३ कालें हैं, जिनके ६० दोहे और १६७ गाथाएँ हैं। इसकी रचना स० १८६० माघ शुक्ला ६ मनिवार को सिरियारी की उमी पक्की दुकान में की गई थी कि जिन दूकान में स्वामीजी का स्वर्गवास हुआ था।<sup>१</sup>

(२) भिक्षु चरित—इसके रचयिता मुनिश्री वेणीरामजी हैं इसकी भी तेरह कालें हैं जिनमें ७२ दोहे और १६६ गाथाएँ हैं। स० १८६० फाल्गुन वदि १३ गुरुवार को बगड़ी में इसकी रचना की गई है।<sup>२</sup>

(३) भिक्षु जग रसायण—भिक्षु जग रसायण कृति की चतुर्धाचार्य श्री जीतमलजी ने स० १६०८ आसोज मुदि १ को बीदासर में रचना संपन्न की।<sup>३</sup>

इस कृति के निर्माण में जयाचार्य ने निम्नोक्त कृतियों का सहारा लिया।

विस्तार रघ्यो भिक्षु मुनिवर नों, सुणियो तिण अनुमार।

भिक्षु दृष्टगत हेम सिखाया, देखी ते अधिकार॥

वेणीरामजी हेम कृत वर, भिक्षु चरित सुनेय।

इत्यादिक अवलोकी अधिको, ग्रथ रघ्यो सुबिसेय॥

(भिक्षु जग रसायण का० ६३ गा० ४५, ४६)

इस ग्रथ की ६३ कालें हैं जिनमें दोहे ५११, सौरते ७२, छंद ४५ और गाथाएँ १५६८ हैं कुल पद्य—२१६६ और प्रपाद्य २७८० है।

(४) लघु भिक्षु जग रसायण—इसकी रचना जयाचार्य ने स० १८२३ माघ मुदि ३ गुरुवार को सम्पूर्ण की।<sup>४</sup> इसकी ५ कालें हैं जिनके दोहे ४५ सो० १ छंद ७

१. जोड़ कीधी सिरियारी सैहर में, पके हाट विचार हो।

ममत् बढारे साठे समें, माह मुदि नवमी सनितर वार हो॥

(हेम मुनि कृत भिक्षु चरित का० १३ गा० २०)

२. ए विरत कियो छै भीखु अगार नो, बगड़ी सहार मझार हो। महा०।

सबन् बढारे साठा वरस मे, फागुण विद तेरस गुरवार हो। महा०।

(वेणी मुनि कृत भिक्षु चरित का० १३ गा० १२)

३. सबन् उमणीस आठे, आसोज एकम मुदि सार।

शुक्लवार ए जोड़ रची, बीदासर शहर मझार॥

(भिक्षु जग रसायण का० ६३ गा० ४८)

४. जगणीस सैवीस, माघ मुदि निवि सोत्र।

गुरुवार ए जोड़, करी भिक्षु बीज।

भिक्षु बीज लघु जग बीज, भारीपाल रायचन्द रमणीज।

धिन धिन भिक्षु स्वाध, भई जय जग रीस॥

(लघु भिक्षु जग रसायण का० ५ गा० ४४)

गा० २३३ है कुल पद्य २८७ और प्रयोग ३८० है।

आचार्य चरित्रावली खंड १ की भूमिका में इन चारों ग्रंथों का विस्तृत परिचय दिया गया है।

बाद में लिखे हुए ग्रंथ निम्नोक्त हैं—

(१) भिक्षु महाकाव्य (संस्कृत-पद्य)

रचयिता मुनिश्री नयनलाली (भागोर)

(२) अग्निनिष्क्रमण (संस्कृत-पद्य)

रचयिता मुनिश्री चन्दनमलजी (सिरसा)

(३) भिक्षु विचार दर्शन (हिन्दी)

रचयिता मुनिश्री नयनलाली (टमकोर)

(४) तेरापद्य इतिहास प्रथम परिच्छेद

रचयिता मुनिश्री बुद्धमलजी (शार्दूलपुर)

(५) आचार्य सत जीवचरित्र (हिन्दी)

रचयिता ध्यातक श्रीचंदजी रामपुरिया (सुजानगढ़)

१९४४. जैनागमों में जगह-जगह 'मे भिक्षु था' पाठ आया है। स्वामीजी ने इसे 'भिक्षु' नाम एवं 'भिक्षु' साधु बनकर भाव विशेष से सार्थक कर दिया।

परिशिष्ट १ (क)

## भिक्षु साहित्य का चुम्बक दिग्दर्शन

विनय मूल धर्म

बूहा

विनै मूल धर्म जिण काणी, ते जाणै विरत्ता जीव ।  
जे मगगुर रो विनो करै, त्यां दीधी मगगुरी नीव ॥  
जे कुगुर तणो विनो करै, ते किम उगरे भववार ।  
ज्या सुगुर कुगुर नही भोक्कणा, ते गया जमारो द्वार ॥  
कोई भग्यानी इम कहै, गुर नें वाप एक होय ।  
भूटा भला जे गुर कर्या, त्याने न छोडना कोय ॥  
जिण आगम माहे इम बहो, गुर करणा गुण देख ।  
छोटा गुर नें नही सेवणा, त्यारी कीमन करणी बरोख ॥  
(साध्वाचार री बोपई डा० ११ बूहा १ से ४)

एक क्रिया में पुण्य पाप (मिथ) नहीं

सावर केरा सीग में रे, सीग सीग ॥ सीग ।  
ज्यू मिथ परुपै त्यांरी बात में रे, धीग धीग में धीग ॥  
बावस बाजे आकरी रे, जव उई धूर धूर में धूर रे ।  
ज्यू मिथ परुपै त्यांरी बात में रे, कूर कूर में कूर रे ॥  
बाजर सेन बावे तरे रे, बूट बूट में बूट ।  
ज्यू मिथ परुपै त्यांरी बात में रे, झूठ झूठ में झूठ रे ॥  
(यदा री बोपई डा० १ गा० ६४ से ६६)

## हिंसा में धर्म नहीं

मोही गरद्वो जे गिलबर, मोही नू बेम घोवायो रे ।

निम हिंसा में धर्म बीरा जी, जोब उजसो बिम पायो रे ॥

चतुर बिचार करी में देगो ॥

(विरत दबिरन की चौरई डा० १ पाया १६)

हिंसा री करणी में दया नहीं छै, दया री करणी में हिंसा माहीं जी ।

दया में हिंसा री करणी छै न्यारो, ज्यू तावडो नें छाहीं जी ॥

ओर बरत में भेस हूबे विज, दया में नहीं हिंसा री भेसो जी ।

ज्यू पूर्व में विष्टम गो मारम, बिज विज छावे मेसो जी ॥

जिन मारम री नीब दया पर, छोडी हूब ते पारै जी ।

जो हिंसा माहे धर्म हूबे तो, जल मपीयां पौ भाई जी ॥

(अनुकम्पा री चौरई डा० ६ पा० ७०, ७१, ७४)

## दृष्टि दोष—नारी नयन के बाण

एक छत्री आंखों मेजाबना रे, मारम माहे मिनिजो खोर ।

तिन में छत्री बाण बाया धना रे, खोर करसी नू मांझा टोर ॥

हिबें एक बाण बाकी रह्यो रे, जब भग्नी निज रूप दिखाय ।

ते खोर तिन रे रूप बिजबियो रे, जब छत्री बाण नू दीखो दाय ॥

खोर परमो ते देखने रे, छत्री करवा सावो बाण ।

खोर कहै गरबे बिगू रे, म्हरि नारी नेनां रा सावा बाण ॥

(सील की नवबाह डा० १ पा० १३ में १६, १७)

## आचार शिष्यता

साधे सीया फिर पुस्तक पोया, आचार पावन अदक पोया ।

ते वस रह्यो माया जसो, एहवा भेयगारी पाचमें बानो ॥

करणी करतूत माहे पोसा, बले बरब बरब मिरना बोना ।

एहारे झूठ तणो मही टासो, एहवा भेयगारी पावन बायो ॥

नाम धरावें साध सतो, विज लक्षण न दोवें एक रमो ।

भूड़े झूठ तणो वह रह्यो नानो, एहवा भेयगारी पाचमें बानो ॥

कोई पदवी घर बाजें मोटा, जनपत्र जेरी मज्जन छोटा ।

कज रहित एकत परालो, एहवा भेयगारी पाचमें बानो ॥

एक-एक तणा दोषन डाकें, अछावें करना नहीं माई ।

त्यानें कोइ मही हटकन बालो, एहवा भेयगारी पाचमें बानो ॥

(साध्वाचार री चौरई डा० ६ पा० ४, ५, ८, ९)

## गुरु परीक्षा

जाजम बिछाई कृपा ऊपरै, चिह्न कानी रे मेल्यो उपर भार ।  
 भोला बेसँ तिण उपरै, ते डूबे मरै रे तिण कृपा ममार ॥  
 तिम कुगुर छै कृपा सारिग्या, जाजम सम रे कर्ने साधरो भेग ।  
 तयामें गुर लेखव बदना करै, ते डूबै रे मूर्ख अघ अरेख ॥  
 (माध्वाचार चौ० दान १० गाथा ६, ७)

## दोष को मत छपाओ

गुर चेला नें गुर भाई माही, दोष देखै सो देणो बताई ।  
 त्या मू पिण करणो नही टालो, तिणरो काढओ सुरत निहालो ॥  
 घना दिना रा दोष बनावै, तें सो मानवा में किम आवै ।  
 साब झूठ सो बेवसी जाणै, छछत्स्य प्रसीत न भाणै ॥  
 हेन माहि सो दोषण दाकै, हेन दूटा कहतो नहि साकै ।  
 तिण री किम आवै परतीत, उण नें जाण सेणो बिपरीत ॥  
 (माध्वाचार चौ० दान १५ गा० ३, ४, ६)

## अध्यात्म दान

### ज्ञान दान

मूत्र अर्थ मिखाय ए, सुख मारग भाणै ठाय ए ।  
 भायें समकत चारित एह ए, धर्म दान छै आठमों तेह ए ॥

### पात्र दान

बने मिलै मुगतत ओण ए, देखै निरदोषण द्रव्य जाण ए ।  
 ए दान मुगत रो भाग ए, दीया दलदर जावै भाग ए ॥

### अभय दान

छत्राय मारण रा त्याग ए, कोइ पचयै आण बेराग ए ।  
 अभय दान कओ जिणराय ए, धर्म दान में मिलियो आए ए ॥  
 (विरत इविरत री चौगई दान ६ गा० १६ से १८)  
 मुगत नें दीया नमार घटै छै, कृपात्र नें दीया बधै मसार ।  
 ए बीर कचन ताका कर जाणो, तिण में ताका नहीं छै भिगार रे ॥  
 (विरति इविरत री चौगई दान १६ गा० २०)

## दया

दया दया सहू को कहै, ते दया धर्म छं ठीक ।  
 दया ओलछनें पालमी, त्थानें मुषन नजीक  
 माय भेंस आक चोहरजो, ए आहई दूध ।  
 तिम अणुकपा जाणजो, राखे मन नें मूध ॥  
 आक दूध पीछा चका, जुदा करै जीव काय ।  
 सावज्ज अणुकपा किया, पाप कर्म बधाय ॥  
 भोलेई मत भूल जो, जो अणुकपा रे नाम ।  
 कीजो अतरंग पारखा, ज्यू सीजं आसम काम ॥

(अणुकपा री चौपई डा० ८ दो० १, तथा डा० १ दो० २ से ५)

जीव जीवै ते दया नहीं, भरै तेह हिंसा मत जाण ।  
 मारण वासा नें हिंसा कही, नही भारै हो ते तो दया गुण छाण ॥  
 ओर हिंसक नें कुसीलिया, यारे ताई हो दीछो साघा उपदेश ।  
 त्थानें सावज्ज रा निरवद किया, एहवी छै हो जिण दया धर्म रेस ॥

(अणुकपा री चौपई डा० ५ गा० ११ तथा ५)

## उपकार

जिम कोई धून तबाखू विणजै, पिण वासन विगत न पाई रे ।  
 घृत लेई तबाखू मे घालै, ते दोनूई वसत विगई रे ।  
 (चतुर विचार करी ने देखो ॥

ज्यू इविरत री दान विरत मे घालै, पिण विरत री विगत न पाई रे ।  
 विरत री विगत पाह्या विण आमा, मूनें चित दान पुकारै रे ॥  
 जीम री औपद आख्या मे घाल्यो, आमा री औपद जीम में घाल्यो रे ।  
 तिण री आछई फूटी नें जीमई काटी, दो नूई इहो खोय घाल्यो रे ॥  
 ज्यू अधर्म रा कामा धर्म माहे घाल्या, धर्म रा कामा अधर्म मे घाल्या रे ।  
 दोनूई विध कर्म बोधे अग्यानी, दुरगत माहें घाल्या रे ॥  
 (विरत इविरत री चौपई डा० ४ गा० १, २, ४, ५)

## बद्धा

छ लेस्या हूती जद बीर मे जी, हूता आठूई कर्म ।  
 छधस्य चूका तिण मर्मजो, मूर्ख यापै धर्म ।  
 चतुर नर समझो म्यान विचार ॥

(अणुकपा री चौपई डा० ६ गा० १२)

निरवर करणी करै पेहने गुण ठाणै, निण करणी नैं जावक जाणै अनुघ ।  
 इसडो परपणा करै अग्यानी, तिण रो भिष्ट हई छै मुघ नैं बुघ ॥  
 पेहले गुण ठाणै निरवद करणी करै छै, निणरी करणी सराया में दोषण जाणै ।  
 अतिचार मागो नहै ममवत माहो, तिण रो न्याय जाण्यो बिन मूर्ख ठाणै ॥  
 इण मूढ़ मनी रो निरणो कीत्रै ॥  
 (मिथ्यातो रो करणी रो चौ० ठा० १ गा० २६, ३०)

### व्रता-व्रत

साधु नैं थावक रतना री माला, एक मोटी दूजी नांजी रे ।  
 गुण गुण्या थ्याक तीवें ना, इविरत रह गइ कानी रे ॥  
 चतुर विचार करी नैं देखो ॥  
 (विरत इविरत री चौपई का० १ गा० १)  
 हिवे गुणजो चतुर मुजाण, थावक रतना री धाण ।  
 व्रता कर जाणजो ए, उलटी मत ताणजो ए ॥  
 केइ रुग्न बाय में होय, आव धनूरो दोष ।  
 फल नहीं सारिखा ए, करजो पारिखा ए ॥  
 आया मू लिय लाय, मीचै धनूरो भाय ।  
 आमा मन अनि बणी ए, अव सेवा तणी ए ॥  
 विण आव गयो कुमनाय, धनूरो रत्नो इहिनाय ।  
 आय नैं जोर्व जरे ए, नेंजा भीर झरे ए ॥  
 इण दिष्टि जाण, थावक व्रत अइ समाण ।  
 अविरत अग्यो रही ए, धनूरा मम बही ए ॥  
 (विरत इविरत री चौपई का० १ गा० १ तथा का० २ गा० ५ मे ६)

### कृपण

मीर कई कृपण तणी, देना मरुपइ धुई हाथ ।  
 कृपण बाओ भाटा मागीयो, कपिया दासी बामी जान ॥  
 बीरी मने कहै मोह मे, नेहनों तीनर न्याय ।  
 कृपण बीरी मागीयो, कहै मोह दुनिया रे भाय ॥  
 छानी पाई मूष गी, ओ देना देख दान ।  
 दोन तना गुण वरणई, तो कृपण बदे न माई जान ॥  
 (उपदेस चौ०—दान री काव २ गा० ६०, ६१, ९८)

### अविनीत के लक्षण

कुह्या जाना री कृतरी, निजरे धरै बीडा राध भीही रे ।  
मपले ठाम सू बाडे दूड दूड करे, घर में आवण न दे बाई रे ॥

धिम् धिम् अविनीत आनमा ॥

कुत्तो बिगारे रमणीक भांगणो, ग्हाग्रे कीडा राध नें सोही रे ।  
बास दुरगध आवै अनि कुरी, निज ने घुर घुर करै सरब कोई रे ॥

जेहवी कुह्या जानारी कृतरी, तेहवा अविनीत नें अभिमानी रे ।  
तिण रो पादुओ भीन में मुग्न अरी, निज मू सगलाइ दे जाए बानी रे ॥

अविनीत रा मुग्न भा सू भीरलै, ते तो कुचबन बीडा मम जानो रे ।  
रमणीक आंगण उग्र मुघ साध नें, बाप सगावै घोष उठाणो रे ॥

धिर करण भाहे राखै तेहने, छिद्र घहे दुर्व द्रोही रे ।  
निज नें कुह्या जाना री कृतरी उग्र, गण वारे बाई सरब कोई रे ॥

कण महित कुरो छोड नें, भिष्टो भवै भङ्गमुरो रे ।  
निज भङ्गमुरा री ओषमा, अविनीत नें दीधी बीरो रे ॥

गलिपार गघो घोघो अविनीत ते, कूट्या विन आगो न बालै रे ।  
उग्र अविनीत नें काम भलाविषा, कह्या कह्या भीड पार धालै रे ॥

(विनीत अविनीत री चोपई डा० २ वा० १ से ६ तथा ११)।

### सौन्दर्य-असौन्दर्य ममता-समता के प्रतीक

भरत नही नेवन देवै दिख्या, बाह्यी भील सगी माडी रिख्या ।  
रूप देखी भरत रे चछा आई ॥

सती बैसे बैसे पारणो कीनों, एक लूखो अनपाणी मे लीनों ।  
कुल उग्र काया परी कुमलाई ॥

भरत री विषे सृ जाणी मनसा, निज सू बाह्यी झाली तपसा ।  
साठ हजार गरस री पिणती आई ॥

भरत छोड दीनी मन री ममता, सती रो सरीर देखी नें आई मुमता ।  
पछे दीपती दिख्या दर्राई ॥

(भरत परित्र डा० १३ वा० १३ से १६)।

### आत्म निरीक्षण की प्रेरणा

बीरा ग्हारा गज बनी ऊतरो, बाह्यी सुदरी इम गावै रे ।  
बाहु वल नें समझायवा, आमी माहमी झणी माहे धावै रे ॥

ये राजरमण रिध परहरी, बसे पुत्र भीया अनेको रे ।  
पिण गज नही छूटी ठाहरो, तू मन माहे आण बवेको रे ॥

बीरा भूराग मज मही उतरो, मज बहियो केवन न होयो रे ।

आरो गोखो आपरो, तो तू केवन जोयो रे ॥

(भरत गरिब डा० १५ गा० १ मे ३)

## विशिष्ट उपमात्मक उक्तियाँ

भाभे काटे धीगरी, कुण छै देखनहार ।

ज्यू गुर महिन गन किनहियो, त्योंरे बिहू दिन गरिया गधार ॥

बैराग पद्यों ने भेग्य बधियो, हाध्यों भार गध्या लदियो ।

यक गया ओज दियो रानो, एहवा भेग धारी पाचम कामो ॥

(माध्वाचार री चौपई डा० ६ दूहा ४ और गा० २८)

विण अहुम तिम हाथी चालें, घोडो विगर सनाम जी ।

एहवी चाप कुगुर री जानो, बहिया नें गाधु माम जी ॥

(माध्वाचार री चौपई डा० १ गा० ३१)

अवनीत ने अवनीत थावक मिने ए, ते पामे घणो मन हरथ ।

ज्यू डाकण राजी हुवें ए, चडवा नें मिमियाँ जरथ ॥

विनीत तथा समझाविया ए, गात दाप ज्यू भेना होय जाय ।

अवनीत रा समझाविया ए, ते कोचना ज्यू कानी पाय ॥

समझाया विनीत अविनीत रा ए, तयामे फेर रिठोयक होय ।

ज्यू तावडी ने छाहडी ए, इनरी अन्नर जोय ॥

(विनीत अविनीत री चौपई डा० १ गा० २८, १४, १५)

साध नें थावक रतना री मासा, एक मोटी दूजी नांनी रे ।

गुण गुग्गा बराह तीर्य ना, इविरत रह गइ कानो रे ॥

बगुर बिचार करी नें देखो ॥

(विरत अविरत चौ० डा० १ गा० १)

कुगुर भडभूजा गारिया, त्योंरी सरधा हो छोटी माड समान ।

भारीकभा जीव बिषा सारिया, तयानें मोथी हो छोटी सरधा मे आण ॥

(माध्वाचार री चौपई डा० १० गा० ८)

मोनारी छुरी चोथी घणो, पिण पेट न मारें कोय ।

ए मोकीक निष्टन सामने, तुम्हें हिरदे विषामी जोय ।

(साध्वाचार री चौपई डा० ११ गा० ८)

सैत साधो मोटी तणो, पहर नाहर की खाम ।

ज्यू भेय लियो साधा तणो, विण चालें गधा री चाल ॥

चले मन मे मगज न भावै, माधु ज्यू सोका मे पूजावै ।  
मगदडाइ मे होय रह्यो सेठो, कुकठधम राजा होय बेटो ॥

(धडा निर्णय री चौपई डा० २५ गा० २१)

रुख जिम भव जीवडा, बागवान भगवान ।  
बाणी जल धारा जिम जाणजो, धानै भव जीवा रे कान ॥  
जल बिण सूकै रुखडा, कुमलार्न कूपल पान ।  
त्यानै सीधै जल त्याय नै, बागवान बुधवान ॥

(मुवाहु कुमार रो वखाण डा० ॥ दो० ४, २)

मछ गलागत सोक मे, सबला ते निवला नै साय ।  
तिण मे धमं परुपियो, कुगुरा बुवद चलाय ॥

(अणुकुमारी चौपई डा० ॥ दो० १)

कण कण सचो कीडो करै, ते कण तीतर चुग जाय ।  
ज्यू कृपण रो धन सचियो, यू हो जावै विनलाय ॥

(उपदेश चौ०—दान री दाण २ गा० १७)

मूर्ख नाकें मिघर पोवै, बहो किम आसो वेवै ।  
ज्यू हिंसा माहे धर्म परुवै, ते सासोसाल न वेवै रे ॥

(साधवाचार री चौपई डा० १ गा० २८)

बाध्यो कालारी पाछनी गोरियो, वणं नावै पिन सघन आवै रे ।  
ज्यू विनीत अविनीत बनें रहै, तो उ कायक बुवद सीखवै रे ॥

(विनीत अविनीत री चौपई डा० २ गा० २८)

कादा नै सो बार पाणी नू धोविया, सो ही न बिटै दिनरी वास हो ।  
ज्यू अविनीत नै गुर उपदेश दीवे घणो, पिन घून न मार्ग पाम हो ॥  
कादा री तो वास धोया मुधरी पडै, निरपल छे अविनीत नै उपदेश हो ।  
जो छेडवै तो अविनीत अवसो बडै घणो, उजरे दिन दिन दृष्टकू कनेस हो ॥

(विनीत-अविनीत री चौपई डा० ३ गा० २६, ३०)

कद कूपल बोली हसी, पान दीयो बब जाव ।  
बीर बखाणो ओपमा, मधमं सोम मजाव ॥  
अछता नै ओपमा छनी, छते बटती होय ।  
इम जाणी नै गुण बहो, सगडो म करो कोय ॥

(व्याहृतो डा० १ गा० २, ४)

## लोकोवितयां

मीठी बनेक माँही देखो, भाऊ बिना न लागे सेखो ।

(उपदेश की चौगई—ममकित की दास ३ गा० १)

पर मे भाबे खावाताण, पापी जीवरा ए अहनाण ।

(मुगा सोडा रो बघाण डा० ११ गा० ११)

याद भाबे जब मासै आईटाण, ने किन भाग्य काई बाण ।

(झोन्दी रो बघाण डा० ३० गा० १)

जातो ने मरता छता, राख न सकै कोय ।

(मुवाहु कुमार रो बघाण डा० ६ दो० ४)

लोक माहे पिण बहे छँ ओछाणां, पूत रा पग पालना मे पिछाणी ।

ते पालना तो ज्यादा रह्यो नाहि, पूत रा उग जोवो पेट रे माहि ।

(मुगा सोडा रो बघाण डा० ११ गा० ११)

विरत बिहणी जे पछी, निरखे निर्कल जाय ।

(जबू कुमार चरित डा० ४५ दो० ४)

दोरी वेसा आय पहेँ जब, कोइ दुख मही बाटे आई ।

(पावसा पुनर रो बघाण डा० ५ गा० ७)

भाप बेटा सह भाप जायना, कीधा भुगने कम ।

(जबू कुमार चरित डा० ४२ दो० ७)

काल बटका देह, ते भाँधी गिने न मेह ।

(सुदर्शन चरित डा० ३६ गा० ६)

पापी रो मुख देखना जी, भलो कठा सँ याय ।

(साधनाभार री चौगई डा० ११ गा० ६)

चाकर कूँकर बेहू शरीखा, धनी बसावे जू चाय ।

(उदाई राजा रो बघाण डा० ५ गा० १७)

घान अमाउ ऊरना, हाँसी काटे नेट

(गोल की नव बाइ डा० ११ गा० १)

मरण सँ बारी न लागे काई ।

(पावसा पुनर रो बघाण डा० ३ गा० २२)

हरप मूनो मूने हूवे ।

(जबू कुमार चरित डा० ४२ दो० १)

एहपो भासो जायो एहपो ।

मेहरो बीरु बारी मेहवा कम लावे ।

(मुवाहू मुवाहू गो बघाण हा० २ गा० १४)

घने गछाई दल जीव रे ।

(मुदमन बरिण हा० ३६ गा० १६)

जवा बरी जाई मे जाई मही ।

(उगाई राजा गो बघाण हा० ३ दो० ४)

घन पानी रो पदमे जाव ।

(उगदेम की बीरुई—दांन री हा० १ गा० १६)

बिगहो बिगाई महिपो पान ।

(बिनीउ बबिनीउ री बीरुई हा० १ गा० २८)



२२. व्यावलो दोहा ६८ ।
२३. गोशाला री चौपई डालें ४१ ।
२४. बेडाकोणिक री चौपई डालें १६ ।
२५. सामली तापन री चौपई डालें ७ ।
२६. उदाई राजा रो व्याख्यान डालें ७ ।
२७. धावरचा पुत्र री चौपई डालें ३२ ।
२८. मल्लीनाथजी री चौपई डालें २६ ।
२९. द्रोपदी री चौपई डालें ३३ ।
३०. तेनलो प्रधान डालें १६ ।
३१. जिनरख जिनपाल को चौडासियो ।
३२. नद मणिहारा रो चौडासियो ।
३३. पुडरीक कुडरीक रो चौडासियो ।
३४. सकडाल पुत्र डालें १७ ।
३५. मुवाहुकुमार डालें ११ ।
३६. मृगालोडो डालें १६ ।
३७. उबरदत्त डालें ५ ।
३८. घग्गी धनगार डालें ६ ।
३९. भरत चरित्र डालें ७४ ।
४०. जम्बुकुमार डालें ४६ ।
४१. मुदर्शन सेठ डालें ४२ ।
४२. बैलणा रो चौडासियो ।
४३. सामू बहू रो चौडासियो ।

## गद्य

१. ३०६ बोला री हूडी ।
२. १८१ बोला री हूडी ।
३. पाव भाव री चर्चा ।
४. जोगा की चर्चा ।
५. खुली चर्चा ।
६. आश्रव सवर री चर्चा ।
७. जिनाजा री चरचा ।
८. शातवादी री चरचा ।
९. इन्द्रियवादी री चरचा ।
१०. अल जोक हाव जोक री चरचा ।

११ तिनीं ही चरणा ।

१२ दीकम होगी ही चरणा ।

१३ धिनु पुण्या ।

१४ तेश द्वार ।

१५ जोर वरधे उतर पाव भावो रो मोरहो ।

१६ आड आमा रो मोरहो ।

१७ उदय तिन्नागदिक रा कोनी ऊपर पाव भाव रो मोरहो ।

१८ सामुद्रिक लिखन -

(१) गुजरात परची को लिखन संवत् १८३२ मंगल वदि ७ ।

(२) समर्थ आषो रे मर्मादा रो प्रथम लिखन संवत् १८३४ जेठ सुदि १ ।

(३) समर्थ साधा रे मर्मादा रो प्रथम लिखन संवत् १८४१ भैरव सुदि १३ ।

(४) प्राछित रो लिखन संवत् १८४१ ।

(५) आध्यात्मिक वा कारणीक ही जाकरी रो लिखन संवत् १८४५ जेठ सुदी १ ।

(६) समर्थ साधा रे मर्मादा रो द्वितीय लिखन संवत् १८५० माघ वदि ५ ।

(७) समर्थ आषो रे मर्मादा रो द्वितीय लिखन संवत् १८५२ जागुण सुदि १५

(८) समर्थ साधा रे मर्मादा को लिखन संवत् १८५६ माघ सुदि ७ मनिवार ।

(९) सर्व साधु साध्विना रे विद्यादिक श्रवा रे परिमाण रो लिखन संवत् १८५६ ।

१९. व्यक्तिगत लिखन—

(१) अर्ध रामजी पाछा गण भादे आवा त्यारो लिखन संवत् १८२६ माघ सुदि १२ बुधस्पतिवार, बुनी ।

(२) रूपचंदजी अर्धरामजी पाछा श्वारा होय ने स्वामीजी मे दोष काह्या तिण रो विगत संवत् १८५० ।

(३) बडा रूपचंदजी रो लिखन सं० १८५० ।

(४) अर्धरामजी दुजो वार पाछा गण मे आवा त्यारो लिखन संवत् १८५० मंगल वदि ८ ।

(५) रूपचंदजी द्वेष रे बस अर्धरामजी ने अनेक बोल काह्या त्यारो विवरण सं० १८५० ।

(६) वीरभाणजी ने प्राछित देणो पाप्यो ते लिखत संवत् १८३२ जेठ सुदी ११ ।

(७) वीरभाणजी स्वामी मे दोष काह्या तिण रो विगत सं० १८३२ ।

(८) वीरभाणजी अवगुण बोल्या ते पन्नी लिखया तिण रो विगत संवत्

- (६) फत्तुजी आदि च्यार आर्या गण मे आई तयारो लिखत सबत् १८३३  
मिगसर यदि २ बुधवार ।
- (१०) गाव चूरु मे फत्तुजी रा दोष उघडिया तयारो विवरण सबत् १८३७ ।
- (११) फत्तुजी आदि पाच आर्या ने गण वारै कादैं तयारो लिखत सबत्  
१८३७ फागुण यदि २ ।
- (१२) तिलोकचन्द चंद्रभाण रा कूड कण्ट नै दगा रो विवरण सबत्  
१८३७ ।
- (१३) तिलोकचन्द चंद्रभाण नें विश्वासघाती जाण नै गण वारै कादूया तिग  
रो लिखत सबत् १८३७ माह यदि ६ ।
- (१४) सतोपजी शिवरामजी रो मन भाग नें आपरा कीघा तिग री विगत  
सबत् १८३७ ।
- (१५) मुखोजी रो मन भाग नें आपरा कीघा तिग री विगत सबत्  
१८३७ ।
- (१६) तिलोकचन्द चंद्रभाण री बापा नाम ईडवा मे सामती विगरी विगत  
सबत् १८३८ ।
- (१७) तिलोकचन्द चंद्रभाण री बाता गांव बाजोली माहै भापा कही तिय  
री विगत सबत् १८४५ पोष मुदि ११ ।
- (१८) ऋषि अचैरामजी रे अने ऋषि मिश्रजी रे विगत खावा रा त्याग री  
लिखत सबत् १८४१ चैत यदि १३ बृहस्पतिवार ।
- (१९) ऋषिरामजी रो अमिह पुरी हुवी तिग रो लिखत सबत् १८४१  
चैत द्वितीय यदि १० सोमवार लाटोनी ।
- (२०) बडू मे गण माहैं सीघा पहनी करार कीयो तिग रो लिखत सबत्  
१८४१ ।
- (२१) बडू बीरा ने गण वारै काद्री तिग री विगत सबत् १८४२ वैशाख  
यदि १ ।
- (२२) गाम भिरपारी मे बडू अवगुण बोल्या तयारी विगत सबत् १८४२ ।
- (२३) बीरा नें फाडण ताई चडू साध-माडिया रा अवगुण बोल्या तिग री  
विगत सबत् १८४२ ।
- (२४) अने चडूभी अवगुण बोल्या ते अजबोबी निछाया तयारी विगत  
सबत् १८४२ ।
- (२५) चडू नें वारै कादूया पछे आर्या रे आम दोघा तेहनी विगत सबत्  
१८४४ ।
- (२६) आर्या मेणाजी रा जोगसू सरुपाजी री अग्रजित छात्री तिग रो  
लिखत सबत् १८४४ चैत यदि ६ ।



## परिमिष्ट-२

विजय नवम् १८१७ से १८६० तक भाषार्थ भिक्षु ने जिन-जिन शोधों में बिहार किया उनकी स्वामीजी द्वारा रचित कृतियों, भारीमान श्री स्वामी द्वारा लिखित ग्रन्थों, लेखकों, भिक्षु दुष्टान्त तथा व्यास आदि के आधार से क्रमशः सानिधा इस प्रकार उपलब्ध है—

संख्या	गाँव	समय
१८१७	बेसवा	शानुर्मास
१८१८	बरलू	शानुर्मास
१८१९	तिरियाही	"
१८२०	राजनगर	"
१८२१	बेसवा	"
१८२२	तिरियाही	"
	गेरवा	शेषकाल
१८२३	पानी	शानुर्मास
१८२४	कटानिया	"
१८२५	बेसवा	"
१८२६	गेरवा	"
१८२७	बगडी	"
१८२८	कटानिया	"
१८२९	तिरियाही	"
	भूरी	शेषकाल
१८३०	मुधरी (बगडी)	शानुर्मास
१८३१	सवाईमाधोपुर	"
१८३२	गेरवा	"
	बिठौरा	शेषकाल
	मुदवच	"
	गेरवा	



गांव	समय
योगूदा	"
नाथद्वारा	चातुर्मास
कोठारिया	चातुर्मास मे विहार
सगवार	शेषकाल
काकडोली	"
बेलवा	"
बिठोडा	"
पाली	चातुर्मास
घेनावास	शेषकाल
साठोती	"
अगडी	"
रोयट	"
पाली	"
पीपाड़	चातुर्मास
तेरवा	"
नैनवां	शेषकाल
पुर	चातुर्मास
नेणवा	शेषकाल
माघोपुर	"
उगियारा	"
नेणवां	"
मानरदा	"
इन्द्रगढ़	"
माघोपुर	चातुर्मास
भगवतगढ़	शेषकाल
नेणवा	"
भूमी	शेषकाल
मवाई जयपुर	"
माघोपुर	"
बेतवा	चातुर्मास
बेतवा	शेषकाल
मोमुन्दा	"



गाँव	समय
नाथद्वारा	"
मोगूदा	"
मोगूदा या उसके आसपास	"
देवगढ़	"
सिरियारी	"
पाली	चातुर्मास
घाणोद आदि	शेषकाल
पीपाड़	"
सोजत	"
बगड़ी	"
कंटालिया	"
सिरियारी	चातुर्मास

# परिशिष्ट-३ (क)

दोहा

मित्र समय में जो हुए, मुनि उनका पवित्र ।  
दोहा दर्पण में प्रबट, देखो उनका चित्र ॥

प्रयमाचार्य धी भिक्षुगणों के समय में बोधित साधुओं का दोहा-दर्पण

हेतु	संख्या	आदि	सदया	वय	सदया	नावा० या०	संख्या	स्वर्गवात गण बाहर सदया	स्वर्गवात गण बाहर सदया
भारवाग	१०	योगवास	२२	अविवाहित	६	नावातिग	५	२६	२०
मेवाग	१४	पौरवास	१	विवाहित	३	वातिग	४४	२६	२०
रानी	२	मरावनी	२	रानी छोड़	३	(वयरक जो १८ वर्ष में अधिक हो)			
रावेली	२	मुनार	१	गपली	०				
गुडवाग	१	बराग	२३	बराग	३४				
बराग	१३								
	४८								

# आचार्यं धी भिक्षुगणी के समय के साधुओं का न्याय-दर्पण

आचार्य सख्या	आचार्य नाम	साधु दीक्षा	स्वर्गवास	गणबाहुर	विद्यमान
१	भिक्षुगणी	४६	१०	१८	२१

आचार्य भिक्षु के समय ४६ साधु दीक्षा हुए । उनमें स्वामीजी के समय १० साधु दिवङ्गत हुए और १८ साधु गण से अलग हुए ।  
 योग २१ साधु स्वामीजी के स्वर्गवास के समय विद्यमान थे ।

एक ही में च्यार रे आसरे, दिव्या दीप्ती निद गण मांय हो ।

एकबीस साध सनाबीस साधप्यो, भेती परमव पोहता मुनिराय हो ॥

(हेम मुनि रचित भोग्य चरित्त डा० १३ गा० १५)

मुनि इकबीस साधामणा, ममणी सताबीस ।

भेती न परमव भया, भिक्षु गण ना ईश ॥

(आचार्य दर्पण डा० १ दो० ४)

# प्रथमाचार्य श्री भिक्षुगणी के समय दीक्षित सा

क्रम-सं०	नाम	गात्र	गायनाक्षर	बीजा संख्य	स्वर्ग, गणवाहर मण्ड
१	विष्णुपत्री	साध्या	१८१६	१८३३	
२	चन्द्रचन्द्री	"	१८१६	१८३१	
३	श्री मिश्र गणिगत्र	कटानिया	१८१६	१८६०	
४	बीरभाणजी	तोत्र	१८१६	१८३० माप मुदि	
५	टोकरजी			६ में जेड मुदि ११	
६	हरनाथजी		१८१६	के बीच गणवाहर	
७	श्री भारीमाधजी	मूडा	१८१६	१८३८	
८	निशमोत्री		१८१६	१८६६ मोर ४८ के	
९	सुय्यरामजी		१८१६	बीच	
१०	अर्धरामजी	मोहावट	१८१६	१८७८	
११	अमरोत्री	"	१८२२	१८२४, २५ के पूर्व	
१२	निर्लोचनचन्द्री	केलावाम	१८२४	गणवाहर	
१३	मोत्रीरामजी	"	१८२६	१८६२	
१४	शिवजीरामजी		१८२४-२५	१८६१	
१५	चन्द्रभाणजी	बीरामर	१८२४-२५	१८२४ या २५ के	
		पुर	१८२४-२५	पूर्व गणवाहर	
			१८२४-२५	१८३६ गणवाहर	
			१८२४-२५	कुछ समय गणवाहर	
			१८२४-२५	गणवाहर	
			१८२४-२५	१८३२ मुरमर-	
			१८२४-२५	वदि ७ के पूर्व	
			१८२४-२५	१८३६ गणवाहर	

अप-स०	नाम	गति	साधनावास
			बीक्षा सत्रम् स्वर्ग, गणवाहर संवत्
१६	अपरोत्री	जेरवा	१८२४, २५ के बाद १८३१ के पूर्व १८३२ जेठ सुदि ११ के बाद १८३७ माघ वदि ६ के पूर्व गणवाहर
१७	पनत्री		१८२४, २५ के बाद १८३१ के पूर्व १८३२ सुगसर वदि ७ के पूर्व गणवाहर
१८	सगोकचम्पुजी		१८३२ जेठ सुदि ११ के बाद १८३७ के बाधुर्मास के बाद गणवाहर
१९	शिवरामजी		१८३२ जेठ सुदि ११ के बाद १८३७ के बाधुर्मास के बाद गणवाहर
२०	नगजी	बुडवा	१८३२ जेठ सुदि-११ के बाद-१८३७ माघ वदि-६ के पूर्व १८४६, ४८ के बाद १८५३ माघ सुदि १३ के पूर्व
२१	मामजी	बूदी	१८३८ १८६६
२२	खेतमीजी	माघद्वारा	१८३८ १८८०
२३	समजी	बूदी	१८३८ १८७०
२४	शम्भुजी	देवगढ़	१८३८ १८३९ कार्तिक शुक्ला २ के पूर्व गणवाहर
२५	मधजी	गुजरात (प्रांत)	१८३९ कार्तिक शुक्ला २ के बाद और स० १८४१ चैत्र वदि १३ के पूर्व १८४१ के आपाड मे या स० १८४२ के बाधुर्मास मे गणवाहर
२६	नानजी		१८४१ १८७१
२७	नेमजी	रोयट	१८४१ द्वितीय चैत्र वदि १० के बाद और स० १८४३ के पूर्व १८४१-४८ के बाद स० १८५३ माघ सुदि १३ के पूर्व

क्र.सं०	नाम	गाँव	सागनाकाग बीगाँव सार्व स्वर्ग, गणबाहुर	
२८	बेगीरामजी	बगही	१८४४	१८९०
२९	रामचन्द्रजी (बडा)		१८४४-४७ के बीच	१८५० में गणबाहुर
३०	मुरतोजी		१८४४-४७ के बीच	कुछ दिन बाद गणबाहुर
३१	बधमानजी (बडा)		१८४४-४७ के बीच	१८५५
३२	रामचन्द्रजी (छोटा)		१८४४-४७ के बीच	१८५३ माघ १३ के पूर्व बाहुर
३३	गमारामजी		१८४४-४७ के बीच	१८५५ के गणबाहुर
३४	यशगोत्री	बोरावड	१८४४-४७ के बीच	१८५०-५३ सुदि १३ के गणबाहुर
३५	सुन्नजी	दुमरा	१८४७	१८६४
३६	हंमराजजी	सिरियारी	१८५३	१८०४
३७	उदयरामजी	केलवा	१८५५	१८६० के के पूर्व
३८	कुसामजी	बागोर	१८५७	१८६६ में बाहुर
३९	भोटोजी	धारचिया	१८५७	१८६० में सुदि १३ गणबाहुर
४०	भाषोजी	देसुरी	१८५७	१८५९ में बाहुर
४१	श्री रायचन्द्रजी स्वामी	बही रावलिया	१८५७	१८०८
४२	साराचन्द्रजी	गगापुर		१८७०
४३	दुमरसीजी	गगापुर	१८५७	१८६८
४४	जीवोजी	तामोल	१८५७	१८६०

## साधनाकाल

क्रम-सङ्ख्या नाम	गाँव	दीक्षा सवत्	स्वर्ग, गणबाहर सवत्
४५ जोगीदासजी	केतवा	१८५७	१८५६
४६ जोगोजी	करेडा	१८५७-५८	१८७५
४७ भगजी	खेरवा	१८५६	१८६६
४८, १ भागवदजी	वीदासर	१८५६	१८६७
४९ भोपजी	कोथीफल	१८५६	१८६६

## आचार्य भिक्षु के समय दिवंगत साधु

क्रम	नाम	बीषाक्रम	देवसोक सवत्
१.	श्री विरपासजी	१.	१८३३
२.	" फतेहचंदजी	२.	१८३१
३.	" भिक्षु गणिराज	३.	१८६०
४.	" टोकरजी	५.	१८३८
५.	" हरनाथजी	६.	१८४६ और ४८ के बीच
६.	" शिवजीरामजी	१४.	१८३२ मुगसर यदि ७ के पूर्व।
७.	" नगजी	२०.	१८४६-४८ के बाद १८५३ माघ सुदि १३ के पूर्व।
८.	" नेमजी	२७.	" "
९.	" बंधमानजी	३१.	१८५५
१०.	" जोगीदासजी	४५.	१८५६

## आचार्य भिक्षु के समय गणवाहर साधु

क्रम	नाम	बीषाक्रम	गणवाहर सवत्
१.	वीरभाणजी	४.	१८३२ माघ सुदि ६ ॥ जेठ पूर्णिमा ११ के बीच।
२.	निमोषी	८.	१८२४, २५ के पूर्व
३.	अमरोवी	११.	१८२४ या २५ के पूर्व
४.	निमोषचन्दजी	१२.	१८३६
५.	मोखीरामजी	१३.	कुछ समय परधान
६.	चन्द्रभाणजी	१५.	१८३६
७.	अणदोवी	१६.	१८३२ जेठ सुदि ११ के बाद १८३७ माघ यदि ८ के पूर्व

क्रम	नाम	दीक्षा-क्रम	गणवाहर सवत्
८.	पनजी	१७.	१८३२ मृगशिरा सदि ७ के पूर्व
९.	सतोपचन्दजी	१८.	१८३७ के चातुर्मास के बाद
१०.	शिवरामजी	१९.	१८३७ के चातुर्मास के बाद
११.	शम्भूजी	२४.	१८३९ कार्तिक शुक्ला २ के पूर्व
१२.	मिषजी	२५.	१८४१ के आषाढ़ में या सवत् १८४२ के चातुर्मास में
१३.	रूपचन्दजी (बड़ा)	२६.	१८५०
१४.	मुरलीजी	३०.	कुछ दिन बाद
१५.	रूपचन्दजी	३२.	१८५३ माघ सुदि १३ के पूर्व
१६.	मयारामजी	३३.	१८५५ के बाद
१७.	वखतोजी	३४.	१८५०-५३ माघ सुदि १३ के बीच
१८.	नाथूजी	४०.	१८५६

### आचार्य भिक्षु के स्वर्गवास के समय विद्यमान साधु

क्रम	नाम	दीक्षाक्रम	बाद में दिखगत या गणवाहर
१.	श्री भारीमासजी	७.	१८७८
२.	" सुखरामजी	८.	१८६२
३.	" श्वेतरामजी	१०.	१८६१
४.	" साभजी	२१.	१८६६
५.	" भैरवीजी	२२.	१८८०
६.	" रामजी	२३.	१८७०
७.	" नानजी	२६.	१८७१
८.	" वेणीरामजी	२८.	१८७०
९.	" सुखजी	३५.	१८६४
१०.	" हेमराजजी	३६.	१८०४
११.	" उदयरामजी	३७.	१८६० चैत्र महीने के
१२.	" कुसालजी	३८.	१८६६ गणवाहर
१३.	" ओटोजी	३९.	१८६० गणवाहर

번호	구분	정기평가 대상	정기평가 결과 비율(%)
1	1. 1. 1. 1. 1. 1.	1. 1.	1. 1. 1.
2	2. 2. 2. 2. 2. 2.	2. 2.	2. 2. 2.
3	3. 3. 3. 3. 3. 3.	3. 3.	3. 3. 3.
4	4. 4. 4. 4. 4. 4.	4. 4.	4. 4. 4.
5	5. 5. 5. 5. 5. 5.	5. 5.	5. 5. 5.
6	6. 6. 6. 6. 6. 6.	6. 6.	6. 6. 6.
7	7. 7. 7. 7. 7. 7.	7. 7.	7. 7. 7.
8	8. 8. 8. 8. 8. 8.	8. 8.	8. 8. 8.
9	9. 9. 9. 9. 9. 9.	9. 9.	9. 9. 9.
10	10. 10. 10. 10. 10. 10.	10. 10.	10. 10. 10.

## प्रथमाचार्य श्री मिलगणों के समय बीछित साधियाँ

क्रम	नाम	गांव	बीछा सं०	साधनाकाल
				स्वर्ग गणबाहर राधगु
१.	कुशामांजी		१८२१	१८३४ के पञ्चान् १० के बीछ मिथु युग में
२.	मट्टुजी		१८२१	१८३४-३२ के बीछ
३.	अत्रवूजी		१८२१	१८३४ जेठ मूदि १ की बाद १८३७ माघ मदि ६ के पूर्व गण बाहर
४.	सुआणांजी		१८२१ और १८२३ के बीछ	१८३७-३२ के बीछ
५.	देऊजी		"	१८३४ के पूर्व या बाद में स्वामी जी के समय
६.	नेमूजी		"	१८३४ के पूर्व या बाद में स्वामी जी के समय गणबाहर
७.	शुमानांजी		"	१८३४-३२ के बीछ
८.	कस्तुराजी		"	१८३४-३२ के बीछ
९.	बीऊजी	रीयां	"	१८६० के पूर्व स्वामीजी के समय
१०.	फालूजी		१८३३	१८३७ गणबाहर
११.	अगूजी		"	"
१२.	अत्रवूजी		"	"
१३.	चट्टूजी		"	१८३७-३४ में तीसरी बार गण बाहर
१४.	चैनांजी		"	१८३७ में गणबाहर
१५.	मैणांजी		१८३३-३४	१८६० स्वामीजी के समय
	धन्गूजी	पुर	"	१८५८-१८५९ में गणबाहर

### आचार्यधो भिक्षुगणों के समय की साध्वियों का न्याय-वर्णन

आचार्य सख्या	आचार्य नाम	साध्वी दीक्षा	स्वर्णवाम	गण-बाहुर	विद्यमान
१	भिक्षुगणी	५६	१२	१७	२७

आचार्य भिक्षु के समय ५६ साध्विया दीक्षित हुईं। उनमें स्वामीजी के समय १२ साध्विया दिवस न हुईं और १७ साध्विया गण से अलग हुईं। गेय २७ साध्विया स्वामीजी के स्वर्णवास के समय विद्यमान रही।

एक सौ नौ प्यार रे आसरे, दिव्या दीक्षी निजवन भार हो।

एकबीस साध सताबीस साधव्या, मैली परभव गोहृया मुनिराय हो॥

(हेय मुनि एषिज धीनू बलि ३० ११ भा० १५)

मुनि सबीस मुहाम्बा, समी मत्ताबीस।

मैली नै परभव गया, धिनु वण ना इन॥

(आर्य दर्जन ३० १ दो० ४)

## प्रथमाचार्य श्री भिक्षुगणी के समय दीक्षित साध्वियां

क्रम	नाम	माघ	दीक्षा सं०	साधनाकाल
				स्वर्ण गणबाहर सधत्
१.	शुभासाजी		१८२१	१८३४ के परवात् ६० के बीच भिक्षु युग मे
२	मट्टजी		१८२१	१८३४-३२ के बीच
३	अजबूजी		१८२१	१८३४ जेठ सुदि ६ के बाद १८३७ माघ वदि ६ के पूर्व गण बाहर
४.	सुजाणाजी		१८२१ और १८२३ के बीच	१८३७-३२ के बीच
५	देऊजी		"	१८३४ के पूर्व या बाद मे स्वामी जी के समय
६	नेतूजी		"	१८३४ के पूर्व या बाद मे स्वामी जी के समय गणबाहर
७	गुमानाजी		"	१८३४-३२ के बीच
८.	कसुवाजी		"	१८३४-३२ के बीच
९	जीऊजी	रीया	"	१८६० के पूर्व स्वामीजी के समय
१०.	फत्तूजी		१८३३	१८३७ गणबाहर
११.	अखूजी		"	"
१२.	अजबूजी		"	"
१३.	चरूजी		"	१८३७-३४ में तीसरी बार गण बाहर
१४.	चंभाजी		"	१८३७ मे गणबाहर
१५.	मैणाजी		१८३३-३४	१८६० स्वामीजी के समय
१६	घन्तूजी (घन्नाजी)	पुर	"	१८५८-१८५९ मे गणबाहर

### आचार्यंथी भिक्षुगणों के समय की साध्वियों का न्याय-वर्णन

आचार्य सख्या	आचार्य नाम	साध्वी दीक्षा	स्वर्णवास	गणबाहर	विद्यमान
१	भिक्षुगणी	५६	१२	१७	२७

आचार्य भिक्षु के समय ५६ साध्विया दीक्षित हुईं। उनमें स्वामीजी के समय १२ साध्विया दिवंगत हुईं और १७ साध्विया गण से अलग हुईं। शेष २७ साध्विया स्वामीजी के स्वर्णवास के समय विद्यमान रही।

एक सौ नौ प्यार रे आसरे, दिव्या दीधी निजगण माय हो।  
एकबीस साध सताबीस साधव्या, मेली परभव वोहता मुनिराय हो॥

(हेम मुनि रचित धीपू चरित्त का० १३ का० १५)

मुनि एकबीस मुद्रायणा, समनी सत्ताबीस।  
मेली नै परभव गया, भिक्षू गण ना ईन॥

(आर्या दर्शन का० १ दो० ४)

## प्रथमाचार्य श्री भिक्षुगणों के समय बोधित साध्वियों

क्रम	नाम	गाँव	धीशा सं०	साधनाशाला
				स्वर्ग गणबाहर समय
१.	शुभाभाजी		१८२१	१८३४ के पश्चात् ६० के बीच भिक्षु युग में
२.	मट्टजी		१८२१	१८३४-३२ के बीच
३.	मज्झजी		१८२१	१८३४ पेट सुदि ६ के बाद १८३७ माघ वदि ६ के पूर्व गण बाहर
४.	सुभाभाजी		१८२१ और १८२३ के बीच	१८३७-३२ के बीच
५.	देऊजी		"	१८३४ के पूर्व या बाद में स्वामी जी के समय
६.	नेतूजी		"	१८३४ के पूर्व या बाद में स्वामी जी के समय गणबाहर
७.	शुभाभाजी		"	१८३४-५२ के बीच
८.	मसुवाजी		"	१८३४-५२ के बीच
९.	जीऊजी	रीवा	"	१८६० के पूर्व स्वामीजी के समय
१०.	फत्तूजी		१८३३	१८३७ गणबाहर
११.	भगूजी		"	"
१२.	मज्झजी		"	"
१३.	चट्टजी		"	१८३७-५४ में तीसरी बार गण बाहर
१४.	चैनाजी		"	१८३७ में गणबाहर
१५.	मंगाजी		१८३३-३४	१८६० स्वामीजी के समय
१६.	घन्तूजी (घन्नाजी)	पुर	"	१८३८-१८५६ में गणबाहर

क्रम सं०	नाम	ग्रांव	बीजा संख्या	साधनाकाल स्वर्ण, गणबाहर
१७	केलीजी		"	१८५८-१८५९ में गण
१८	रतूजी		"	"
१९	नटूजी		"	"
२०	रंगूजी	गायडारा	१८३८	१८६० के पूर्व स्वामीजी के समय
२१	संदाजी	गायडारा	१८३८-४४ के बीच	१८६० के पूर्व स्वामीजी के समय
२२	फूलाजी	कंटालिया	"	१८५५-६० के बीच स्वामीजी के समय
२३	अमराजी		"	१८६०-६८ के बीच भारीमाल के समय
२४	रतूजी		"	१८५२ के पूर्व या १८५२-६० के बीच स्वामीजी के समय गणबाहर
२५	तेजूजी	डोलक डोल	"	१८६०-६८ के बीच भारीमाल युग में
२६	वनाजी		"	१८५८-६० के बीच स्वामीजी के समय गणबाहर
२६	वगलूजी	बगडी	१८४४	१८७६ खैत बंदि १ के बाद अघिराय युग में
२८	हीराजी	पचपदरा	"	१८७८ भारीमाल युग में
२९	नगाजी	बगडी	"	१८६६
३०	अजवूजी	रोयट	"	१८८८
३१	पन्नाजी	सिरियारी	१८४४-४८ के बीच	१८६०-६८ के बीच भारीमाल युग में
३२	साताजी	काकडोनी	"	१८५२ के बाद भिन्नु समय गणबाहर
३३	कुमानाजी	तासोल	"	१८६०-१८६८ के बीच भारीमाल युग में
३४	सेमाजी	भूटी	"	१८६०-६८ के बीच भारीमाल युग में

क्रम सं०	नाम	गांव	धीला सं०	साधनाथान रत्न, गणबाहर संवत्
३५	जगुजी	बांरडोनी	१८४४-४८ के बीच	१८५२ के पूर्व गणबाहर
३६	चोटाजी	बांरडोनी		"
३७	रुपाजी	राबनिवा	१८४८	१८५७
३८	सकपाजी	माछोपुर	१८४८-५२ के बीच	१८६०-६८ के बीच— भारीमान मुग में
३९	बरजूजी	बड़ी पाहु	१८५२	१८८७
४०	बीजाजी	रीपा	"	१८८७
४१	बनीजी	बड़ी पाहु	"	१८६७
४२	बीराजी	दड़ीवा (मारवाह)	"	१८५२-५४ में दूमरी बा गणबाहर
४३	उदाजी		१८५२-५६ के बीच	१८६०-६८ के बीच भारीमान मुग में
४४	सुमांजी	नाथडारा	१८५६	१८६६ या ६७
४५	हस्तुजी	पीनाह	१८५७	१८६७
४६	कुमातांजी	राबनिवा	"	१८६७
४७	बरजूजी	पीनाह	"	१८७६
४८	चोताजी	सावा	"	१९०९
४९	नोराजी	तिरियारी	"	१८७२
५०	कुशामाजी	पाली	१८५९	१८७०
५१	नायाजी	पाली	"	१८६७
५२	बीजाजी	पाली	"	१८८६
५३	गोमांजी	रोयट	"	१८६०
५४	जमोदाजी	खेरवा	"	१८६० के बाद १८६८ या ७० के पूर्व
५५	दाहीजी	खेरवा	"	"
५६	भोलाजी	खेरवा	"	"

## आचार्य भिक्षु के समय दिवंगत साध्वियां

क्रम	नाम	बीसा क्रम	देवसोक संवत्
१	श्री कुमालाजी	१	१८५४ के पञ्चान् ६० के बीच
२	" मट्टुजी	२	१८३४-५२ के बीच
३	" गुजानाजी	४	१८३७-५२ के बीच
४	" देऊजी	५	१८३४ के पूर्व या बाद में
५	" गुमानाजी	७	१८३४-५२ के बीच
६	" वसुम्बाजी	८	" "
७	" जीऊजी	९	१८६० के पूर्व
८	" मेणाजी	१५	१८६०
९	" रणूजी	२०	१८६० के पूर्व
१०	" मदाजी	२१	१८६० के पूर्व
११	" पद्माजी	२२	१८५५-६० के बीच
१२	" रपाजी	३७	१८५७

## आचार्य भिक्षु के समय गणवाहर साध्वियां

क्रम	नाम	बीसा क्रम	गणवाहर संवत्
१	श्री अन्नबूजी	३	१८३४ जेठ सुदि ॥ के बाद १८३७ माघ यदि ६ के पूर्व
२	" नेनूजी	६	१८३४ के पूर्व या बाद में
३	" पत्तूजी	१०	१८३७
४	" अन्नबूजी	११	"
५	" अन्नबूजी	१२	"
६	" चट्टूजी	१३	१८३७, १८५४ में तीसरी बार
७	" भैनाजी	१४	१८३७
८	" धन्नुजी (धन्नाजी)	१६	१८५८ या ५९ में
९	" केमीजी	१७	" "
१०	" रणूजी	१८	" "
११	" ननूजी	१९	" "
१२	" रणूजी	२४	१८५२ के पूर्व अथवा १८५२-५४ के बीच
१३	" बन्नाजी	२६	१८५८-१८६० के बीच
१४	" मामाजी	३२	१८५२ के बाद

क्रम	नाम	हीला क्रम	मथराहुर मथन
१५	" जगुडी	३५	१८५२ के पुर्ब
१६	" खोपडी	३६	" " "
१७	" बीराडी	४२	१८५२, ३४ में दूगरी बार

आचार्य भिक्षु के स्वर्गवास के समय विद्यमान तात्त्विकी

क्रम	नाम	हीला क्रम	आद में दिवस
१	सागरीपी कमराडी	२३	१८६०-६८ के बीच भारी० पुण में
२	" तैदुडी	२५	" " "
३	" बन्दूडी	२७	१८७६ के बाद अविश्व पुण में
४	" हीराडी	२८	१८७८ भारीमात पुण में
५	" मगडी	२९	१८६६
६	" अजकुडी	३०	१८८८
७	" पगडी	३१	१८६०-६८ के बीच भारी० पुण में
८	" गुमानाडी	३३	" " "
९	" मेमाडी	३४	" " "
१०	" मकपाडी	३८	" " "
११	" बरकुडी	३९	१८८७
१२	" बीराडी	४०	१८८७
१३	" बगडी	४१	१८६७
१४	" उदाडी	४३	१८६०-६८ के बीच भारी० पुण में
१५	" गुमाडी	४४	१८६६ या ६७
१६	" हगडी	४५	१८६७
१७	" गुमानाडी	४६	१८६७
१८	" कस्तूडी	४७	१८७६
१९	" जोडाडी	४८	१८०८
२०	" नीराडी	४९	१८७२
२१	" गुमानाडी	५०	१८७०
२२	" नापाडी	५१	१८६७
२३	" बीराडी	५२	१८८६
२४	" गोमाडी	५३	१८६०
२५	" जगोदाडी	५४	१८६० के बाद १८६८ या ७० के पुर्ब
२६	" बाहीडी	५५	" " "
२७	" जोडाडी	५६	" " "

## ४. श्री वीरभाणजी (सोजत)

(दीक्षा स० १८१६, १८३२ माघ सुदि ६ मे त्रेठ सुदि ११ के बीच गणवाहर)

### रामायण-छन्द

भैरव शासन नन्दन, बन है आध्यात्मिक गुण का आधार।  
स्वच्छ 'उमग-निमग' (नदी) जलोपम बहती उसमें सयम धार।  
शुद्ध साधना करते वे तो पाते आत्मिक गुण साकार।  
स्खलित साधु-पद से होते वे योने विषम बीज दुपकार॥१॥

सव—सत्य से बढ़कर...

साधना की है कसीटी भाव मंथन के सही।  
अन्यथा है लाभ मुदिकल देय तो ग्राते बही॥१॥  
साध्य है सर्वोच्च शिव-मुख, शुद्ध सन्निय साधना।  
स्वस्थ साधक जागरित हो आत्म-दन्द्रिय-निग्रही॥२॥  
आप्त-बाणी का हृदय में अटलतम विद्वास हो।  
स्वय को अल्पज्ञ माने हो न किंचित् आप्रही॥३॥  
शासना गुरुदेव की आराधना की है कडी।  
प्राणप्रण से पाल तो फिर शान्ति से विचरो कही॥४॥  
महावनधर साधु रमते समिति मयुत मुप्ति में।  
धर्म है आचार पहला फिर कला विद्या सही॥५॥  
एक की यदि हो कमी तो मूल में ही मूल है।  
स्यान-च्यून हो फल खजूरो के पुरुष पाता नहीं॥६॥  
विरति में मुख, दुख है आसक्ति में, सशय नहीं।  
कठिन मिमना गाय के बिन दूध घी मक्खन दही॥७॥  
जान के अनजान बनते मोह-मदिरा-मान से।  
इयान दे देखो नमूना आ रहा धाराबही॥८॥

## रामायण-छन्द

सोजत वासी वीरभाणजी धीमड ओसवाल वंशज ।  
 वचपन मे मा बाप मरेवे परिजन के घर पले सहज ।  
 ये प्रारभ समय से अस्थिर नही नियन्त्रित अन्दर से ।  
 गुरु रघुनाथ पास में दीक्षित हुए प्रथम 'हर' 'टोकर' से ॥६॥  
 स्वामीजी के साथ किया पन्द्रह मे पावरा राजनगर ।  
 चतुर्मास के बाद चले हैं दो दल मे पाचो मुनिवर ।  
 कहा भिक्षु ने यात न करना मेरे आने से पहले ।  
 किन्तु न रहा गया उनसे तो वचन विभेदात्मक निकले ॥१०॥  
 थावक सच्चे राजनगर के, भूल रहे प्रभु-पथ को हम ।  
 सुन अवाक् रघुनाथ रहे हैं, बोल रहा क्यों विना फहम ।  
 मेरे पास बानगी केवल पूर्ण हकीकत उनके पास ।  
 आयेगे तब दत्तलायेगे क्या निष्कर्ष निकाला खास ॥११॥  
 यदल गया रुख उनका तत्क्षण पहुंचे अब थी भिक्षु बहा ।  
 रग देखकर समझ गये वे वीरभाण ने वृत्त कहा ।  
 बुद्धि-विलक्षण स्वामीजी ने विनय-युक्त सब रखे विचार ।  
 किन्तु न कोई हल निकला तब अलग हुए है साहस धार ॥१२॥  
 धर्म-शान्ति में भिक्षुराज के वीरभाणजी साथ हुए ।  
 नव दीक्षा से भिक्षु-योग से जन में कुछ प्रख्यात हुए ।  
 चर्चावादी पढ़े-लिखे थे अग्रगण्य हो विचर रहे ।  
 पर अविनय उच्छृंखलता से बने बनाये महल ढहे ॥१३॥

लय—राम राजा राम प्रजा...

सुगुरु अविनय से अविनयी शिष्य जन जब हो रहे ।  
 शुद्ध संयम साधना से हाथ तब वे धो रहे ॥ध्रुवा॥  
 वीरभाण विनेय (शिष्य) गुरु के कुछ समय के बाद में ।  
 अविनयी, मानी बने फिर शिष्य लोलुप स्वाद मे ।  
 संयमार्थी एक 'पन्ना' नाम का भाई हुआ ।  
 दी न सम्मति शिष्य करने की, उन्हे तब दुःख हुआ ।  
 दृष्टि को विपरीत कर सर्वस्व अपना खो रहे ॥१४॥  
 चौपई सुविनीत ओ अविनीत पर गुरु ने रची ।  
 स्वयं पर सब खीचनी है, हृदय मे उलटी जची ।

बड़ी है उड़ता सह चढ़ता अविवेक में।  
 मय से विच्छेद गुरु ने कर दिया पल एक में।  
 गया समय गई श्रद्धा भार कृत्रिम हो रहे ॥११॥  
 'इन्द्रिया गात्रज' आदिक विषमतर की ख्याना।  
 भिक्षु ने की बहम उनमें तत्र हुई सद्भावना।  
 जमी श्रद्धा और निर्णय नई दोषा का किया।  
 तदनुगामी धारको ने आ उन्हें भड़का दिया।  
 'दोष है रा आगमें' गुन गिधिन फिर ये हो रहे ॥१२॥  
 रहे कोश आदि पुर में किये आरक-आरिका।  
 गिन भी मुद्रित किये बहु ध्यान न रहा जानि का।  
 भिक्षु के श्री यज्ञ है विश्राम हादिक भ्रम भी।  
 भित्त में मुनि गाधियों को पूछो गुण-शेम भी।  
 गात्रों की कर दानी बीज मैत्री यो रहे ॥१३॥  
 प्रथम निज आरका को कहा, नञ्जु दित्त से हुए।  
 द्वादशम मम मृग्यु के ये पुष्पकादिक यग्युगु।  
 भिक्षु गण के गात्रभा को सोचना उच्यत में।  
 प्रथमो इना नहीं तुम स्वयं रखना पाग में।  
 ११६ म ११११ की १ शेष में तो मों - १११

घटना सुनाने हुए कहा—'राजनगर के आदर्शों का कथन सत्य है और हम साधुत्व का सम्यग् पालन नहीं कर रहे हैं। मेरे पास मे तो केवल नमूना मात्र है, भीखणजी जाने के बाद समय वृत्तांत सुनायेंगे।' यह सुनते ही उनके दिल में उदासी आ गई। बाद में स्वामीजी पढ़ते तब आचार्य रघुनाथजी का दृष्टिकोण बदला हुआ देखा। उन्होंने मन में जान लिया कि बीरभाणजी ने पहले आकर बात कह दी है, जिससे इनका मन स्थिर गया है। स्वामीजी ने विनय पूर्वक आचार्य रघुनाथजी को प्रसन्न किया और अपने विचार उनके सम्मुख रखे। काफी समय तक परस्पर चर्चा करने पर तथा समझाने पर भी वे नहीं समझे तब स्वामीजी ने स० १८१६ चैत्र शुक्ला ६ को धगड़ी में उनसे सबंध विच्छेद कर लिया। उस समय स्वामीजी के साथ मुनि भारीमालजी, हरनाथजी, टोकरजी तो थे ही, पर बीरभाणजी भी सम्मिलित थे।

(भिक्षु जग रघावण डा० २ से ४ के आधार से)

३ बीरभाणजी ने आचार्य भिक्षु के साथ नई दीक्षा स्वीकार की। वे पंड-लिखकर तैयार हुए और अग्रगण्य रूप में भी विचरण करने लगे। किन्तु अविनय एवं उच्छ्वल-वृत्ति के कारण सन्मार्ग में भटक गये।

एक पन्ना नामक भाई दीक्षा लेने वाला था। बीरभाणजी उसे दीक्षित कर अपना शिष्य बनाना चाहते थे। परन्तु स्वामीजी ने उचित न ममत्त कर उन्हें शिष्य बनाने की आज्ञा नहीं दी, जिससे उनकी दृष्टि विमुख बन गई।

स० १८३२ भाद्रपद शुद्ध ६ को स्वामीजी ने 'विनीत-अविनीत की चौपई' बनाई उसे बीरभाणजी ने अपने ऊपर रखी हुई समझी। स्वामीजी ने उसी धर्म विठोश ग्राम में स० १८३२ मृगशिरा वदि ७ को भारीमालजी स्वामी को पुष्पाचार्य पद दिया उसने सबंधित भाग्यहृदक लेखपत्र (जम सख्या १) पर बीरभाणजी ने हस्ताक्षर तो किये पर वे बाद में कहने लगे कि मैंने शर्माशर्मा से हस्ताक्षर किये हैं

हस्ताक्षर करने के पश्चात् बीरभाणजी, अणदोजी (१६) के साथ 'जेठावती' के मुठे पहुँचे। वहाँ अणदोजी ने बीरभाणजी को 'विनीत-अविनीत की चौपई' की कुछ बालें मनाई। तब बीरभाणजी ने उन्हें अपने पर रखी हुई समझकर कहा—'अब मुझे स्वामीजी के हृदय में विश्वास पैदा करना है। दूसरे माधुओं से तो स्वामीजी लिखत लिखाते हैं पर मैं उन्हें स्वयं उनके अनुशासन में चलने का लिखित लिखकर दूँगा। उसके बाद उन्होंने इसी भाषण का एक लेखपत्र लिखा और अणदोजी को पढ़कर सुनाया।

इसके बाद वे स० १८३२ माघ वदि १४ को रोहट पहुँचे। वहाँ आदर्शों द्वारा सुना कि पनजी (मण में बहिष्कृत) सिरियारी में स्वामीजी को गण में लेने की प्रार्थना कर रहा है। माघ सुदि ६ को बीरभाणजी ने अणदोजी को कहा—'स्वामीजी ने पनजी को मेरा शिष्य होने की सभावना देकर छष्ट किया है।'

विनय-अविनय की दार्शनिक और उक्त लिखित के शिष्य में

निया। उनकी सामक मान्यता को दूर करने के लिए 'द्वन्द्वशील भावजीन' की दाल तथा 'इन्द्रियवादी' की घोषणा की रचना की।

४ बीरभाणजी असम होने के पश्चात् प्रायः कोटा, इन्द्रगढ़, भगवतगढ़, आदि क्षेत्रों में बिखरे। उन्होंने अनेक भाई बहनों को अपना अनुयायी बनाया। मैना जाति के कई (लगभग २५, ३०) व्यक्तिगणों को दीक्षित भी किया। (दाल)

‘पति मैना ने मुझ्सा माकान’

(भिरगु जल रसायन का० ८ गा० १४)

६. बीरभाणजी ने बाद में स्वामीजी के प्रति द्वेष भाव नहीं रखा। साधु-साध्वियों के मिलने पर अधिक प्रगल्भ होने। उनमें शिष्टाचार पूर्वक वार्तालाप करते तथा गोचरी के घर और पक्षमी की जगह बतलाने। (दाल)

७. बीरभाणजी के रहने-रहते ही उनके अधिकारी शिष्य साधु वेग को छोड़-कर गृहस्थ बन गये। उन्होंने अन्तिम समय में अपने श्रावकों में कहा—‘मेरे इन पुस्तक पत्रों को भीरभाणजी स्वामी के साधुओं को देना अथवा तुम लोग इनका पढ़न-पाठन करना। परन्तु अन्य किसी को मत देना। उनके बाद वे परमोक्त बने गये।’ (दाल)

(दाल)

असम

दालगणी की दाल में उसन मदर्म में इस प्रकार उल्लेख मिलता है—  
“बीरभाणजी ने असम होने के पश्चात् मैना जाति के लगभग पचीस, तीस व्यक्तिगणों को दीक्षित किया था। उनमें से बहुत सारे दीक्षा को छोड़कर गृहस्थ बन गये थे। पर अवशिष्ट शिष्यों की परम्परा के एक सेजरामजी ही बचे थे। उनके गुरु जब मरणाशन्न थे तब सेजरामजी ने उनसे पूछा—‘आप तो अब अश्वरूप हैं, अतः आपके पीछे ॥ अरेसा ही रहूंगा तब मेरा काम किस प्रकार चलेगा?’ गुरु ने उनको उत्तर देने हुए कहा—‘तेरापयी शुद्ध साधु हैं, उनमें और अपने में कोई अन्तर नहीं है। तुम उनमें सम्मिलित हो जाना।’ तब फिर सेजरामजी ने तर्क करते हुए पूछा—‘हम लोग तो इन्द्रियों को भावज मानते हैं, अतः इन्द्रियवादी हैं। किन्तु तेरापयी उन्हें साधोदशाधिक-भाव मानते हैं, तब एक किस प्रकार हुए?’ तब गुरु ने कहा—‘यह कोई अन्तर नहीं है। मैंने भी अपने गुरु से यही बात पूछी थी तब उन्होंने कहा था कि असम होने वाले को कुछ न कुछ तो भिन्नता बतलानी ही पड़ती है, अन्यथा उनका धृष्ट होना लोगों पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। इसलिये तुम इस भेद की चिन्ता मत करना।’

इसके कुछ दिन पश्चात् सेजरामजी के गुरु का देहावसान हो गया। सेजरामजी

भी लपटी से अवरण रहने लगे और कुछ समय बाद हगडमड में मृत्यु को प्राप्त हो गये। उन्होंने अपने अन्तिम समय में अपने धावकों को मुक्त द्वारा बड़ी मई उपर्युक्त बात को बयानाते हुए कहा था कि मेरी मृत्यु के परवाह मेरे पुत्रक पत्ने आदि सब ठेठपंदाी साधुओं को दे देना।

मुनिधी हीरामानजी (१२६) 'गुरबात' का सं० १६२६ का शानुर्माण इंदौर में था। शानुर्माण करने के परवाह के हगडमड पधारे सब ठेठपंदाी के धावकों ने उन्हें उपर्युक्त सारी बात सुनाते हुए पुत्रक पत्ने आदि लेने के लिए निवेदन किया। मुनिधी ने उन सबको देखा, परन्तु काम के योग्य न समझकर सहन नहीं किया।

(हालपत्नी की कथा)

## ५. मुनिश्री टोकरजी (मयम पर्याय १८१६-१८३८)

## ६. मुनिश्री हरनाथजी (मयम पर्याय १८१६-१८४६ से ४८ के मध्य)

नवीन-छन्द

स्थानकवासी सम्प्रदाय को मुनि 'टोकर' 'हर' ने छोड़ दिया।  
स्वामीजी से तार आन्तरिक दूढ़तम श्रद्धा का जोड़ लिया॥  
तनु छायावत् बन सहयोगी करते वे विनय भक्ति अविरल।  
हाजिर रहने गुरु-चरणों में हर समय जोड़कर हाथ युगल॥१॥  
गुरु सेवा का गौरव 'जिन' ने जंनागम में बहु गाया है।  
वर तीर्थंकर गोन बध का साधन उत्कृष्ट बताया है॥  
बह श्रेयस्कर पथ आजोवन युग मुनियों ने अपनाया है।  
तन्मय होकर परिचर्या में जीवन-सर्वस्व लगाया है॥२॥

रामायण-छन्द

होकर उनमें बड़े प्रभावित दिया भिन्नु ने दिव में स्थान।  
चार तीर्थ में भुवन-स्वर से गाये हैं उनके गुणगान॥  
अग्निम शान में शम्भु मनोंने बोले—इनका वा सहयोग।  
गुरु पूर्वक मयम पाया है वित्त समाधि रही शुभयोग॥३॥

बोहा

करने गुरुद गराहता, जिन जिन्यों की सार्थ।  
सौभाग्यो वे हैं बड़े, उनका जन्म इतार्थ॥४॥

## रामायण-छन्द

बहु ययौ तव धरण-साधना कर भर पाये नव आनोख ।  
 बगदो में अनशन धन लेकर 'टोकर' ऋषि पट्टये गुरतोख ॥  
 मयारा बूढाह देग में कर 'हरनाथ' धमप ने दीप ।  
 पाया परित मरण उच्चतम निचा दयात मे नाम विनोप ॥५॥

१. मुनिजी टोकरजी और हरनाथजी पहले स्थानबन्धानी सम्प्रदाय के आचार्य स्थनाथजी के पास दीक्षा हुए थे । वहाँ के बीरभाणजी ने छोटे से अन्न स्वामीजी के कई दीक्षा के समय उन दोनों को बीरभाणजी से छोटा रखा ।

राजनगर के धाककों को समाप्त करने के लिए आचार्य स्थनाथजी ने स्वामीजी को सं० १८१२ में राजनगर चानुर्माण के लिए भेजा तब २ संनों में वे दोनों भी गाय थे ।

स्वामीजी अब स्थानबन्धानी सम्प्रदाय से अलग हुए तब वे दोनों स्वामीजी के साथ रहे एवं स्वामीजी के साथ ही उन्होंने धाकगादि क्रम में सं० १८१९ (नैरादि क्रम से वि० म० १८१७) आषाढ़ शुक्ला १२ को बैलवा में भाव दीक्षा ग्रहण की ।

तेरापय के उद्भव काल में तेरह संनों में वे वे दोनों थे ।

२. दोनों मुनि स्वामीजी के अनन्य सेवक हुए । उन्होंने जो सेवा का भारों उरस्थित किया वह पुन-पुन तक इतिहास के गुनहारे पृष्ठों पर अंकित रहेगा ।

१. टोकरजी, हरनाथजी बीरभाणजी साथ ।  
 भिक्षुमित्र भारीमासजी, दीक्षा दी निब हाथ ॥  
 एसाय तेई भिक्षु माविमा, राजनगर मभार ।  
 सबत् अठारै पजरे सम, ओमासो गुणकार ॥

(भिक्षु अन्न रसायन का)

२. सबत् अठारै सतरोत्तरे रे, आपाह मुद पूनम जाण ।  
 समय दीघो स्वामीजी रे, कर जिन वचन प्रमाण ।  
 हरनाथजी हाकर हुंठा रे, टोकरजी सीछा मुवनीत ।  
 परम भगता सिध पाटवी रे, यां राछी पुज री परवीन ॥

(भिक्षु चरित्र का० ३ या

३. भिक्षु गण मे टोकरजी हरनाथ कै, ए सत दोनू तेरा माहि  
 अणसण करि नै आराधक पद आय कै, पूज्य भोखपजी प्रसति  
 (शासन विमोक्ष का)

स्वामीजी ने उनके द्वारा की गई सेवा का उद्देश्य अपने अनशन के कुछ दिन पूर्व बड़े भाव-भरे शब्दों में किया है। पड़िये निम्नोक्त पद्य—

देहने अवसर भिखु बहो, हरनाथ टोकर भारीमालजी।

यां तीना रा साम धी, सजम पाव्यो रमानजी॥

(टोकर, हरनाथ गुण वर्णन डा० १ गा० २)

गुन्दर बाण मुहामणी, निगुणै बहू नर नारो ए। मुखकारो ए।

भोजन आई खादणी क। मु०॥

विजर तन हीणो पद्यो, परम पूज्य पछिहाण्यो ए। मन जाण्यो ए।

आउ मेंडो उनमान धी क। मु०॥

स्वाम कहै सतजुणी भणी, ये सखर शिख मुविनीनो ए। घर पीनो ए।

गाश दियो सजम तणो क॥

टोकरजी तीया हुन्ता, विनयवंत मुविनारी ए। हिनकारी ए।

भक्ति करी भारी घणी क॥

भारमालजी सू भेसप भली, रहीज रुडी रीतो ए। अति प्रीतो ए।

जाणक पाछिल भव तणी क॥

सखर तीना रा साम मू, नर सजम उजवाव्यो ए। म्है पाव्यो ए।

प्रत्यक्ष ही सरापणी क॥

चित्त समाधि रही घणी, म्हारा मन मशारी ए। हुमियारी ए।

यां तीना रा साम धी क॥

(भिक्षु जल रसायण डा० ५४, गा० ३ से ६)

ख्यात में उन दोनों सतों के लिए लिखा है—ए दोनू सत बड़ा धीरा विनय-वान बड़ा बियावचिया साधु तेरा माहिना, धी भिक्षुगणी माहाराज री शिख भक्ति सेवा भात-भात कर नै घणी करी, सघारा लाई साथे सेवा में रह्या।<sup>१</sup> श्री भिक्षु इसी पुरमायोपारा साज सू मैं सजम पाव्यो, मनै चित्तसमाधि घणी उरवाई इत्यादि धार तीरथ में घणी बार स्वमुखे प्रशंसा करी। पछे भारीमाल मू दीक्षा में बड़ा तो पिण सेवा भक्ति विनय मुरजी परमार्ण परवर्त्ता, अन्त सम में टोकरजी बगड़ी सहर में सघारो बीयो अनै देश दुदाड में हरनाथजी सघारो बीयो, बड़ा चैरागी मुनीश्वर हा।<sup>१</sup>

उन वर्णन में भारीमालजी स्वामी की सेवा-भक्ति आदि करने का जो उल्लेख है वह युवाचार्य की सेवा-भक्ति के सम्बन्ध का समझना चाहिए, न कि स्वामीजी के स्वर्गवास के पश्चात् का, क्योंकि ने दोनों मुनि स्वामीजी के स्वर्गवास

१. इस वाक्य का तात्पर्य है कि मुनि टोकरजी और हरनाथजी अपने अनशन तक अर्थात् आजीवन स्वामीजी की सेवा-भक्ति करते रहे।

के बहुत बने पहले ही लिखे हुए गये थे।

२. मुनि टोकरजी का स्वर्णनाम सं० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ एवं भाषाङ्ग शुक्ला १५ के बीच मथारे में हुआ। उनके स्वर्ण समय के सम्बन्ध में हम प्रकार ज्ञान प्राप्त करते हैं—

बगरी मेहर रिमेल, स्वामी टोकरजी हो मथारो गियो।

(भिक्षु जल रत्नाकर का० ४५ पा० ८)

‘अन्त गरी टोकरजी बगरी मेहर में मथारो गियो।

(अज्ञात)

सं० १८३२ और १८४१ के विषयों पर उनके हस्ताक्षर नहीं हैं परन्तु मुनिजी सेतमीजी की दीक्षा पर सं० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ की वं स्वामीजी के माथ से, हमका ज्ञान केगुनी चरित्र का० २ पा० ८ में है—

‘भावीमातजी आदि महामुनि, टोकरजी हरनाथ हो।

बनीक्षा निर मेहरा, जोड़ पडा रहे हाथ हो॥

स्वामीजी के अन्तर्गत ध्यातक सोमजी द्वारा रचित सं० १८३६ आगत शुक्ला २ की पुस्तक की १६ की काल में वर्तमान सन्तो के नामों में टोकरजी का नाम नहीं है, अतः वे हमसे पूर्व लिखित हो गये थे। उनके स्वर्णनाम का स्थान बगरी है। स्वामीजी ने सं० १८३६ का आनुर्भास निरिषारी में दिया था। आनुर्भास के पूर्व स्वामीजी बगरी पथारे हों और संभव है कि वही टोकरजी का स्वर्णनाम हो गया हो।

हम सब उद्धारकों को देखते हुए यही निश्चय निकलता है कि वे सं० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ के पञ्चानु तथा भाषाङ्ग शुक्ला १५ में पुन लिखित हुए।

ज्याचार्य विरचित सत गुणमाना का० २ पक्षित धरण कास १ पा० २ में है कि हरनाथजी स्वामी बगरी मने, टोकरजी कुडाह देखोए। लेकिन यहां हरनाथजी के स्थान पर टोकरजी एवं टोकरजी के स्थान पर हरनाथजी होना चाहिए क्योंकि ज्याचार्य की अन्य कृति निधु मय रसायन में तथा अन्य स्थानों में टोकरजी का बगरी में ही अनुमन करने का उल्लेख मिलता है।

साधु विवरणिका में उनका स्वर्णनाम सं० १८३२ दिया है जो उक्त प्रमाणों से अनिष्ट है।

४. मुनिजी हरनाथजी का स्वर्णनाम सक्त् अप्राप्त है, पर सं० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ की मुनिजी सेतमीजी की दीक्षा के समय वे स्वामीजी के माथ से

१. सम्भवतः उन्हें हस्ताक्षर करना नहीं आता था।

२. मुद्रानमक निवासी निग्रीमचन्दजी दूगरवाल द्वारा संकलित साधुओं की नामावली।

(जिमका वर्णन ऊपर दे दिया गया है)। सं० १८३६ कार्तिक शुक्ला २ के दिन शोभजी थावक कृत पूजगुणी ब्रह्म १६ गा० १२ में विद्यमान साधुओं में उनका नाम है तथा सं० १८४१ के सामूहिक और व्यक्तिगत लेखकों (क्रम सं० ३, १६) में उनके हस्ताक्षर हैं। इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि सं० १८४१ तक तो वे विद्यमान थे।

वे बुडाड देश में सवारों में स्वर्ण पधारें और वे प्रायः स्वामीजी के साथ ही रहते थे। स्वामीजी का बुडाड, माधोनुर की तरफ १८३१ के बाद, ४६, ४७, ४८ में ही पधारना हुआ। अब संभव है कि सं० १८४६ के शेषरास में अथवा ४७ और ४८ के बीच स्वामीजी बुडाड में बिचरे सब उनका स्वर्णवास हुआ।

यहां एक प्रश्न फिर उपस्थित होता है कि उपर्युक्त स्वर्णवास समय ठीक है तो सं० १८४५ के सामूहिक लेखपत्र (क्रम सं० ५) में उनके हस्ताक्षर क्यों नहीं? इसका समाधान यही हो सकता है कि वे उस समय उपस्थित नहीं थे या अस्वस्थता आदि अन्य कोई कारण हो। लेकिन उनके सम्बन्ध में प्रकाश डालने वाली सभी कृतियों में 'वे बुडाड देश में स्वर्ण पधारें ऐसा स्पष्ट उल्लेख है, अब उनका स्वर्णवास सं० १८४६ से १८४८ के बीच का ठहरता है।'

जयाधाय ने सं० १८६८ में रचित 'सत गुणमासा' का० ४ गा० ३, ४ में दोनो मुनियों के स्मृति सदर्भ में लिखा है—

जिन मार्ग में सुखदायक सुविनीत के, स्वामी हरनाथजी हुआ जी।  
भीष्टु सेती पूरण वाली प्रीत के, तन मन सू सेवा करी जी॥  
टोकरजी स्वामी लोछा यथा तमाम के, भिक्षु आप परससिया जी।  
सकम वाली सारुया आरम काम के, खोरो भजन करो भविष्य सदा जी॥  
तथा 'मुनिन्द मोरा,' का० गा० ६ में भी उनका स्मरण किया है—  
'मुनिन्द मोरा, टोकर ने हरनाथ।'

१. देश बुडाड में देख, हृद संवारो हो हरनाथजी कीयो।

(मिक्खु जस रसायण का० ४२ गा० ८)

देश बुडाड में हरनाथजी सवारो कीयो।

५७. द्वितीयाचार्य श्री भारीमालजी (भारमलजी)  
(बड़ा मूहा)  
(समय पर्याय १८१६-१८७८)

दोहा

अन्तेवासी भिक्षु के, भारीमाल विनीत ।  
महावीर गौतम सदृश, जोड़ी मिली पुनीत ॥१॥

समय—समय से बढ़कर...

भिक्षु गुरु के शिष्य भारीमाल के गुण गा रहा ।  
हृष्य गंगा में नहाकर दिल कमल विकसा रहा ॥ ध्रुव० ॥  
मेदपाट देश में मूहा मनोहर ग्राम था ।  
धारिणी माता व किसनजी पिता का नाम था ।  
गोत्र लोदा वंश में अवतंस बनक : आ रहा ॥ भिक्षु...१॥

दोहा

अष्टादश शत चार में, पाये जन्म पवित्र ।  
जन्मांतर सस्कार तो, लाये बड़े विचित्र ॥२॥

समय—समय से बढ़कर...

वर्ष दश में द्रव्य दीक्षा ली जनक के माथ मे ।  
भिक्षु के चेले बने, दी डोर उनके हाथ मे ।  
भाग्यशाली व्यक्ति ही संयोग अच्छा पा रहा ॥३॥  
बालवय में भी न किचिद् मोह अपने तात का ।  
ले गये बालपूर्व तो भी अन्न न लिया हाथ का ।  
रंग वापस सौपने से तीन घर मे छा रहा ॥४॥

भाव दीक्षा केलवा मे भिक्षु सह पाकर गिने ।  
स्थान मे 'ओरी अधेरी' के न भय खाकर हिने ।  
साप का उपसर्ग तो विस्मय बड़ा ही ला रहा ॥१५॥

तब—मंदिर मे बाई.....

मंदिर मे फहरी सत्य की ध्वजा, ठहरे भिक्षु व भारीमाल । मंदिर मे  
कैसा हो गया काम कमाल । मंदिर मे फहरी..... ॥ प्रभु ०॥  
शहर केनवा मे गुरुवर की, हुई प्रथम पगफेरी ।  
सोनों ने मिल जगह बताई, ओगी घोर अधेरी ॥१६॥  
निशा समय में गये परठने, वाताक मुनि श्री 'भारी' ।  
बोट गया है साप पैर में, फिर भी दुड़ना धारी ॥१७॥  
अभय-मूर्ति वन छोड़े यहा तब, स्वामीजी ने आकर ।  
पूछा शिष्य छोड़ा क्यों बाहर ? अहि लिपटा है प्रभुवर । ॥१८॥  
मंगल पाठ सुनाया गुरु ने, उतर चला यह क्षण में ।  
अदर लाकर भारी मुनि को, मुला दिया आसन मे ॥१९॥  
आज जागरण करना मुझ को, कर निगंय यह मन मे ।  
एकाकी प्रभु बैठे-बैठे, सगे ध्यान चिंतन में ॥२०॥  
एवत वस्त्र धर मुर आ बोला, मुझे न मानव जाने ।  
देवानुप्रिय ! नही जानता नर आते न पुरानें ॥२१॥  
होता है उपसर्ग यहा पर, अनुमति हो तो ठहरें ।  
वरना स्थान दूसरे मे जा, ले समता की लहरें ॥२२॥  
बोला विबुध शांति से रहिए, कष्ट न होगा कब ही ।  
दो बातों का नाथ ! निवेदन, करता हूँ मैं अब ही ॥२३॥  
नाग लकीर करे उस हृद मे, मूत्रादिक न परठना ।  
चोकी ऊपर सिवा आपके, स्थित न किसी को करना ॥२४॥  
हुआ यक्ष अदृश्य, मुबह तो पता चला पुर जन को ।  
दौड़-दौड़ आ झुके चरण मे, अर्पित कर तन मन को ॥२५॥  
हमने तो गुरुदेव ! रचा था, मृत्यु उपाय स्वभावी ।  
किन्तु आपके पुण्य-पुंज से, मुरवर सेवाभावी ॥२६॥  
शैशव वय मे भी 'भारी' की कितनी थी मजबूती ।  
वीर पुत्र की तरह वीर ने, दी है सबल सबूती ॥२७॥

सद्य—साय से बड़कर...

ये रहे गुरुनीत गुरु के भवन ज्यो भगवान् के ।  
भक्ति हार्दिक प्रीति सखी ये उपायक ज्ञान के ।  
बोर मोनम की तरह गाकार छवि दिग्गजा रहा ॥१८॥  
ज्ञान का स्थायी गजाना मिल गया गुरु-भक्ति में ।  
माद आगम ग्रंथ आदिक निये बहू अनुरक्ति में ।  
पारणा अच्छी हुई मतिज्ञान-मणि चमका रहा ॥१९॥

बोहा

वृत्तियां स्वामीजी रचित, की प्रायः कठम्य ।  
स्मृतिगन निभेन ज्ञान में, जानी यने प्रशस्त ॥२०॥  
रहने रत स्वाध्याय में, यही मनाते भोज ।  
पद्य हमारों मूत्र के, दुहराते हर रोज ॥२१॥  
मूत्र उत्तराध्ययन का गूड गूडे बहुवार ।  
पुनरावर्तन रात्रि में, करने ये धृति धार ॥२२॥

सद्य—साय से बड़कर...

ध्यान गयम पालने में धर्म-शासन प्राण था ।  
दृष्टि पर था भिक्षु के सर्वस्व ही बनिदान था ।  
शिष्य गुरु के स्नेहमय सस्मरण कुछ बतला रहा ॥२३॥

बोहा

भिक्षुनगर में भिक्षु का, वर्षावास रसाल ।  
बगड़ी में ज्वर-योग में, ठहरे भारीमाल ॥२४॥  
नदी बीच बहने लगी, तब गुरु शिष्य उदार ।  
दोनों तट पर हो खडे, मिलते ये साकार ॥२५॥  
आपस में होता मधुर, वार्तालाप सुरम्य ।  
शिक्षा गुरु की शिष्यवर, करते हृदयगम्य ॥२६॥  
एक तरफ से क्षर रहा, रस वात्सल्य पवित्र ।  
एक तरफ गुरु भक्ति का, सम्मुख होता चित्र ॥२७॥

शीघ्रतः चले गये ते जग जगें हास मनुज ।  
 पूजा भारी का शहर में गुप्तज पैदा है अरुज ।  
 श्वाण पर मुनि को स्थापन रहा यदि जिनमन्द ने ।  
 योग्य सर्वा के न वे लगे मिर श्वाण आने ॥४५॥  
 हेम मुनि जगिगम ने सब बात गुप्तज में कही ।  
 गुप्त हुए वे, गतां में ली पाट जयपुर की गही ।  
 रिया उग ही सर्व पावन हेम मुनि ने लिखनगढ़ ।  
 गौग ममते क्षेप की गिर नीच लग पाई मुदुड ॥४६॥

### बोहा

भागक दाग महेगत्री, उनमें एक पुनीत ।  
 गम-बोध गी को दिया, रखा 'दिताश' मोत ॥४७॥  
 निर्याण्ट के नियम में, की सर्वा उपगुप्त ।  
 विधि बगनाई बग्न की, जो आगम में उग ॥४८॥  
 अर्थ अपेक्षा न्याय में, गमशी पद का सत्य ।  
 केवल ग्रीवातान में, निकल न पाता तथ्य ॥४९॥  
 दृष्टि परम उपहार की, कर-कर धर्म प्रचार ।  
 समझाने जनबुद्ध को, भरने श्रद्धा-सार ॥५०॥

### गीतक-ध्वज

उनतर की साज वर्षाकाल जयपुर में किया ।  
 बहुत भाई बहुत समझे क्षेत्र को सर कर लिया ।  
 रह फाटगुन भास तक तनु व्याधि से गणधार है ।  
 शिष्य जय आदिक मिते है हुआ अति उपकार है ॥५१॥

### बोहा

माधोपुर पायस किया, सत्तर में सोत्साह ।  
 पुनरपि जयपुर स्पर्श कर, ली बोरावट राह ॥५२॥  
 दिन-दिन बढ़नी जा रही, सध प्रगति की पोध ।  
 वनते श्रावक-श्राविका, बहुततर पाकर बोध ॥५३॥  
 शहर काकडेली किया, गुरु ने चातुर्माग ।  
 पोषध सतरह ली हुए, फैला धर्म-प्रकाश ॥५४॥

सय—भावक वत घारो...

गुरु गुण की गरिमा, मैं हृदय धोलकर गाऊँ रे। गुरु०१

सह प्रवल प्रभाव वतार्जुँ रे। गुरु०..... १

जय-विजय ध्वजा फहराऊँ रे। गुरु०..... ॥ध्रुव०॥

विनति उदयपुर-भविजन की मुन, भारीमाल पधारे रे। गुरु०॥

साल पचहत्तर ग्रीष्मकाम मे, खोले ज्ञान-कुंवारे रे ॥गुरु०॥५५॥

ठहरे हैं याजार-विपणि में, प्रवचन रस बरसाते रे।

हलुकर्मी नर लाभ ले रहे, दौड़-दौड़ कर आते रे ॥गुरु०॥५६॥

पर द्वेपी जन द्वेष-भाव से, लगे सोचने ऐसा रे।

काम न इनका जमें यहां पर, भाग निकालें वैंसा रे ॥गुरु०॥५७॥

भीमसिंह राणा के सम्मुख, कुछ अगुआ पहुंचाये रे।

मनमानी आते कर उनके, कान बड़े भरपाये रे ॥गुरु०॥५८॥

तेरापधी साधु यहां पर, आकर कुछ ठहराये रे।

दयादान के धौर विरोधी, हा ! हा ! वे कहलाये रे ॥गुरु०॥५९॥

पड़ जाता दुष्काल जहा पर, इनके चरण टिकाते रे।

जन उपयोगी कामों में भी, ये बाधक बन जाते रे ॥गुरु०॥६०॥

बाहर पुर से इन्हें निकालें, तो हो सब कुछ अच्छा रे।

राणा न आदेश दे दिया, न किया चिंतन सच्चा रे ॥गुरु०॥६१॥

हलुकारे ने हुक्म मुनाया, विदा हुए गुरु भारी रे।

हर्षित हुए बहुते प्रतिपक्षी, आवक दुःखित भारी रे ॥गुरु०॥६२॥

करने लगे उपाय विपक्षी, नय-भक्षी बन पाये रे।

अच्छा हो मेवाड देश में भी इनको निकलाये रे ॥गुरु०॥६३॥

चुरा दूसरे का कर के नर, बीज पाप का बोते रे।

आखिर कर्मोदय होने से, अखियां भर भर रोते रे ॥गुरु०॥६४॥

फैली मरी शहर में सारे, प्रकृति कुपित हो पाई रे।

हुए काम कवलित उससे बहु, पुर के लोग लुगाई रे ॥गुरु०॥६५॥

राजबुमार पाटवी नप का, फिर आमाता गाया रे।

परभव अधिक बने हैं दोनों, हाहाकार मचाया रे ॥गुरु०॥६६॥

केशरजी भडारी आवक, गुप्त रूप जो पक्के रे।

तत्क्षण मिलकर राणाजी से, बदले रय के चक्के रे ॥गुरु०॥६७॥

यह क्या मूसा है अनवृक्षा काम नाथ ! कर पाये रे।

लोगों के कहने से मुनियों को पुर से निकलाये रे ॥६८॥

मन न जीतमलजो का जिसमे, आये करके दीर्घ विहार।  
 'क्या आचार्य हो गया है यह' करना जैसा निजी विचार" ॥६२॥

सप—सप से बड़कर\*\*\*

भूल का देते उलहना क्यों न हो वे प्रमुग्न जो।  
 सप से बाहर गिना दो थावको को विमुग्न जो।  
 मूझ है गुरु की बड़ा अनवूझ नर मुरझा रहा" ॥६३॥

रामायण-छन्द

गुरु की दृष्टि बिना लावा में रह पाये मुनि मोजीराम।  
 कडा उठाया कदम पूज्य ने, जमा विनय से अच्छा काम"।  
 ग्राम ईडवा में गणपति ने किंचित् श्रुति पर गौर किया।  
 उपालभ ऋषिराय प्रवर को प्रवचन करते समय दिया" ॥६४॥

गीतक-छन्द

पूज्य रखते पुस्तकों को बड़ी ही सभाल से।  
 सूत्र 'वाई मूजरी' को दियाये बड़ु साग से।  
 व्यवस्थित अति देख खुश हो कह रही गुरुराज से।  
 प्रतिहारिक दत्त प्रतिमा दू समूची आज से" ॥६५॥

दोहा

होने से वार्धक्य वय, करते अल्प विहार।  
 साल सततर में किया, पावस श्रीजीद्वार ॥६६॥  
 स्पर्श काकडोली प्रमुग्न, आये राजसमंद।  
 मुनि थमणी भेता लगा, उमड़ गया जनवृंद ॥६७॥  
 मर घरणी में गमन का, था पहले सुविचार।  
 होने से अस्वस्थता, उधर नहुआ विहार ॥६८॥  
 भावी सध-प्रवध हित, समय देख उत्कर्ष।  
 सत सतयुगी हेम से, किया विचार विमर्ष ॥६९॥  
 युवाचार्य पद पत्र में, लिखे प्रथम दो नाम।  
 मुन जय मुनि की प्रार्थना, रचा एक अभिराम" ॥१००॥  
 मर्यादा आचार्य की, आचार्यों के हाथ।  
 मुख से भारीमाल ने, बही मर्म की दात" ॥१०१॥

सप—सत्य से बढ़कर...

संघ की संभाल की गणपाल ने बहु साल तक ।  
विचर कर अध्यात्म की पुर-पुर जलाई ली अलख ।  
की गुरु संलेखना जब देह बल घटता रहा" ॥१०२॥

दोहा

अन्तिम पावस पूज्य ने, किया केनवा ग्राम ।  
अन्तेवासी आठ थे, सेवा में निष्काम" ॥१०३॥  
गुरु तन में अस्वस्थता, पर मन स्वस्थ सदैव ।  
चतुर्मास के बाद भी, रहे वहा गुरुदेव ॥१०४॥  
मुनि धर्मणी गण मिल गया, नया खिल गया रंग ।  
फो गुरु ने आम्बोचना, रामायाचना मग ॥१०५॥  
शिक्षा देते आग्रंवर, एक प्रहर अन्दाज ।  
दत्तचित्त हो ध्यान में, मुनना शिष्य समाज" ॥१०६॥

रामायण-छन्द

फाटगुन से लेकर मृगसर तक रहे केनवा में गणिवर ।  
फिर भी शान्त नही बीमारो तब आये हैं राजनगर ।  
नाभ हुआ औषध-मेघन में और चट्टी रवि भोजन की ।  
लेकिन कूर 'काल उबर' आया जिमने स्थिति विगड़ी तन की ॥१०७॥  
शान्त बीमने की ज रही है फिर भी भारपेत प्रभुवर ।  
सागारों अनशन मुनियों ने करवाया है पृच्छा कर ।  
प्रातः लिया सठ जन थोड़ा बैठे जानन पर सुखनय ।  
चारतीर्थ सम्मुख सेवा में आया है मध्याह्न समय ॥१०८॥  
मालव से चल सतिया जार्द नार्द कपडा कादज माथ ।  
भेंट किये गणपति चरणों में देख रहे धृति मुन यगनाथ ।  
इनमें में तो रवि बदली है करवाया अनशन अरिजन ।  
मन नउनुगी ऋषिरायादिर मगे मुनाने पद मनन ॥१०९॥

दोहा

माय कृप्य निधि अष्टमी, नदर ममर घाट ।  
अनशन में नव प्रहर थे, ली गुरुपुर की बाट" ॥११०॥

रात-रात में निरुद्ध के, मिले हजारों धात ।  
 मडी पर मडी चढी, हुई अनोग्री बात ॥१११॥  
 फोडा दरवाजा त्वरित, आगे चला विमान ।  
 'धोईन्दा' चर भूमि में, चुना यथेष्टित स्थान ॥११२॥  
 किया देह सस्कार मिल, जन ने हाथोहाथ ।  
 ग्यारह सौ रुपये लगे, व्यय में 'राणा' साथ ॥११३॥  
 भारी गुरु के समय में, मुनिवर तो अडतीम ।  
 साध्विया दीक्षित हुई, चतुराधिक चालीस ॥११४॥  
 पच तीस निग्रय वर, सतियां दो चालीस ।  
 छोड़ चले हैं सध में, भारीमाल गणीश ॥११५॥  
 गृहि वय में दश हयन तक, साधु वेप में चार ।  
 पन्द्रह, अट्ठाईश तक, मुनि पद, युवगद धार ॥११६॥  
 वर्ष अठारह तक रहे, धर्माचार्य प्रशस्त ।  
 पत्तर सत्तर पाच का, था आयुष्य समस्त ॥११७॥

### मनोहर-धन्व

पाली और नाथद्वारा तीन तीन चातुर्मास,  
 केलवा में किये हैं दो, परम प्रमोद में ।  
 खेरवा, माधोपुर, आमेट, पुर, पीसांगण,  
 एक-एक बार सीचा सुधारस पीध में ।  
 मालोतरा, जयपुर, बोराधड़, काकडोली,  
 एक-एक बार लिखे वर्षावास नौध में ।  
 अष्टादश पावस यां तेरह ग्रामों में किये,  
 भारीमाल गणेश ने आनन्द विनोद में ॥११८॥

### दोहा

युग में भारीमाल के, बड़ी सध की श्रद्धि ।  
 हुई विविध उपलब्धिया, आई करतल सिद्धि ॥११९॥  
 रचा महामुनि हेम ने, 'भारीमाल-चरित्र' ।  
 पढ़ी मुनो उपयोग से, जीवन करो पवित्र ॥१२०॥

१. भारीमानजी स्वामी मेवाड़ प्रदेश में बड़ा 'मूहा' (भीमवाड़ा के नाम) नामक ग्राम के थे। उनकी जाति भीमवाल और गोबरी लोहा था। पिता विमलोजी और माता धारणी देवी थी।

(हैम मुनि रचित—भारीमान चरित्र का० १ भा० १ में १ तथा का० १३ भा० १ के आधार में)

उनका जन्म मधु १८०४ में हुआ, ऐसा जगन्नाथ विरविन्दविशु गुण वर्णन का० १८ भा० २ में उल्लेख है—

उत्पन्न बड़ाई जोके मये है, काँह भारीमान उत्पन्न।'

शासन प्रभावक का० ४ भा० २ में जन्म मधु १८०३ निम्ना है परन्तु उपर्युक्त मूलग्रन्थ काय के उल्लेख को प्रमाणित माना है।

२. भारीमानजी स्वामी ने हम वर्ष की कुमारावस्था में पिता विमलोजी के साथ स्थानस्वामी संप्रदाय में स्वामीजी के हाथ में म० १८१३ 'बागीर' में बट बूझ के लीचे दीक्षा स्वीकार की।

शासन प्रभावक—भारी० मग वर्णन का० ४ भा० १, ६ में उल्लेख है कि आचार्य रघुनाथजी ने विमलोजी एवं भारीमानजी को दीक्षित किया। अविनयत शिष्य बनने की परम्परा होने से स्वामी भीषणजी को शिष्य रूप में स्वीकार दिया।

हम प्रकार शासन प्रभावक में मुनि भारीमानजी को आचार्य रघुनाथजी द्वारा दीक्षित करने का एक उपर्युक्त विशु यज्ञ रमायण में स्वामीजी द्वारा दीक्षा

१. भग्य स्थानी में 'मूहा' और मधुवा मुखज का० २० दो० ६ में बड़ा मूहा उल्लेख है—

'निहाँ की बड़े मूहें आदिवा, भारीमान रे ग्राम।'

२ भारीमानजी स्वामी की दीक्षा निम्न प्राप्ति नहीं है परन्तु हम वर्ष स्वामीजी का आनुर्भास बागीर में होने में बहुत शक्य है कि दीक्षा आनुर्भास समाप्त होने पर मगध के प्रारम्भिक दिनों में हुई, क्योंकि उस समय मेवाड़ में आनुर्भास के समय दीक्षा न देने की तथा दीक्षा देते ही बिहार करने की परम्परा थी। उनके दीक्षा सच में लिखा है—

मुने समाधि मोटा हुआ कुछ अकल गुण खान।

हमवाँ घरम रे आगरे, भीष्म गुन भिन्ना आन ॥

बागीर सहृद विद्य मू करी, बाप बेटो निजवार।

बट विरघ रतियामणो, लोछी सजम भार ॥

(भारीमान चरित्र का० १ भा० ४, ५)

शिष्य शिष्य भारीमान, दीक्षा दी निज हाथ।

(शिष्य जग रमायण का० २ भा० ५)

देने का उत्प्रेषण है। (दीक्षा दी नित्र हाथ)

दोनों में जयाचार्य द्वारा रचित—भिन्नु यज्ञ रगायण का प्रमाण प्राचीन हो  
से अधिक सगत सगता है।

३ भारीमालजी स्वामी ने स्थानकवासी मप्रदाय में पूषक् होने के परव  
जय नई दीक्षा लेने का विचार किया तब भारीमालजी स्वामी के पिता  
साधुओं के सिंघाटे में विहार करते थे। स्वामीजी के अलग होने का समाचार  
सुनकर वे जब स्वामीजी जोधपुर में बीनाडा<sup>१</sup> पधारे तब वहा आए।

किसानोजी प्रकृति के बड़े उग्र और रम-सोनूप थे। मरम और नीरम भाव  
में समभाव रखना तो दूर रहा पर कमी-कमी उनके लिए अपने साधियों ने कत  
भी कर लेते थे। इसलिए स्वामीजी उन्हें अपने साथ रखना नहीं चाहते थे।  
बात का जिक्र करते हुए स्वामीजी ने शिष्य भारीमालजी से कहा—'तुम्हारे  
पिता समय पालन के योग्य नहीं है अब मैं उसे साथ रखना उचित नहीं समझता  
तुम कहा रहना चाहते हो यह अपनी इच्छानुसार मोष लो।

भारीमालजी स्वामी ने दुइता के स्वर में कहा—'उनके विषय में जैसा अ  
टोक समझें बैठा करें, किन्तु मेरा तो आप के साथ ही रहने का विचार है।'

स्वामीजी ने किसनोजी को बुलाया और अपने विचार बतलाने हुए कहा—  
'अब हम शुद्ध मार्ग अपनाने के लिए कटिबद्ध हुए हैं, परन्तु इस समय विरो  
धियों में जो स्थिति उत्पन्न कर दी है उसे देखते हुए सगता है कि पद-पद  
अनेक बाधाएं आएंगी। तुम्हारी प्रकृति बहुत कठोर है। तुम उस विकट परिस्थि  
में अपने को नियंत्रित रख सकोगे, ऐसा मुझे विश्वास नहीं है, इसलिए मैं तुम  
अपने साथ रखने में असमर्थ हूँ।'

१. विचरत-विचरत आविषा आविषा, भीमोडा सेठर मगार।

(भारीमाल चरित्र का. १ भा. १)

यहां 'भीमोडा' में 'भीमवाडा' नाम का भी ग्राम हो सकता है, पर  
भीमवाडा (मेवाड़) न होकर 'बीमाडा' (मारवाड़) ही हो सकता है, क्योंकि  
यह पटना स्थानकवासी मप्रदाय में पूषक् होने के परवाना और नई दीक्षा ले  
ने पूर्व की है। उस समय के बीच स्वामीजी भीमवाडा पधारे ही नहीं थे, बल्कि  
मुनिनिष्ठ हैं।

उस समय के विद्वान् क्षेत्रों के जो नाम उल्लेख होते हैं उनके अनुसार  
स्वामीजी बगही में बरगु (भिन्नु यज्ञ रगायण), वडा में जोधपुर (प्राय  
गिरधरजी का बाप), वडा में 'बीनाडा' (भारीमाल चरित्र, भिन्नु दृष्टान्त  
और फिर वडा में बीना के गांवों में होने हुए आनुमति के लिए केवल  
पधार का। इस विचार तब से स्पष्ट है कि उत्प्रेषण क्षेत्र विमाडा ही था।

किसनोजी तत्काल झुड़ होकर बोले—'आप मुझे साथ में नहीं रखेंगे तो भारीमाल भी यहाँ नहीं रह सकेगा। मैं इसे अपने साथ ले जाऊँगा।' स्वामीजी बोले—'यदि यह जाना चाहे तो तुम उसे सहर्ष ले जा सकते हो, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।' तब किसनोजी अधिक आवेश में आ गए और भारीमालजी स्वामी को वनपूर्वक दूसरे स्थान (हाट) में ले गए।

भारीमालजी स्वामी ने इस विषय समस्या को शान्ति पूर्वक सुनसाने का मन ही मन कुछ चिंतन किया और फिर किसनोजी में कहा—'मैं आपके द्वारा साए गए आहार-धानी का यावज्जीवन के लिए परित्याग करता हूँ।' पढ़िए निम्नोक्त पद्य—

अभिग्रह कीयो इण रीत सु, भारीमाल करी भारी।

दोप दिन आखा निकल्या, अन्न रह्या भुणघारी॥

(भारीमाल चरित्र ढा० १ गा० १०)

भारीमाल पिता ने भाखें, किसनजी री काण नहीं राखें।

धारा हाथ तणों अन्न पाण, म्हारे जावजीव पचखाण॥

भारीमाल अभिग्रह कियो भारी, दिन दोप नितरिया तिकारी।

रह्या सुर्गिर जेम सघोर, हलुर्मी अमोलक हीरा॥

(भिक्षु जल रसायण ढा० ९ गा० ११, १२)

भिक्षु दृष्टान्त २०२ में दो दिन निराहार रहने के पश्चात् तीसरे दिन उक्त प्रत्याख्यान करने का उत्तेज है—'तीसरे दिन आगे बसी घणी मनुहार करवा लागो, जब भारमलजी स्वामी बोल्वा—धारा हाथ री आहार करवा रा जावजीव रपाण है।'।

पर उपर्युक्त पहले दिन प्रत्याख्यान करने का अभिमत अधिक सगत लगता है।

दो दिन बीत जाने के बाद तीसरे दिन पुत्र के सहाग्रह के सामने पिता को झुकना पड़ा और वे स्वामीजी के पास आकर बोले—'इसका मन आपके साथ ही रहने का है अग आप इसे रखिए और पारणा करवाइए। जब तक आप नहीं दीक्षा न लें तब तक मेरी भी व्यवस्था कर दीजिए। जयाचार्य ने इस सन्ध में लिखा है—

तब बाप धको तिणवार, भिक्षु ने आप सुप्या उदार।

पा मूर्ख गजी छँ एह, म्हां सु तो नहीं मूल सनेह।

इण ने आहार पाणी आप दीर्घ, रुडा जल करी राखीर्ष।

म्हारी पण गति नाइक कीर्ष, किण ही ठिराजे मोर्ष मेभीर्ष॥

(भिक्षु जल रसायण ढा० ६ गा० १२, १४)

मुनि भारीमालजी की उस दृढ़ता से स्वामीजी अत्यंत प्रभावित हुए। अपने

प्रति उनकी हादिक भविष्य की प्रवृत्ति देखकर तो वे चकित हो गए। उस समय मुनि भारमन्त्री के भी प्रसन्नता का पार नहीं था, परन्तु स्वामीजी भी उन्हें पाकर बहुत प्रसन्न हुए। तबभगवाई दिन की निजंन लग्ना के बाद स्वामीजी ने आहार-गानी मन्त्रांतर उन्हें पारणा करवाया।

इसके बाद स्वामी भीष्मजी ने बड़गु या आम बाग के सिंगी क्षेत्र में जयमन्त्री से मिलकर सिंगनोत्री को गिण्ड कन में मौन दिया। स्वामीजी की बुद्धिमत्ता देखकर जयमन्त्री ने कहा—'भीष्मजी बड़े चतुर व्यक्ति हैं। उन्होंने एक ही काम से तीनों घरों में 'वधामन्त्रा' मानद कर दिया। हमने समझा कि एक चेला मिल गया, किन्तु भीष्मजी ने समझा कि मेरा स्थान जयमन्त्री और स्वामी भीष्मजी ने समझा कि चलो बसा दस गई।' जयाचार्य ने इसका विवरण इस प्रकार किया है—

किन्तु हरद्वी ठिकाने हूँ आयो, यहू रिण हरद्वी चेलो एक पायो।

भीष्म हरद्वी दनिवो ओगावो, सीनू चरा बघावणा म्हातो॥

(भिक्षु जय रमायण का० ६ गा० १७)

भारीमाल चरित्र का० १ गा० ७ से १२ तथा भिक्षु बुद्धान्त २०२ में भी उपर्युक्त घटना का उल्लेख है।

४. अंधेरी ओरी के उपमार्ग की घटना का भिक्षु जय रमायण का० ६ गा० ६ में संकेत तथा स्वामीजी की कथान में संक्षिप्त वर्णन मिलता है। विस्तृत विवरण पढ़िए पूर्वोक्त स्वामीजी के प्रकरण में।

स्वामीजी आपाठ मुक्ता १३ की बेलवा पधारे थे' अतः यह घटना उसी रात्रि की प्रतीत होती है।

५. भारीमालजी स्वामी बड़े दिनभर और कोमल प्रकृति के थे। वे निरन्तर स्वामीजी की सेवा में इस प्रकार लगे रहते कि मानों भगवान् के घरणों में प्रसन्न ही सम्पन्न हो गया हो। सोच स्वामीजी और भारीमालजी की तुलना भगवान् महावीर और गौतम स्वामी में किया करते।

जयाचार्य ने भी अनेक स्थलों में स्वामीजी और भारीमालजी स्वामी की वीर-भौतम की उपमा दी है—

मुनिन्द्र मोरा ! भिक्षु ने भारीमाल, वीर गोवम सी जोड़ी रे स्वामी मोरा।

(भिक्षु गुण वर्णन का० २४ गा० १)

ऐसी कीर्ति भौतकी, जैसी भिक्षु भारीमालो ए।

(भिक्षु जय रमायण का० २४ गा० १२)

१. गंगा सापोष के विरघोबन्दजी कोटारी के पास एक प्राचीन चोपटी में लिखा

मुनि भी हेमराजजी ने भी भारीमान चरित्त डा० २ गा० १ मंगला ही लिया है—

गुरु भीगू रित्त मिमिना भारी, भारीमान येना दृष्टा गुणकारी ।

घोर योगम ज्यु ओरी बघापी, भारीमान भयो भविष्य प्राणी ॥

६. मुनि भारपनजी आचार्य भिछू के मिद्वेदन में आचार्यन करने मने । उन्होंने आचार्य, दत्तचरानिच, उत्तराध्ययन आदि गुरु तथा स्वामीजी द्वारा रचित बहुत सी कृतियाँ बटख की । आगमों का बार-बार वाचन करने में उनकी धारणा लक्षित गहनत्व का है । उसका ज्ञान गुरु मन होने में तथा उनकी स्मृति की प्रबलता से अद्वयन निर्वचन था ।

(वसन्त)

७ भारीमानजी स्वामी बनने बटख ज्ञान को स्थायी रखने के लिए स्वाध्याय बहुत किया करते थे । स्वाध्यायका में जब उन्होंने उत्तराध्ययन गुरु बटख किया था तब उसे दोहराने समय उन्हें कभी-कभी नींद आने लग जाती ।

एक बार स्वामीजी ने उनको खड़े-खड़े विचारने के लिए आदेश दिया । भारीमानजी स्वामी में उसे निरोधायं करने हुए निर्देश दिया—'बडाचिन् खड़े-खड़े विचारने समय नींद आने से गिर जाऊ तो ?' स्वामीजी ने कहा—'भीन को पूरकर बोलने में लड़ा हो जाया कर, जिससे उपाश बकान भी न आएगी और गिरने की आशंका भी नहीं रहेगी, उन्होंने संभा ही करमा प्रारम्भ किया और अनेक बार पूर्ण उत्तराध्ययन का खड़े होकर स्वाध्याय किया ।'

(दृष्टांत १५२)

८. भारीमानजी स्वामी का एक चातुर्मास स्वामीजी से पृथक् हुआ । स्वामीजी का स० १५२४ का चातुर्मास कटानिया में और भारीमानजी स्वामी का बगडी में था । कहा जाता है कि बुधवार होने के कारण उन्हें वही रचना पडा । स्वामीजी निर्वाण तिथि के अनुसार चातुर्मास करने के लिए कटानिया पधार गये । भारीमानजी स्वामी को कुछ माधुजी के साथ बगडी में छोड़ गये और कह गये कि बुधवार उतरने के बाद कटानिया आ जाना । बगडी से कटानिया सात मील की दूरी पर स्थित है परन्तु दोनों के बीच एक नदी पडती है । स्वामीजी कटानिया पधारे तब तो वह सूखी थी और कुछ ही दिन बाद वर्षा हो जाने से उसमें पानी भर आया । एक से दूसरी तरफ जाने का रास्ता रुक गया । अतः भारीमानजी स्वामी को वह चातुर्मास स्वामीजी से पृथक् करना पडा ।

१. उत्तराध्ययन रा छत्तीस अध्ययन ए, उभां बका गुणं श्रमभेज ए ।

बार अनेक दयाल ए ।

(भारी० गुण० वर्णन डा० ६ गा० ३)

कुछ समय पश्चात् जब नदी का वेग कम पड़ गया और मोटा-मोटा गरी बहा रहा गया तब मुक्त-गिर्य का विचार हो गया। एक तरफ स्वामीजी और एक तरफ भारीमालजी स्वामी प्यारा जाते। परस्पर मधुर-मधुर वार्ता-प्रवाचन। स्वामीजी उन्हीं शोध-भास में गारवमिनि निशा देते। भारीमालजी स्वामी उमें बड़ी मन्त्रणा में दृढ़ता करते। फिर पापम आने-आने स्वामी पर पड़ार जाते। उस समय मुक्त के बाग-य और गिर्य की भविष्य का जो विन प्रवृत्ति होता वह रोमांचित करने वाला था।

(भिक्षु दृष्टान्त २३२)

६ भारीमालजी स्वामी की जब बाग-यारणा थी मत्र एक बार स्वामीजी ने कहा—‘भारीमाल ! अगर कोई मुद्दय मुद्दारी गलती (ईर्ष्या ममिति की) निशाने तो मुझे दृढ़ स्थिर एक तेजा (नीत दिन का उत्साह) करना पड़ेगा।’

भारीमालजी स्वामी ने कहा—‘कोई व्यक्ति द्वेषवत् झूठ-झूठ गलती बनाने तो?’

स्वामीजी बोले—‘यदि मुद्दारी गलती हो तो उसके प्रायश्चित्त रूप में मुझे तेला करना और कोई झूठ हो गलती निशाने तो पूर्व कर्मों का उदय ममत्त कर तेला करना, किन्तु तेजा तो करना ही है।’

भारीमालजी स्वामी ने बिना किसी तर्क-विमर्श के उस आज्ञा को गिरोधार्य किया। यह उनकी अगाधारण विनीतता थी। उनकी भावधामी इतनी थी कि जीवन भर में गलती निवासने का अवसर ही उन्होंने नहीं आने दिया।

(भिक्षु दृष्टान्त १८१)

१०. बाल्यावस्था में भारीमालजी स्वामी लेखन करने समय बार-बार स्वामीजी ने लेखिनी बनवाने से। एक दिन जब वे लेखिनी करवाने के लिए स्वामीजी के पास आये तब उन्होंने कहा—‘मुझे मुद्दारी लेखिनी बनाने का त्याग—(एक लेखन काटवा रा त्याग) है।’

तब वे भारीमालजी स्वामी स्वयं लेखिनी बनाना सोच गये और प्रयत्न करने-करने उस कला में निपुण बन गये।

१. उक्त दृष्टान्त में चूड़िमान के लिए तंजे के दृढ़ का विधान है परन्तु अनुवृत्ति में प्रमिष्ठ है कि वह ईर्ष्या-ममिति की गलती के लिए था।

दृष्टान्त की अन्तिम पंक्ति—‘इसा बनीत उत्तम पुरुष हूँ मैं धूर्वणो बड़ावैहीज विष लेम’ में ध्वनित होता है कि उन्हें एक भी तेला करना नहीं पड़ा। किन्तु ऐसी भी अनुवृत्ति है कि किसी ईर्षी व्यक्ति द्वारा मिथ्या गलती निकालने पर उन्हें एक तेला करना पड़ा था।

स्वामीजी का दृष्टिकोण उन्हें हर कार्य में स्वायत्तता तथा हर कला में कुशल बनाने का था।

(भिक्षु दृष्टान्त २००)

११. भारीमानजी स्वामी ने स्वामीग गुरु की एक प्रति मिश्रकर स्वामीजी के चरणों में प्रस्तुत की। स्वामीजी ने कहा—'एक प्रति फिर मिश्रो।' भारीमानजी स्वामी ने पूछा—'क्यों?' स्वामीजी बोले—'यदि मैं भक्षण और तुम भक्षण विहरण करो तो एक मेरे लिए और एक मुझारे लिए चाहिए।' मुनि भारीमानजी ने स्वामीजी के आदेश की सम्मान स्वीकार किया।

(श्रुतानुश्रुत)

१२. भारीमानजी स्वामी कुशल लिपिकर्ता थे। उन्होंने प्रायः दस पुस्तकों की प्रतिलिपि की। एक-एक पुस्तक में लगभग पांच सौ पन्ने और एक-एक पत्र में लगभग सौ से अधिक शायद होनी हैं। इस तरह उन्होंने प्रायः पांच लाख श्लोकों की प्रतिलिपि की। आज भी उनकी हस्त-लिपि की अनेक पुस्तकें सभ में सुरक्षित हैं।

उन्होंने स्वामीजी द्वारा रचित प्रायः सभी ग्रंथों की प्रतिलिपि की थी। आज उनकी ये प्रतियाँ स्वामीजी के ग्रन्थों की प्रामाणिक प्रतियों के रूप में बहुत ही महत्वपूर्ण हो गयी हैं।

१३. भारीमानजी स्वामी ने मुनि हेमराजजी को अपने पूर्व सस्मरण सुनाते हुए एक बार बतलाया कि पहले कुछ वर्षों तक तो हमारे पास व्याख्यानादिक प्रतियों का इतना अभाव था कि हम अजना तथा देवकी के व्याख्यान को वास्तुमात्र में तीन-तीन बार तक बाँचते।

(भिक्षु दृष्टान्त २७४)

१४. राजस्थान में प्रायः बालकों के कान विधाये जाते हैं। भारीमानजी स्वामी के कान विधाये हुए नहीं थे। उनके आचार्य बनने के बाद किसी भाई ने उनके कान अनवीधे देखे तो पूछ लिया कि आपके कान क्यों नहीं बीधे गये? इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—'कान विधाने का एक छोटा-सा उल्लेख मनाया जाता है, उस समय अपने परिवार के व्यक्तियों को भोजन कराया जाता है या गुड़ आदि दिया जाता है। मेरे घर की स्थिति दलदा व्यय करने की नहीं थी। इसलिए मेरे कान अनवीधे ही रह गये।' महज सरलता से कही गयी यथार्थ बात को सुनकर वह व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुआ।

(श्रुतानुश्रुत)

१५. गण से बहिर्भूत मुनि चन्द्रमानजी, तिलोत्तमजी ने बरू में स्वामीजी के साथ सतीशचन्द्रजी, शिवरामजी को फटा लिया। उन्हें समझाने के लिए

विधियों के संचालन में सहायक बने रहे। उनमें से युवाधार्मिक पद के अठारह वर्षों से और भी अनुभवदायक रहे। इससे सभ को वे एक अनुभवी शासक के रूप में प्राप्त हुए। उनका शासनवास जमा हुआ और उत्तरोत्तर विक्रमशील रहा।

उनके आचार्य बंद पर नियुक्त होने के समय सभ में २१ साधु और २७ साध्वियाँ थीं।

(द्वारा)

२०. आचार्य श्री भारीमालजी की व्याख्यान जैनी आकर्षक और आवाज सुन्दर थी। शब्दों का धीरे-धीरे तरीका गुजरा था।

उनका व्याख्यान सुनने के लिए आसपास के तैरापथी भाई तथा अन्य सभी लोग भी आते। व्याख्यान सुनकर अत्यधिक प्रभावित होते और आचार्य प्रवर की मुक्त कठो से स्तवना करते।

(द्वारा)

२१. मूर्ति-पूजा और स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधु आचार्य श्री के पास प्रायश्चित्त लेने के लिए अनेक बार आते। उनकी गंभीरता आदि गुणों से बहुत आकृष्ट होते।

(द्वारा)

२२. आचार्य श्री भारीमालजी भाई-बहनों को तत्त्वज्ञान सीखने के लिए विशेष प्रेरणा दिया करते थे। छोटे बालक और बालिकाओं को तत्त्वज्ञान सिखाने के लिए तो वे बहुत प्रयत्न किया करते थे। बालिकाओं को तो वे इन कामों में प्राथमिकता देते थे।

एक बार किसी व्यक्ति ने भारीमालजी स्वामी से पूछा—‘आप छोटी-छोटी बालिकाओं को तत्त्वज्ञान कराने पर इतना बल देते हैं, इसमें क्या लाभ है?’ आचार्य प्रवर ने अपना दृष्टिकोण बतलाते हुए कहा—‘बालक अपने ही घर में रहता है, किन्तु बालिका बड़ी होने पर दूसरे के घर में जाती है। बालक को तत्त्वज्ञान फैलाने का जितना श्रेष्ठ मिलता है, उससे बड़ी अधिक बालिकाओं के तत्त्वज्ञान को मिलता है। बालिकाओं में यदि सम्कार सुदृढ़ रहे तो आगे चलकर वे ही आविर्भाव होकर समुदाय तथा धर्म में अनेक व्यक्तियों को समझा सकेंगी। उनके बेटे-बेटी, बहू, दोहिनी आदि भी धर्म के अनुकूल बनेंगी। इसलिए बालिकाओं को विशेष प्रेरित किया जाता है।’

इस उत्तर में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि धर्म प्रचार करने की उनकी स्त्रिणी उत्कट भावना रहती थी।

(हेम दुष्टान्त ३२)

२३. वि० सं० १८६६ (आवणादि क्रम से १८६८) के बीसाछ महीने में आचार्य श्री भारीमालजी दस साधुओं में किसनगढ़ पधारे। वहाँ नये शहर में टहरे। वगीची के सार्वजनिक स्थान में स्वानवधामी साधु नानकजी, उगराजी तथा अमरविहारी की सम्प्रदाय के ३५ साधु भर्चा करने के लिए आये। भारीमालजी स्वामी ॥ साधुओं से वहाँ पधारे। संकटों की सट्टा में जनता भी भर्चा-स्वयं पर पहुँच गई। भर्चा का विषय था—'आश्रय जीव है या अजीव।'।

मानकजी के टोले के निहालजी नामक साधु बोले—आश्रय अजीव है। भारीमालजी स्वामी ने कहा—'आश्रय के द्वारा कर्मों का ग्रहण होता है और कर्मों का ग्रहण जीव हो करता है, अजीव कर्मों का ग्रहण नहीं कर सकता, अतः आश्रय जीव है। फिर आप ही यन्त्राद्वये किं गृह्यते पहले आश्रयी (आश्रय युक्त) होता है, बाद में जब वह साधु बनता है तब सवरी (सर्वर युक्त) बन जाता है, तो क्या वह आश्रयी-अजीव का सवरी जीव बन गया? तथा जब कोई सवरी साधु वापस गृहस्थ बन जाता है तब क्या वह सवरी जीव का आश्रयी अजीव हो गया?' इत्यादि भर्चा प्रसंग चलता। वे मही अबाध नहीं दे सके तब विनयी लोगोंने (जिनमें महेन्द्राजी प्रमुख रूप में थे) ने पंच महाभय (पंजीनी) की प्रयोगजन देवद जीव में ही हस्ता मत्ता दिया। भारीमालजी न बड़ी भाँति रयी। जिनकी शहर में अच्छी प्रतिष्ठा हुई।

मुनिधी बेगमीजी, हेमराजजी और रायचंदजी आचार्य श्री से आज्ञा लेकर शहर में विद्या देने के लिए गए। राम्ने में स्वामीय यति जिनका गुरुत्व में एक काष्ठान की भेजकर मुनियों को अवन उपाधय में बुलाया। मुनि बन बरा पहुँचे

१. गंगा गुणनरे मात, वेगमात्र विद विचार।

जब बन्धा माटी पुन पुन नू ए ॥

(आवक महेन्द्रजी कृत-पुस्तकी क्र० १ पृ० १)

२. महेन्द्राजी सं० १८६६ के किसनगढ़ का मुनिधाय म मुनि श्री हेमराजजी के पास गंगावर मेरायदी बने। अन्ती ८२ वंशित लोडिका से उक्त विषय पर लिखनी करने हुए लिखा है—

मैंने दीपा का बहिनी उनी गोप्य, वे दीपो से हाव यथाय।

पुन से पुन मेरायदी सारी ॥

उदा मो होव चुकी उई बर, परे काव निरालो काये गन।

अरु अरु मी अरु रा ए।

जानु कनी में दीपो उदा काव(कृ), उर विर विर केरी क माय।

कृम दगाव पुन काव न ए ॥

(आवक महेन्द्रजी कृत-पुस्तकी क्र० १ पृ० ४ पृ० ४)



उर्वं गुरु म्हांरा हो उर्वं गुरु म्हांरा, ये करत्यो नी पांहरा ।  
 पाहने छोटे भारग मानू नहीं, म्हारी राखो इति परकीन ॥  
 सीया वरत चोछा पासस्थो, तो ये जात्यो जमारो जीत ।  
 आपे नाता अनता आने किया, बने भोग्या अनोखा ही भोग ॥  
 पुण्य तणा परजोग थी, अबके मिलियो छै एह सजोग ।  
 समन अठारे सिततरे, महा सुद सातम नुषवार ॥  
 उददेश दियो रुडी रोन मू, सेज्यां चित्त माहे अनुर विचार ।  
 उर्वं गुरु म्हांरा हो उर्वं गुरु म्हांरा, ये करत्यो नी पांहरा ॥'

(श्रावक महेशजी कृत—पूजगुणी डा० ३ गा० ३४ से ३६)

समझने के बाद उनकी पत्नी आजीवन उनकी धर्म-यगिनी बनकर रही ।

आजकल यहनों की रग-रगोभो टोलियां जब गुरु-दर्शन के लिए आती हैं तब दिहाड़ा पाती हैं—

आज की दिहाहो जी भलाई मूरज ऊगीयो, भेट्या निज गुरुदेव ।

हरय हीया में जी उमाओ मोरा भव में, करु म्हांरा सामीजी री सेव ॥

इत्यादिक...

श्रावक महेशजी कृत पूजगुणी डा० २ गा० १)

वह श्रावक महेशदासजी का ही बनाया हुआ है । उनमें ऐसे भाव भरे हैं कि आज सैकड़ों वर्ष होने पर भी सबको अधिप्राप्तिक त्रिप लयता है ।

महेशदासजी ने भुनिधी हेमराजजी के प्रति अपनी इज्जती में भुरि-भुरि इज्जत आभ्यस्त की है तथा अपने द्वारा बिने गण-अनुचित वृत्त के लिए विनम्र शया-शयना की है ।

२४. म० १८३५ पानी में भारीमानजी स्वामी और गेलसीजी स्वामी जोधपुरिया बाग में गोचरी पधारे । वही स्थान स्वामी साधु दीक्षमजी भी आने । लोभो ने कहा—'आप दोनों परस्पर खर्चा करें । तब भारीमानजी स्वामी ने दीक्षमजी से पूछा—'आप निजगिद्ध' सेने हैं, उममें दोय समझते हैं या नहीं जबकि आगम में तो उक्त निषेध किया है ।' दीक्षमजी बोले—'हम कानने योग्य धोवन हेमरा सेने हैं उममें दोय नहीं मानने ।' भारीमानजी स्वामी ने कहा—'धोवन के अतिरिक्त पानी तथा बिहार करते समय आहार आदि भी खप सेते हैं, तो फिर केवन धोवन का नाम क्यों सेते हैं ? उन्होंने न तो उक्त धान की स्वीकार किया और न उपचार्य जवाब दिया । भारीमानजी स्वामी ने स्थान पर आकर म्हांरा खर्चा-प्रसाद स्वामीजी को मुनाया ।

(हेम दृष्टान्त २८)

१. एक घर में एक मानिक का हरेका आहारार्थिक सेवा निर्धारित करवाया है । रोज आदिब कारण के बिना वह सेवा सटोर माना गया है ।

२६. एक बार स्थानकवासी साधु तथा उनके श्रावक बोले—‘भीष्मजी ने अपनी वृत्ति में कहा है कि भरत क्षेत्र में साधुओं का विरह निरन्तर नहीं पड़ा—‘निरन्तर नहीं इकबीस’ हजार।’ परन्तु मूल में छेदोपस्थानीय चारित्र का विरह कम-से-कम ६३ हजार वर्ष का और अधिक-से-अधिक १८ कोड़ानोड सागर का बतलाया है, अतः भरत क्षेत्र में अल्पकाल का विरह कैसे सम्भव हो सकता है?

मुनिश्री हेमराजजी ने उक्त प्रश्न का जवाब दे दिया। फिर भी विशेष जानकारी के लिए स्थान पर आकर आचार्यश्री भारीमासजी से पूछा तब उन्होंने कहा—‘आगम में जो छेदोपस्थानीय चारित्र का कम-से-कम ६३ हजार वर्ष का विरह कहा है, वह अढ़ाई द्वीप के अन्तर्गत ५ भरत, ५ ऐरावत—इन दस क्षेत्रों की अपेक्षा से है, केवल इस भरत की अपेक्षा से नहीं। इसलिए यहाँ भरत क्षेत्र में अल्प समय के लिए विरह होना असम्भव नहीं है। स्वामीजी का कथन इसी दृष्टि में है। प्रत्येक विषय को अपेक्षा एवं म्याय-युक्ति से समझना चाहिए।

(हेम दृष्टान्त ३१)

२७ स० १८४८ में आचार्य भिक्षु जयपुर पधारे थे। वे वहाँ जीहरी बाजार में काली (काल्या गौत्र विशेष से प्रसिद्ध) की हाटों पर बनी मेड़ियों में बार्दैन दिन दके थे ऐसा कहा जाता है। उस समय सासा हरचन्दजी आदि कई व्यक्ति समझे थे। ऋषिराय मुजरा में इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

भीष्म प्रथम पधारिया, सैतासीसे उतमान।

रात्रि बाबीस रे आसरे, रक्षा मुनि गुणगान॥

हरचन्द सासा आदि दे, अल्प जन समझा जाण।

(ऋषिराय मुजरा डा० ६ दो० ३, ४)

उसके बाद लगभग बीस वर्षों तक तेरापथी साधु-साध्वियों का जयपुर जाता नहीं हुआ। स० १८६८ में जब आचार्यश्री भारीमासजी मारवाड़ में विचर रहे थे तब एक स्थानकवासी साधु ने बातचीत करते हुए कहा—‘आप लोग जयपुर क्यों

- १ पिण में धर्म रहसी जिणराज रो रे,  
थोडो सो आग्या (आगिया) नो चमत्कार रे।  
शबको परे में बले मिट जावसी रे,  
पिण निरन्तर नहीं इकबीस हजार रे॥

(साधवाचार री चौपई डा० ३ मा० ७)

२. ऋषिराय मुजरा डा० ६ दो० ३ में लिखा है कि स्वामीजी अनुमानत स० १८४७ में जयपुर पधारे और वहाँ लगभग बार्दैन रात्रि रहे।

जय छोड़ मुजरा निसाम डा० १ दो० २ में श्री स्वामीजी का स० १८४७ में जयपुर पधारने का उल्लेख है।

नहीं जाने ?

आचार्यजी ने कहा—'वहाँ विशेष तेरापधी थावक नहीं हैं, अतः उधर जाने का अवसर नहीं आया।'

परन्तु स० १८४८ फाल्गुन शुक्ला १५ गुरुवार को मुनि भारीमालजी ने सवाई जयपुर में 'साधु-अणाचारी' की एक ढाल (साध्याचार की चौपई डा० २३ 'तीन बोला करे जीव रे जी') की प्रतिमिति की थी और वे स्वामीजी के साथ थे। इसमें प्रमाणित होगा है कि स्वामीजी स० १८४८ के माघपूर चातुर्मास के पश्चात् फाल्गुन महीने में जयपुर पधारे थे।

म्यानरवासी साधु ने आश्चर्यचकित होकर कहा—'भीखणजी का समझाया हुआ जोहरियों का बाइसाहसो कहा बैठा है, किर और थावक होते क्या देर लगती है? थावक तो कहा जाने से ही बनेंगे। अपने आप चोड़े ही बन जायेंगे।

(श्रुतानुश्रुत)

उनकी प्रेरणा बहुत महत्त्वपूर्ण और सामयिक थी। आचार्यजी के मन में बैठ गई। उन्होंने जयपुर की तरफ बिहार किया। कितनगढ़ होने हुए जयपुर पधारे और वहाँ पचसी बड़वा की जगह में स० १८६६ का चातुर्मास किया। आचार्यजी के अथक प्रयास से अनेक भाई-बहनों ने समझ कर गुद-धारणा की। तब से जयपुर शहर तेरापध का स्थायी क्षेत्र बन गया। इस सदर्भ में पड़िये निम्नोक्त पद्य—

दिवस कितावक तिहा रही, भारीमाल गणधार।

जयपुर सैहर पधारिया, करवा भविक उधार॥

सकत् मठार गुणतरे, गणपति कियो चौमास।

मंठ पदमसी बडा लणी, जायगा ये सुविमास॥

(जय मुञ्ज डा० १ श्लो० १, २)

जन बीहला समग्या तदा, प्रभात रात्रि बखान।

भारीमाल श्रुपिरायजी, बाबै ऊयम आण॥

(श्रुपिराय मुञ्ज डा० ६ श्लो० ५)

भारीमालजी स्वामी शरीर में अण वेदना होने के कारण चातुर्मास के पश्चात् फाल्गुन महीने तक [जयपुर में] विराजे। अनेक साधु-साध्वी गुरु-दर्शनार्थ अभिनित हुए। सरूपचंदजी, जोतमलजी और भीमजी ने अपनी माता कल्बूजी सहित कहा दीक्षा स्वीकार की।

(भारीमाल चरित्र डा० ६ के आधार से)

२८. भारीमालजी स्वामी ने स्वस्थ होने के पश्चात् जयपुर से बिहार किया। अमरा गांधी का स्पर्श करते हुए उन्होंने स० १८७० का चातुर्मास सवाई माघपूर में किया। उस वर्ष आचार्यप्रवर के साथ साध्विया भी थी, ऐसा शासन विलास डा० १ गा० २३ की वार्तिका (मुनि रामजी २३) में उल्लेख मिलता है।

चातुर्मास के पश्चात् आम्रपाम के क्षेत्रों में बिहार कर आचार्यप्रवर पुरः माधोपुर पधारे। वहाँ मुनिश्री वैष्णोरामजी (२८) ७ साधुओं से गुप्त दर्शनार्थ आये। आचार्यश्री भारीमानजी साधु परिवार से उनके मामने पधारे। वहाँ इन्दीग साधु-माधवी एनित हो गये। ऐसा उल्लेख शासन विनास डा० १ गा० २६ की वास्तिका (वैष्णोरामजी) में है।

फिर वहाँ से बिहार कर आचार्यश्री भारीमानजी जयपुर पधारे। वहाँ फिर इन्दीग साधु-माधवी मग्निलित हो गये। आचार्यप्रवर ने साधु-माधवियों के चातुर्मास घोषित कर दिए। जनारामजी स्वामी को जयपुर में छोड़कर स्वयं ने मारवाड़ की तरफ बिहार कर दिया।<sup>१</sup>

स० १८७१ का चातुर्मास आचार्यश्री ने बोरवड में रिया।

२६ भारीमानजी स्वामी के शासनकाल में सभ की अच्छी प्रगति हुई। साधु-माधवियों की वृद्धि के अनिवार्य आवश्यक-आविकाओं की भी बहुत वृद्धि हुई। उन वृद्धि का साधारण अनुमान हम बान से समझा जा सकता है कि जब उन्होंने स० १८७५ का चातुर्मास कावडोली में किया तब लगभग सत्रह सौ पीपल हुए थे—

विषतये वर्षं पूजजी, सैहर बाकरोली सोय।

पोगा सतरोसी रे आसरे, बंराग वधतो ओय ॥

(भारीमान चरित्र डा० ५ पृ० १)

उस समय एक ग्राम में दत्तने पीपल होने का सचमुच ही आवश्यक-आविकाओं की वृद्धि का घोरक था।

१० आवश्यक लोगों के प्रार्थना करने पर स० १८७५ के शीमशान में आचार्यश्री भारीमानजी उदयपुर पधारे। वहाँ बाजार में दुकानों के ऊपर विराजता। रात को नीचे आदगान होता और दिन में धर्म-वर्षाएँ चाली। काफी लोग आने-जान लगे। कुछ व्यक्ति समझकर तेरापभी गये।

परन्तु कुछ विद्वंशी लोग उस महन नहीं कर सके। वे मन-ही-म। पश्वर रचकर मत्ताराणा भीमगिहजी के पास पहुँचे और कहने लगे— आजकल यहाँ

१. इस दर्शन किया श्री पूज ना, भेवा हुआ हो इस ठाणा दलीम।  
 इससे बिहार तियो अच्छी रीत स्पृआगेवाणी हो पूज भारीमानजी जमीन।  
 बनी जयपुर महार में भेगा हुआ स्वामी दीया हो त्या चौमाभा भोनाय।  
 वैष्णोरामजी ने जयपुर राख ने, मुरधर देते हो चान्या मुनिराय॥  
 आचार्यश्री ने मुनि वैष्णोरामजी का स० १८७१ का चातुर्मास जयपुर में परमाया था। वे चातुर्मास के पूर्व चासट पधारे। वहाँ ज्वानक स० १८७७ जेठ मुदि १० को दिवगत हो गये। विस्तृत वर्णन उनके प्रकरण में पढ़ें।

तेरापदी गाधु आये हुए है, ये जहाँ आने है वहाँ दुबारा पद आया है, ये वहाँ को पगद नहीं करते आगे उगे चोक देने है। दया के चोर बिरौधी है दान का भी विधि करने है आदि-आदि। अतः उन्हे कहर में निरुपेक्षा दिया जाए तो सब कुछ हीन हो जायेगा।

महाराणा के इनकी दान पर विचारण कर दिया और दाना मोक्ष-ममता हलकारे को भेजकर आचार्यजी भारीमातृजी को कहर में रहने की मना कर दी।

भारीमातृजी स्वामी ने नृपराज वहाँ से विहार कर दिया और राजागण पछार गये। इनके आचक मोक्षों के हृदय में बड़ी चोट लगी। अतिथी लोग बहुत गुम हुए और आचार्यदेव को मेवाड़ देश में निवासमान का उपाय मोक्षने लगे। इस बात का पता चलना जब मेरापदी आचक वहाँ में दाना को लहर-गी दी गई। ये राजमन् में मंचरी की मरना में लुप्तविन होकर उम्र समस्तता पर विचार करने लगे। सबको निमकर यह निर्णय दिया कि यदि भारीमातृजी स्वामी को मेवाड़ में जाने की आज्ञा आ जाए तो हम सबको भी उसके साथ मेवाड़ छोड़ देना चाहिए।

‘जैगा करना बैगा भरना’ की मोक्षोक्ति के अनुसार उनी समय उदयपुर में प्रहृति का प्रकीर्ण हो गया। कहर में मरी फैल गई। गैरकों मानकिक बान-बनविन हो गए। धर-धर में मोक्ष-ही-मोक्ष छा गया। महाराणा के पाठवी पुत्र और दामाद (बोटा धानी) भी परलोक पहुँच गए। जिसने महाराणा अपना निराज और वितापण रहने लगे।

केसरजी मझारी को सारी बात अवगत हुई तो उन्हे बड़ा दुःख हुआ। ये महाराणा के विषयक व्यक्तियों में थे अतः महाराणा का सान्निध्य प्राप्त होता उनके लिए महज था। ये लगभग महाराणा के समीप पहुँचे और सारी स्थिति को स्पष्ट करने हुए बोले—‘जो गाधु भीटी को भी नहीं सताते उनको सताकर आप क्या लाभ उठावेंगे?’ कहर में तो आपने उनको निरुपेक्षा ही दिया, पर मैंने सुना है कि मेवाड़ से भी निवासमाने का विचार किया जा रहा है। आपको यह क्या सूझा है (आपने भूखी क्यूँ सूझी है)? जिस राज्य में मत अन्याय को सताया जाता है उसे प्रकृति कभी क्षमा नहीं करती। सगो को कहर में निरुपेक्षा देने के पश्चात् जो अस्त्रिय घटनाएँ घटी हैं वे सब प्रकृति के रोष का ही परिणाम है। आपके पुत्र और आमाता का वियोग हो गया। सारे कहर में मरी के कारण हाहाकार फैल रहा

१. एक प्राचीन पत्र में लिखा है कि केसरजी मझारी मेवाड़ के प्रदयाल न्यायाधीश थे। ऐसा भी सुना जाता है कि उससे पूर्व वे महाराणा की हथोड़ी की सुरक्षा पर नियुक्त अधिकारी थे। वे कुछ समय पूर्व आचक शोभजी द्वारा समझकर तेरापदी आचक बन गए थे पर वे प्रकट रूप में नहीं आए थे।

है। फिर न जाने भविष्य में क्या होने वाला है अतः आपको चिन्तन करना चाहिए।

इस प्रकार केशरजी द्वारा समझाने से महाराणा के दिल की सारी घान्त्विया दूर हो गई और वे अपने द्वारा किये कृत्य पर बहुत पश्चात्ताप करने लगे।

महाराणा ने केशरजी से कहा—‘अब वापस उन्हें आमंत्रित कर बुला लिया जाए तो ? केशरजी बोले—‘यह हाथ की बात नहीं है पर प्रयत्न करना तो साम ही है।’

उसके बाद महाराणा ने खाम रक्का लिखकर भेजा। हलकारा राजनगर गया तो एक बार तो श्रावक समूह में हलचल मच गई। वे सोचने लगे कि गुददेव की मेवाड़ में निवासवाने का आदेश दिया है। पर ज्यों ही पत्र छोला और पढ़ा तो श्रावक लोग बासां उठकने लगे। उनके हर्ष का पार नहीं रहा। समूचा वातावरण ही बदल गया। वह पत्र इस प्रकार है—

### प्रथम पत्र की मकल

श्री एरनिगजी

श्री वागनाथजी

श्री नाथजी

स्वस्ति श्री शाघ श्री भारमागजी तैरेपवी साघ श्री राणा भीममीष री विनयी मायूम हूँ, क्या करे अठे पदारोगा की दुष्ट वे दुष्टाणो कीदो जी सामु न्ही देखेगा मा मायु बा नगर में प्रजा है ग्यारी दया कर जेज न्हीं करेता बनी काही मयु और म्याचार रहा स्वमान का मय्या जाणेया मंवन १८७५ वर्षे मायाङ्क यदि ३ शुके।

### हिन्दी अनुवाद

श्री एरनिगजी

श्री वागनाथजी

श्री नाथजी

स्वस्ति श्री तैरेपवी मायु भारमगजी से राणा भीममिह की विनयि मायूम हो—क्या करे अठे पदारोगा की दुष्ट वे दुष्टाणो कीदो जी सामु न्ही देखेगा मा मायु बा नगर में प्रजा की ओर देखकर दया करें और आने में विवश न करें। अधिक क्या लिखूँ। अग्य मयाचार साहू शिवभास के द्वारा लिखे पत्र से

१ बीर विनोद (भाग २ प्रकरण १५) मया उदयपुर राज्य का इतिहास (पृ० ७१८) के अनुसार म० १८७८ ई० में मुक्ता डिगीया (४ अप्रैल १८२१) को शिवनाथ मयूदया को उदयपुर राज्य का प्रधानमन्त्री बनाया गया था। मयूदय वे ही उदयपुर पत्र में उल्लिखित साहू शिवभास थे। प्रधानमन्त्री बनने से पूर्व मयूदय वे महाराणाजी के निजी सचिव के रूप में कार्य किया करते थे। महाराणा के पत्र से पता चलता है कि उन्होंने महाराणा के

जाते। सं० १८७१ आषाढ़ कृष्ण ३ बुधवार।'

आचार्यप्रवर को वह पत्र भुनाया और उदयपुर पधारने के लिए निवेदन किया। उन्होंने कहा—अब उस पथरीली घरती में जाने का विचार नहीं है।

महाराणा को जब यह बात हुआ तो उन्हें बहुत निराशा हुई और उन्होंने पुनः दूसरा श्रास स्वका भेजा। उस समय भारीमालजी स्वामी काकड़ोली विराजते थे—

कांकरोली भारीमाल ने, काई विनति अधिक विशाल।

परवानो निज हाथ सूं, लिखो छिहत्तरे वर्ष निहाल ॥

(जय सुजग दा० १० गा० १०)

## द्वितीय पत्र की नकल

श्री एकलिंगजी

श्री बाणनाथजी

श्रीनाथजी

स्वास्ति श्री तेरापकी साध श्री भारमसजी मू म्हारी कण्ठोत बचै अग्र आप अठे पदारमी जमा पात्र सू। आगे ही रको दियो हो सो अवे बेगा पदारोगा संवत् १८७६ वर्षे पोष बीद ११। बेगा आवेगा। श्रीजी रो राज है सो सारा को सीर है श्री बी सन्देह काहि बी न्ही लावेगा।

## हिन्दी अनुवाद

श्री एकलिंगजी

श्री बाणनाथजी

श्री नाथजी

स्वास्ति श्री तेरापकी साधु श्री भारमनजी से मेरी दहबत् मासूम हो। अपरब आप निस्तकौच यहाँ पधारें। इससे पहले श्री एक पत्र आपको दिया था, अत अब शीघ्र ही पधारें। सं० १८७६ पोष कृष्ण ११। शीघ्र आयें। श्री जी का राज्य है, जिसमें सभी का साम्रा है। इसलिए किसी प्रकार का सन्देह न करें।

भारीमाल धरिज से सं० १८७६ के पुर चातुर्मास में महाराणा द्वारा दूसरी बार प्रार्थना करवाने का उल्लेख है—

छिहत्तरे वर्ष पुर मत्ते, भारीमाल रिपराय।

आई हिन्दुरति नी बीनती, करी बणी नरमाय ॥

कथनानुसार उपर्युक्त घटना से संबंधित कोई पत्र बिस्तार से लिखकर भेजा या पर उसमें क्या समाचार थे, इसकी कोई जानकारी इस समय प्राप्त नहीं है।

१. उस समय उदयपुर महाराणा के राजघराने में क राजकीय विभागों में सं० सावन वदि १ से होना माना जाता था इसलिए इस प्रथम पत्र में अंकित सं० श्रावणादि क्रम से १८७६ एवं वि० सं० १८७१ समझना चाहिए।

उदयापुर पधारिये, दुनिया साहमो देख ।  
 दुष्ट साहमो नही देखिये, कृपा करो विमेष ॥  
 सामी मानी बीणती, बीमागो उजरिया मोय ।  
 बिचरत-बिचरत आविया, सह्र काकरोनी जोय ॥

(भारीमाल चरित्र ढा० ५ दो० ४ से ६)

पर यहा भारीमालजी स्वामी के चातुर्मासो के क्रम से सलग्न उक्त वर्णन किया गया है । वास्तव में पुर चातुर्मास के पश्चात् भारीमालजी स्वामी के काकडोली पधारने पर ही दूसरा स्वप्न आया था जो उक्त जय मुजस के प्रमाण से स्पष्ट है ।

भारीमालजी स्वामी वृद्धावस्था तथा शारीरिक दुर्बलता के कारण स्वयं उदयपुर नही पधार सके पर उपयुक्त अवसर समझकर जनोत्कार की भावना से महाराणा की विनती स्वीकार की और मुनि हेमराजजी, रायचन्दजी और जीतमलजी आदि तेरह साधुओं को वहा भेजा—

भारीमाल गणपति तदा काई, निज वय बुद्ध विचार ।  
 शक्ति थोड़ी तिण कारणे काई, पोते न कियो बिहार ॥  
 मेल्या ऋषिराय हेमजय प्रमुख ही काई, तेरे सत श्रीकार ।  
 उदियापुरे पधारिया काई, ऋषिराय मुगण भिगवार ॥

(जय मुजस ढा० १० गा० ११, १२)

३१ मुनि श्री हेमराजजी आदि तेरह सत्त उदयपुर पहुँचे और बाजार की दूकानों में ठहरे । भारीमालजी स्वामी को निकाले जाने पर वहा के तेरापदी भाइयों को जितना दुख हुआ था अब महाराणा द्वारा निमन्त्रित होकर उनके शिष्यों के पदार्पण से उन्हें उतना ही हर्ष हुआ । वहा की जनता बड़े उत्साह से संत समागम तथा प्रवचन सुनने का लाभ लेने लगी ।

मुनि बुद्ध का वहा पर एक महीने तक ठहरना हुआ । उस मासिक प्रदान में स्वयं महाराणा ग्यारह सत्तो के पास आये और दर्शन का लाभ लिया ।

महाराणा को जुलूम बनाकर बाजार से आने-जाने की बहुत दखि रहनी थी । बहुधा भगवारी निकलनी ही रहनी थी । मार्ग में जब मनो का स्थान आता तब मशायदा हाथी को रुकवा कर नमस्कार करते और फिर आगे बढ़ा करते । एक दिन भूत में हाथी आगे निकल गया, परन्तु ज्योंही उन्हें स्मरण हुआ त्योंही महाविन में हाथी को वापस धुमाने के लिए कहा । वे वापस आये और भक्तिपूर्वक नमस्कार करके आगे बढ़े । उस घटना के पश्चात् जब सत्तो का स्थान आता तब महाविन मनेन कर दिया करता था ।

बेगरबी मशारी के मार्क में महाराणा को तेरापदी साधुओं के भाषा-विचार तथा मर्यादादि की भी अच्छी जानकारी हो गई—

भरारी थावक पक्को बाँड, केसरजी सुविचार ।

तास प्रसन्न थी समझिया, राणा भीमसिंह सुखचार ॥

(जय गुजराटो १० गा० ६)

एक बार किसी व्यक्ति ने धर्म-वर्चा करते हुए कहा—‘महाराज ! आज एक साध्वी अवेली ही राव के बाहर घूम रही थी ।’ महाराणा बोले—‘वह और कोई हो सकती है, क्योंकि तेरापय सम्प्रदाय की साध्वी अवेली नहीं रह सकती ।’

इस प्रकार वे तेरापय के आचार गवधी कल्पाकल्प से अवगत हो गए और तेरापय के प्रति अत्यन्त निष्ठा रखने लगे ।

जो रिपही लोग तेरापयी आधुओं को सेवाद में निरुद्ध देना चाहते थे, उनके लिए महाराणा का तेरापयी मतों के प्रति रवि रखना, उन्हें निमन्त्रित कर बुलाना और उस निमन्त्रण पर साधुओं का उदयपुर में आना, ये सब कार्य अत्यन्त कष्टकर हो रहे थे । व्याख्यान श्रवण के लिए बाँधी मर्यादा में जनता का एकत्रित होना तो उन्हें अमर्ष हो रहा था । अनेक प्रकार के प्रयास करने पर भी जनता को रोक नहीं सके सब राजकालीन व्याख्यान में बाधाएँ उपस्थित करने लगे । कई व्यक्तियों ने इधर-उधर से छुशकर पत्थर आदि फेंकना शुरू किया । एक बार तो एक पाषर हेमराजजी स्वामी के पास बैठे हुए बाल मुनि जीतमलजी के पास से होकर गुजरा । श्रावणी द्वारा अनेक उपाय करने पर भी वह हगामा जान नहीं हुआ ।

उन्हीं दिनों महाराणा ने केसरजी भरारी से पूछ लिया कि शहर में सत्तों को किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं ?

केसरजी ने निरुद्ध किया—‘और तो किसी प्रकार का कष्ट नहीं है पर व्याख्यान के समय कुछ लोग इधर-उधर से पत्थर आदि फेंकते हैं ।’

महाराणा यह सुनकर बहुत खिन्न हुए । उन्होंने उसी दिन से कुछ गुणवरी को वहाँ नियुक्त किया । रात के व्याख्यान में जब कुछ व्यक्ति घूल या पत्थर फेंक कर भागे तो गुणवरों ने भागते हुए सड़के को पकड़ लिया और दूसरे दिन महाराणा के सम्मुख उपस्थित किया । उन्होंने उसे शिष्ट करने हुए मृत्यु-दंड का आदेश दे दिया जिससे सारे शहर में खलबली मच गई ।

गड़के की माँ ने जब यह सुना तो वह विमापान करने लगी । उसने महाराणा से अपने इक्कीने पुत्र को छोड़ देने की याचना की । बच्चों ने भी दरबार में जाकर उसे छुड़ाने के लिए काफी प्रयास किया । महाराणा ने उन सबको उत्तर देने हुए कहा—‘जोधपुर के महाराज मानसिंहजी ने तो सत्तार्यस आश्रमियों को मृत्यु-दंड दिया था पर मैंने तो अब तक किसी को ऐसा दंड नहीं दिया, मेरा तो यह प्रथम ही अवसर है । यह सबों का अपराधी है इसलिए हमने छोटा दंड हमारे लिए नहीं हो सकता । वचन निराश होकर वापस आ गये । शहर में इस बात की बड़ी चर्चा

होने लगी ।

मुनि हेमराजजी आदि ने जब यह बात सुनी तो उन्होंने केसरजी से कहा — 'हम मनों को कोई बांधी देना है या पीट भी देना है तो हमारा कर्मेष्ट ॥ नि ह्रम उगे मदन करे, परन्तु हमारे लिए किसी व्यक्ति को मृत्यु-दंड देना उपाय नहीं लगता ।'

सगो की भावना को समझकर केसरजी ने महाराणा के सामने बात बताने हुए कहा — 'सब परमा रहे थे कि हमारे लिए किसी भाई को मृत्यु-दंड देना ठीक नहीं ।'

महाराणा ने मुस्कराते हुए कहा — 'मन अपने गौरव के अनुकूल ही करता रहे है और मैं भी किसी को मृत्यु-दंड देना नहीं चाहता । यह तो लोगों के मन में भय पैदा करने के लिए किया है ताकि भविष्य में कोई व्यक्ति साधुओं को बर्बर न दे ।'

महाराणा ने उस व्यक्ति को बुलाया और कहा — 'तुम मृत्यु दंड दिया जाना-परन्तु सब इस बात से प्रसन्न नहीं है अतः इस बार तो तुम छोड़ना हूँ, पर आगे कभी ऐसा काम करेगा तो एकलिंगजी की 'आण' (लाप) लेकर कहना है कि फिर कभी नहीं छोड़ूंगा ।'

महाराणा की इस घमभी से विरोधी व्यक्तिओं का उपद्रव शान्त हो गया । सत्तों का लगभग एक महीने का वह उदयपुर-प्रवास बहुत ही शरारत रहा । बाद में मुनि बुद्ध ने आचार्यजी भारीमासजी के दर्शन कर सब बुत्तान् मुनाया । इसका भारीमल चरित्र में सतिष्ठ वर्णन इस प्रकार है —

हेम रिय रामचन्द्रजी, तेरे साथ तिवार ।  
पूज हुकम नू आविया, उदयापुर सेहर मझार ॥  
उदयापुर आवे नम्भो, हिन्दुपति हरय सहोन ।  
उपहार हुओ ह्यो अनि धणो, जाणें बीया आरा नी रीन ।  
एक मास रहि उदियापुर में, गोमूदे राखनियां कर उपहार ।  
मुखे समाधे साधजी, भेंटया भारीमास अणहार ॥

(भारीमास चरित्र भा० ५ दो० ७ से ९)

स० १८७७ का चालुर्मास भी मुनिश्री हेमराजजी ने उदयपुर में ही किया ।

भारीमासजी स्वामी को उदयपुर से निकालने, घास वक्रे देकर ग्राम बुलाने की प्रार्थना एवं मुनिश्री हेमराजजी आदि के वहाँ गमन के संदर्भ में प्राचीन प्रकीर्णक पत्र २८ प्रकरण ४ में इस प्रकार उल्लेख मिलता है—

'पछै स० १८७६ भारीमासजी पधार्या । द्वैव्या भिहार्ई, पछै भारीमासजी स्वामी नै राजेजी रहिवा रो ना कह्यो । पछै पाछा राजनगर आया, राजकोली पधार्या, उठा सू बाइवा साणा जद केसरजी भहारी प्रगट पणे होय नै अरज करी

उरें खास एकको परवाना ने दे ने मेल्या जद ऋषिराय महाराज हेम महामुनि जीतमलजी स्वामी आदि पधार्या । राणेजी महीना मे ११ बार असवारी लगाय ने आया दर्शन कीया, घणो उपहार हुयो । पछें ७७ को चोमासो हेमराजजी स्वामी कीयो ।'

ऊपर जो संवत् १८७६ लिखा है वह पंचांगानुसार समझना चाहिए । जिससे पूर्वोक्त खास दत्तके आदि को संवत् के साथ विसर्गति नहीं होगी । सावनादि क्रम से स० १८७५ है ।

'राणा भीमसिंहजी रा इक्का रो बिवरण' शीर्षक पत्रो मे भी उपर्युक्त घटना संकलित की हुई है । देखें पुस्तक भंडार मे 'ख्यात' की पुस्तक संख्या २१० (ख) । महाराणा के हाथ से लिखे हुए स्वके आज भी मौजूद हैं । देखें 'लिखित व प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तक स १८८ ।

मुनि श्री हेमराजजी ने भारीमासजी स्वामी के केसवा मे दर्शन किये (मनु-मानस. १८७८ के चातुर्मास के बाद) । उस दिन शीर्ष विहार करने से उन्हें अधिक पकान आ गई । भारीमासजी से जब ऐसा निवेदन किया तो उन्होंने कहा—'रास्ते के जैतपुरा ग्राम में क्यों नहीं ठहरे, इतना लम्बा विहार क्यों किया ?' मुनि जीतमलजी की इच्छा नहीं थी, अतः नहीं रहे ।' भारीमासजी स्वामी ने मुस्कराकर कहा—'क्या यह आचार्य हो गया था जिससे इसका कहना मानना पडा, अपनी इच्छानुसार ही वहाँ ठहर सकते थे ।'

(प्रकीर्णक पत्र संख्या २७ प्र० ४)

३३ संवत् १८७७ आमेठ में दो श्रावक शंकाशील हो गये । गण के अवगुण-बाद बोलकर लोगों को सदिग्ध बनाने लगे । भारीमासजी स्वामी ने जब यह सुना तो उन्होंने हेमराजजी स्वामी से कहा—जिस प्रकार कुछ दिन पूर्व हमने दीपोजी (१२) साधु को गण से पृथक् किया था उसी प्रकार अगर हम उन शंकाशील श्रावकों को चार तीर्थ से अलग कर दें तो दूसरों के शंका न पड़े । ऐसी लोकोक्ति भी है कि 'दुश्मनो चाकर दुश्मन सरीखो अर्थात् दोनों तरफ चलने वाला नौकर भी दुश्मन के बराबर होता है । इस प्रकार सन्नेहशील दोनों व्यक्तियों को सध से पृथक् मानने का विचार किया ।

(हेम दृष्टान्त ३०)

३४. सं० १८७७ में मुनि जीवोजी (८५) की दीक्षा प्रसंग को लेकर सावा आदि क्षेत्रों में कुछ व्यक्ति सध से विमुक्त हो गये । वे आचार्यप्रवर तथा माधु-साध्वियों की उग्र रूप से निन्दा करने लगे । भारीमासजी स्वामी को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने चिंतन किया कि इस समय सावा में कोई माधु-साध्वी न रहे तो अच्छा है क्योंकि वहाँ विग्रहमय वातावरण मे रहना अभी साध-दायक नहीं लगता । आचार्यजी के इस दृष्टिकोण की जानकारी न होने से मुनि



हेम वपण वर रयण समा सुन, गणपति हर्ष सुपाया ।

परम विनीत रु नीतवन्त हृद, जाण्या हेम सवाया ॥

(जय मुञ्जश डा० ॥ गा० १० से १३)

हेम नवरसा डा० ५ गा० १४ से १६ में भी उपर्युक्त वर्णन है ।

मुनि श्री छेतसीजी ने भी मुनि रायचन्दजी को मुवाचार्य पद देने के लिए अनुरोध किया—

सततुगी हेम वपण वदीजं रे, रायचन्दजी ने पट वीजं रे ।

भूहारी तरफ सू चिन्ता न कीजं रे ॥

भारीमाल सुणी मन हरख्या रे, निकलक दोनूई नें निरख्या रे ।

यानें परम विनीत परख्या रे ॥

एहवा उभय बड़ा मुनि धीरा रे, गण-स्थभण गँहूर गभीरा रे ।

हृद विमल अमोलक हीरा रे ॥

(श्रुतिराय मुञ्जश डा० ७ गा० ४ से ६)

दोनों मुनियों के उपर्युक्त निवेदन करने पर भी आचार्य श्री भारीमालजी ने मुवाचार्य नियुक्ति के समय सेवक पत्र में दो नाम लिखवाये ।

“...सर्व साध-साध्वी छेतसीजी रायचन्दजी की आश्रय्या माहे चालणी’...”

३८. ‘स्वामी भीखणजी की मरजादा बाघी तिण में छोडणी मेलणी पडे तो स्वामी भारीमालजी की आश्रय्या छे थोड़ी घणी देणी लेणी पडे तो बड़ा आचार्य-रिक्त नै छै, ए आश्रय्या ओरा नै नही । ए श्री मुख केलवा मध्ये पुरमायो छै । समय १८७७ रा वेताश्रु विद ५ रविवार ।’

(प्राचीन पत्र से उद्धृत)

३९. सारौरिक अस्वस्थता तथा दुर्बलता को देखकर आचार्य श्री भारीमालजी ने मलेयन-तप प्रारम्भ कर दिया । सं० १८७८ वैशाख कृष्ण ८ से उन्होंने कैबिहार तैला किया । एकादशी को अल्पाहार लिया । तैला करने से कुछ रोग-प्रधानि होने से चार तीर्थ में प्रसन्नता हुई फिर दो दिन आहार लेकर चतुर्दशी को उपवास किया और अमावस्या को पारणा किया । ब्रह्माष्टक गुदि १ से जेठ वदि ७ तक अल्पाहार लिया । जेठ वदि ७ को साधुओं को आमन्त्रित कर आचार्यप्रवर ने कहा—‘अब मेरी तपस्या करने की प्रवृत्ति इच्छा हो रही है, अब श्रीप्रानिमीप्र संनियता प्रारम्भ करना चाहता हूँ ।’ साधुओं ने गुरुदेव से नम्र निवेदन किया—‘आज थोड़ा-थोड़ा भोजन अवश्य सँ ज़िम्मे हमारा मन प्रभुस्तित रहै ।’ पर आचार्यप्रवर ने उनकी प्रार्थना न मानते हुए जेठ वदि अष्टमी, नवमी और दशमी को तैला किया । एकादशी को पारणा किया । बाद में दो उपवास, दो बेते और एक थोला किया । फिर आषाढ़ शुक्ल ६ को उपवास किया । उपवास से बेताप होने से तेना, तेने से थोला हम प्रकार प्रतिदिन एक-एक भावे बड़ै हए ।’

दिन का तप किया। उसका आषाढ़ शुक्ला १५ रविवार (आषाढ़ शुक्ला दशमी दो थी) को पारणा किया। गायन यदि १ से ३ तक लेना किया। फिर कुछ दिन थोड़ा-थोड़ा भोजन किया। सावन यदि ८ से एकान्तर चानू बिने जो सावन गुदि १० तक चने। गुदि ११ और १२ को बेला किया। तेरम को पारणा किया। दो दिन लगातार आहार करके फिर एकान्तर तप प्रारम्भ किया जो कुछ दिन चला। फिर कुछ दिन ऊनोदरी और कुछ दिन उपवासों का प्रम चलना रहा।

(भारीमाल चरित्र ढा० ६ तथा ढा० ७ दोहा १ से ३ के आधार में)  
 वह लेखपत्र म १६७७ वैशाख यदि ६ बुधवार को केवला<sup>१</sup> में लिखा गया। लेखपत्र की प्रथम तथा अन्तिम पंक्ति स्वयं भारीमालजी स्वामी के हाथ की लिखी हुई है, बीच का भाग अश्वस्थ होने से अनुमानन. मुनि जीतमलजी द्वारा लिखराया।<sup>२</sup>

लेखपत्र में जब दो नाम लिखवाये गये तब उनमें समय १७ वर्षीय बालक मुनि जीतमलजी ने इस प्रणाली को भविष्य के लिए समुचित न समझ कर निरसन किया—‘गुरुदेव! भाभी आचार्य के लिए आप चाहें। जिसका नाम रखें पर नाम एक ही होना चाहिए।’ आचार्यदेव ने फरमाया—‘जीतमल! इन दोनों में अन्तर क्या है, य माया भलजा ही है।’

मुनि श्री ने वापस यही प्रार्थना की कि नाम एक ही रहना चाहिए।

भारीमालजी स्वामी न जब मुनि की विनान पर भविष्य के लिए उपयुक्त समझ कर पुनः आचार्य पद के लेखपत्र में एक नाम मुनि रायचन्दजी का ही रखा, मुनि सेतमीजी का नहीं।

वह लेखपत्र आज भी सुरक्षित है। वहा मुनि सेतमीजी के नाम पर—  
 ऐसा निशान लगाया हुआ है। उसके आगे के भाग में केवल रायचन्दजी स्वामी के नाम का ही उल्लेख है। उस लेखपत्र पर तत्कालीन साधुओं के हस्ताक्षर भी हैं।

उक्त मदमें में पड़िए निम्नोक्त पद्य :—

१. उक्त समय आचार्य श्री भारीमालजी केवला में तिराज रहे थे। वहाँ उन्होंने वैशाख यदि ८ के दिन सन्नेचना प्रारम्भ करते हुए सर्व प्रथम लेला किया। वैशाख यदि ४ के दिन उनसे बेला (दो दिन का उपवास) था।

(भारीमाल चरित्र ढा० ६ पा० १)

२. लेखपत्र पर पन्द्रहवीं वम मध्या में मुनि जीतमलजी द्वारा किये गये हस्ताक्षरों की लिपि के समान ही लेखपत्र की लिपि लगनी है, इससे ऐसा प्रतीत होता है।

मेनगीत्री हेमत्री भली, गूठी मे दिखो पाट ।

बड़ाचारी ज्विरायचंद मे, बिरकर राखग्यो पाट ।

(भारीमाल चरित्र डा० ८ गा० ३)

सोम पूज ज्विराय मे, हीघो पद दुहराय ।

प्रदट दिहा भारी कभी, मरी अचिया पात्र ॥

(ज्विराय पञ्चदशिनियो डा० २ गा० ६)

मुनि थी मेनगीत्री तो प्रारंभ से ही आचार्य थी की सेवा मे रहते थे । मुनि थी हेमराजत्री अमर विहार करने थे । उनका मृ. १८७८ का चानुर्माण २ माघुओं से आमेट करमाया—

तब दुहराय दिखो ज्विराय मै, हेम भगी गुडिमागो ।

नब सता मू शवाम भोनायो, गैहर आमेट चौमागो ॥

(जय मुन्नश डा० ७ गा० १४)

यद्यपि युवाचार्य पद के लिए दो नाम लिखने और फिर एक नाम रखने की घटना का भारीमाल चरित्र, ज्विराय मुन्नश आदि आख्यानों में उल्लेख नहीं है पर युवाचार्य पद के लिए लिखे गये पत्र पर दोनों नाम हैं और बाद में प्रथम नाम पर विधियां लगाई हुई हैं । इनमे उल्लेखित घटना प्रमाणित हो जाती है और ऐसी सुप्रसिद्ध अनुभूति भी है ।

शामनप्रभाकर—प्रकरण २ डा० १ गा० १६ में ज्विराय को युवाचार्य पद देने का सं० १८७६ लिखा है—

सुवनीश गिर मेहरा, संन तनी प्रतिपाल ।

जाणी मुन्नद भागियो, अठारै छियनरे भारीमाल ॥

पर वह उपर्युक्त लेखन के प्रमाण से वसंत है ।

४०. आचार्यप्रवरका सं० १८७८ का अंतिम चानुर्माण बेलवा में था । वहाँ उनके साथ ८ माघु थे । जो रात-दिन सेवा मे सलग्न रहते थे । उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. मेनगीत्री (२२)

२. रामचन्द्रजी (४१)

३. जीवोजी (४४)

४. रामचन्द्रजी (६६)

५. बिरघोजी (मुनिथी वर्तमानजी) (६७)

६. हीरजी (७६)

७. शिवजी (७८)

८. सधु जीवजी (८६) ।

(भारीमाल चरित्र डा० ७ गा० २ मे ११ ■ आधार से)

४३ मान चरि ह को आनारी-की घारीमान-की का चरमो-मन बरी गुणगान  
मे माना नर । रात-रात में पूर-पूर तक समानार पड़ने में मेरा नर  
मानार के हजारों आधी रात-मर में लज्जित हो गये । सोमाना ने फिर  
मरिनी मेरा न हो गई । इसका कारण था कि यहो-पूज मरी मिलिनी में पचाई  
गई थी, परन्तु उनके पड़ने में दून दिन-रत होने में पूजरी मरी रात-मर में  
मनवा भी गई । सोनों के मानो समाना मरी हो गई कि अब की-मी मरी का  
दरपेन दिया ज-नर चाहिए । आदिर परम-ममाना कर भीने का मान मेरा  
की मरी का और ऊपर का मान इकतानीम श्रव मानो मारपाइ की मरी का रखा  
गया और सोमाना का जुगुन मनाकर लोग रवाना हुए ।

जुगुन धीरे-धीरे दरवाजे के समीप पहुँचा, वर अधिक ऊँची होने में मरी  
दरवाजे में मरी निज-मरी । फिर सोनों के समाना निज-मीन मरी ।  
तब कुछ मीनानों में निर्गत कर उन दरवाजे को तोड़ बाग और वे भागे बड़े ।  
घोई-रा (रात-मर में एक कोश) के 'बाह्ये' में पहुँचकर दाह-मरकार दिया ।

भारीमान-की स्वामी के दिन-रात होने की श्रम जब उदयपुर पहुँची तब  
महाराणा भीमसिंहजी ने बेशरओ मरारी से आदर-पूर्वक कहा—'माना में होने  
माना मारा मय राग्यकोन से लगना चाहिए ।' बेशरजी ने उनमें निवेदन  
दिया—'जिग प्रकार आप भारीमान-की स्वामी के प्रति श्रद्धा रखते हैं उसी  
प्रकार तेरापनी श्रावक समान भी उनके प्रति श्रद्धा रखता है वे सबके ही गुन वे ।  
अतः इस अवसर पर यदि आप अपने ही मय का भार बहन करेंगे तो भद्रानु  
जनता की भावना को तृप्ति बने मिलेगी ? इस विषय में आपको मेरी प्रार्थना  
माननी पड़ेगी और जनता की भी अवसर देना पड़ेगा ।'

आदिर महाराणा ने मरारीजी की बात को मान लिया । उन्होंने कहा—  
'जितना भी मय हो उसमें 'मिरेमान' मेरा ही रहना चाहिए ।' इस प्रकार  
महाराणा और जनता के सम्मिलित मय में भारीमान-की स्वामी की अन्वेष्टी-  
प्रिया की गई ।

(श्रवण)

आधी रात में आसरे जाल परापत, कहे बीरजी वाली बेला मीधी ।  
चरम कहयाण राजनगर में, मेवाइ देन जानो परसीधी ।  
समत अठारे में बरस छठनरे, महा विद आठम मगलवार ।  
भारीमान सवारो सीधो इण रीते, बहु गुण ग्राम करे नर-मार ॥

(भारीमान चरित्र का० ॥ पा० ११, १२, १४)

१. हेठे मरी मेवार नी, उपर छह हगतामी ए । दपामी ए ।

रीत करी मुरघर लणीक, मुनिवर ए ॥

(भारीमान चरित्र का० १० गा० १)

‘बसावे’ में सगभग ग्यारह सौ रुपये सवे ।’

कहा जाता है कि संस्कार के समय भारीमालजी स्वामी की पछेवही नहीं जली । जनता ने उसे एक धमत्कार माना । चद्दर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये । जिसके हाथ लया वही ले गया । आज भी उम चद्दर का एक अड़ाई इंच का अवशेष खर तेरापंय के ‘ऐतिहासिक-संग्रह’ लाइनू में विद्यमान है ।

दरवाजा तोड़ तो दिया गया पर बाद में समाज के प्रमुख व्यक्तियों ने सोचा—‘अच्छा होवा कि दरवाजा तोड़ने की चटना को महाराणा तक पहुँचा दिया जाये ।’ इसके लिए उन्होंने केशरजी भंडारी को चुना । वे इस मवाद को लेकर महाराणा के समीप पहुँचे । उन्होंने प्रार्थना की—‘राजनगर में भारीमालजी स्वामी की शवयात्रा के समय मंडी न निकलने के कारण दरवाजा तोड़ दिया गया था । अब लोग उसे पुनः बनाना चाहते हैं ।’ महाराणा ने कहा—‘केशर ! उन्होंने यह अच्छा किया, अब उनकी यादगार में उसे बीसे ही (फूटा हुआ ही) रहने देना चाहिए ।’

यह दरवाजा आज तक वापस नहीं बना । राजनगर के अधिकांश आदमी अभी भी उसे भारीमालजी स्वामी की यादगार में ‘फूटा दरवाजा’ के नाम से पुकारते हैं ।

(अनुष्मृति के आधार से)

४४. आचार्य श्री भारीमालजी के शासनकाल में कुल ब्यासी दीक्षाएँ हुईं । उनमें अड़तीस साधु और चौवालीस साध्वियाँ थी—

ब्यामी हुआ साध साधवी जी, आनरे अर्थ अमोल ।

(भारीमाल चरित्र डा० ११ गा० ८)

वे दिवंगत हुए तब संघ में पैंतीस साधु और ब्यासीस साध्वियाँ विद्यमान थी । साध पैंतीस इगताली साधव्या, भेसी के सामजी सुध यत् में आप सिधायो हो लाल ।

(भारीमाल चरित्र डा० १३ गा० ११)

आचार्य भारीमालजी के स्वर्गवास के समय ४१ साध्वियाँ विद्यमान थी ऐसा उक्त पद्य में लिखा है, किन्तु अनुमन्थान से ४२ साध्वियाँ विद्यमान ठहरती हैं । भारीमालजी स्वामी पदासीन हुए तब स्वामीजी के समय की २७ साध्वियाँ थी ।

१. इगताली खंडी मंडी करी, जाणक देव विमाण ।

इग्यारे सौ रे आसरे, रोकड़ लाणा जाण ॥

(भारीमाल चरित्र डा० १० दो० ४)

ऐसा मुना जाता है कि आधा खर्च महाराणा का और आधा खर्च जनता का गया ।

भारीमानजी स्वामी के युग में ४८ साध्वियाँ दीक्षित हुईं। कुल ७१ साध्वियों में भारीमानजी स्वामी के समय स्वामीजी के समय की १७ और भारीमानजी स्वामी के समय की ६ साध्वियाँ दिवंगत हुईं तथा तीन साध्वियाँ गगनावर हुईं। उननीम साध्वियों को वाद देने से ८० साध्वियाँ ही ठहरती हैं। जयाचार्य ने मत गुण माना ६०३—पद्मिन मरण दा० २ में भारीमानजी स्वामी के समय २६ साध्वियों के दिवंगत होने का उल्लेख किया है इसमें भी उक्त निष्कर्ष की पुष्टि होती है। पदिये परिशिष्ट १ (क) तथा (ख)

४५ वे दस वर्ष गृहस्थ, चार वर्ष इष्ट दीक्षा में, पन्द्रह वर्ष मुनि, अठारह वर्ष पुत्राचार्य और अठारह वर्ष आचार्य पद में रहे। उनका कुल आपुन्य लगभग ज्ञात किया।

हत्व पूर्ण वर्ष—

१. जन्म सवत्—१८०४
२. इष्ट दीक्षा सवत्—१८१३
३. भाव दीक्षा सवत्—१८१७ आपाठ पूर्णिमा
४. पुत्राचार्य पद सवत्—१८३२ मार्गशीर्ष कृष्ण सप्तमी
५. आचार्य पद सवत्—१८६० भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशी
- स्वर्णवाम सवत्—१८७८ भाद्र कृष्ण अष्टमी।

पूर्ण स्थान—

- जन्म स्थान—भूहा (बहा)  
 इष्ट दीक्षा स्थान—बागोर  
 भाव दीक्षा स्थान—बेनवा  
 पुत्राचार्य पद स्थान—बोडोडा  
 आचार्य पद स्थान—तिरियारी  
 स्वर्णवाम स्थान—राजनगर।

भारीमानजी स्वामी का विहार क्षेत्र भी स्वामीजी की तरह राजस्थान

आमरे पर में रह्या,  
 उनमाने रह्या दरबे भेष मजारी हो लाल।  
 गायो इगमड बरस आमरे,  
 उनमाने पाया उमर भारी हो लाल।

के तात्कालीन राज्य—मेवाड़, मारवाड़, बूँडाड़ और हाडोली ही थे।

उन्होंने आचार्य बनने से पूर्व स्वामीजी से अलग स० १८२४ का एक चातुर्मास बगड़ी (मुघरी) में किया था। शेष सभी चातुर्मास स्वामीजी के साथ किये। आचार्य पद पर आसीन होने के पश्चात् बूँडाड़ चातुर्मास किये। धर्म के जन्म में उनकी तालिका इस प्रकार है—

स्थान	चातुर्मास सत्या	सम्मत
पिमावण	१	१८६१
पाली	३	१८६२, ६८, ७३
खैरवा	१	१८६३
केलवा	२	१८६४, ७८
नायडाग	३	१८६५, ७४, ७७
आमेड	१	१८६६
बालोतरा	१	१८६७
जयपुर	१	१८६८
माधोपुर	१	१८७०
बोरावड़	१	१८७१
मिरियारी	१	१८७२
बांकरोली	१	१८७५
पुर	१	१८७६

(भारीमाल खरिद स० १२ के आधार से)

वर्षों के जन्म से तालिका इस प्रकार है—

वर्ष	स्थान	साधु	भारती
१८६१	पिमावण		
१८६२	पाली		
१८६३	खैरवा		
१८६४	केलवा		
१८६५	नायडाग		
१८६६	आमेड		
१८६७	बालोतरा		
१८६८	जयपुर		
१८६९	माधोपुर		
१८७०	बोरावड़		
१८७१	मिरियारी		
१८७२	बांकरोली		
१८७५	पुर		



(७) उनके पुत्र के सप्त मुनि श्री जीवोजी (८६) ने सर्वप्रथम और सर्वोत्कृष्ट (४४ तक चढ़े) आचम्य बर्धमान तप किया।

### दीक्षाओं का विश्लेषण

(१) कुमारी कन्या १-साध्वी श्री मद्रूजी (६२) की दीक्षा हुई जो तैरापय समेस में सर्व-प्रथम थी।

(२) विवाहित बालक मुनि भोजीरामजी (५४) मुनि सतीजी (५६) मुनि श्री स्वरूपचन्द्रजी (६२) मुनि श्री भीमजी (६३) मुनि श्री जोतमनजी (६४) मुनि श्री कर्मचन्द्रजी (६६) मुनि श्री मोतीजी (८३) मुनि श्री सतीदासजी (८४) मुनि श्री जीवोजी (८६)।

(३) एक बहूत-भार्यो का जोडा-मुनि श्री दीपजी (८५) और मुनि जीवोजी (८६) तथा उनकी बहूत साध्वी श्री मयाजी (८६)।

(४) माता सहित तीन पुत्रों की दीक्षा-१. मुनि श्री स्वरूपचन्द्रजी (६२) २. भीमजी (६३) तथा जयाचार्य एवं उनकी माता साध्वी श्री कस्तूजी (७४)।

(५) तीन सपत्नीक दीक्षा—१. मुनि श्री रतनजी (७४) और साध्वी श्री येमाजी (६१)। २. मुनि श्री हीरजी (७६) और साध्वी श्री कमलूजी (६४) ३. मुनि श्री दीपजी (८५) और साध्वी श्री चतरूजी (१००)।

(६) चार सुहागिन बहनों की दीक्षा—१. साध्वी श्री आसूजी (५७) २. चतरूजी (७०) ३. वाल्हाजी (७५) ४. मेनाजी (८१)।

(७) स्त्री को छोड़कर सात भार्यो की दीक्षा—१. मुनि जयचन्द्रजी (५५) २. पीपलजी (५६) ३. सावलजी (५७) ४. अमीचन्द्रजी (७५) ५. भीरजी (७६) ६. रतनजी (८१) ७. शिवजी (८२)।

(८) पति पहले दीक्षित—साध्वी श्री कुनणाजी (६२) पति जोगीदासजी (४५)। (आचार्य भिक्षु के समय दीक्षित)।

### विशेष

मुनि श्री बर्धमानजी (६७) को भारीमालजी स्वामी ने अर्धरात्रि में, मुनि श्री जीवोजी (८६) को स्वरूपचन्द्रजी स्वामी ने जगल में गृहस्थ के बेव में तथा साध्वी श्री मद्रूजी (६२) कुमारी कन्या को मुनि श्री हेमराजजी ने जंगल में गहनों वपड़ों सहित दीक्षा दी।

आचार्य भारीमालजी के शासनकाल में कुल ३८ साधु एवं ४४ साध्वियों की दीक्षा हुई। उनमें १ आचार्य १६ सिपाइय साधु एवं १३ सिपाइय साध्वियाँ हुई। उनके नाम इस प्रकार हैं—  
आचार्य मुनि श्री जोतमनजी (६४)



परिमिष्ट १ (क)

**बोझा**

—कै जन्गी मरु समय में, आठ तीस अणसार !

श्री भारती मुरद समय में, बाठ तान साकार ॥१॥  
 दिव्य यंत्र में देविष्ट, उन सबका साकार ॥१॥

द्वितीयाचार्य धी भारीमात्तजी के समय में दीक्षित सायुधों का बोधा-रण

[illegible]

## आचार्य श्री मिश्रगणों के विद्यमान तथा भारीमालजी के समय के साधुओं का न्याय-दर्पण

आचार्य सरया	आचार्य नाम	पूर्व विद्यमान तथा	साधु	गणवाहर	विद्यमान
१	श्री मिश्रगणों	साधु दीक्षा	स्वर्गवास	२	६
२	श्री भारीमालजी	२१	३	६	२६
		कुल ५६	१६	८	३५

आचार्य श्री भारीमालजी के वटाधीन के समय आचार्य मिश्र के समय के २१ साधु विद्यमान थे। उनमें भारीमालजी के समय में १३ साधु दिवंगत २ गणवाहर हुए और ६ रहे।

भारीमालजी के समय में ३८ साधु दीक्षित हुए। उनमें उनके समय में ३ दिवंगत और ६ गणवाहर हुए व २६ साधु विद्यमान रहे।

साधु वैतीस इगताधी साधव्यां, मेस्त्री ने सामजी ।  
मुण गत मे आप तिघायो हो सात् ॥

[हेम मुनि रचित भारी० प० का० १३ गा० ११]

वर वैतीस मुनिस्वरू, सभजो इकतालिस ।  
मेस्त्री परभव पांगरूया, भारीमाल जगीस ॥

[आर्यो दर्शन का० १ दो० ५]

# पिय आचार्य भारीमालजी के समय दिवंगत साधु

देवलीक समय

नाम	होलान्त	
मशू समय के		१८३८
१० श्री भारीमालजी	७	१८६२
गुजी	८	१८६१
श्रीरामजी	१०	१८६६
मजी	२१	१८३०
मजी	२३	१८३१
मजी	२६	१८३०
मजी	२८	१८६६
श्रीरामजी	३५	१८६०
गुजी	३७	१८३०
श्रीरामजी	४२	१८६८
गाराचन्दजी	४३	१८३१
श्रीरामजी	४६	१८६६
श्रीरामजी	४८	१८६७
श्रीरामजी	५१	१८३६
श्रीरामजी	५८	१८३८
श्रीरामजी	५९	१८३८

૩૬૧ શામન-ગમુદ

ક્રમ	સં	નામ	ગાંધ	ચીજા સં	સાથનાકામ સ્થાન માં ગમગાહર સં
૭૩	૨૪	ટીકમગ્રી	માણીપુર	૧૮૭૨	૧૬૧૫
૭૪	૨૫	જનગ્રી	સાવા	૧૮૭૩	૧૬૧૭
૭૫	૨૬	અમીવદગ્રી	ગામુદા	૧૮૭૩	૧૮૮૭
૭૬	૨૭	હીરગ્રી	જાંગેરી	૧૮૭૬	૧૮૬૩
૭૭	૨૮	મોનીગ્રી (બટા)	મીવાળ	"	૧૬૨૬
૭૮	૨૯	શિવગ્રી	સાવા	૧૮૭૫	૧૬૧૧
૭૯	૩૦	ભંરગ્રી	દેવગઢ	૧૮૭૫	૧૬૨૫
૮૦	૩૧	અમીવદગ્રી (છોટા)	કોથવા	"	૧૮૬૪
૮૧	૩૨	રતનગ્રી	દેવગઢ	૧૮૭૬	૧૬૦૦
૮૨	૩૩	શિવગ્રી	દેવગઢ	"	૧૬૧૩
૮૩	૩૪	કર્મવદગ્રી	દેવગઢ	"	૧૬૨૬
૮૪	૩૫	મગીદાસગ્રી	મોમુદા	૧૮૭૭	૧૬૦૬
૮૫	૩૬	દીપગ્રી	ગગાપુર	"	૧૮૬૩
૮૬	૩૭	જીવોગ્રી	ગગાપુર	"	૧૬૨૬
૮૭	૩૮	મોદગ્રી	જાંદેરા	"	૧૬૨૪

## द्वितीय आचार्य भारीमालजी के समय दिवंगत साधु

क्रम	नाम मिल्ल समय के	दीक्षाक्रम	देवतोक सवत्
१	आ० श्री भारीमालजी	७	१८७८
२	मुखजी	६	१८६२
३	अर्जुनरामजी	१०	१८६१
४	मामजी	२१	१८६६
५	रामजी	२३	१८७०
६	मानजी	२६	१८७१
७	बेणीरामजी	२८	१८७०
८	मुखजी	३५	१८६४
९	उदयरामजी	३७	१८६०
१०	साराचन्दजी	४२	१८७०
११	कृष्णरसीजी	४३	१८६८
१२	ओघोजी	४६	१८७५
१३	भोपजी	४८	१८६६
	भारी० समय के		
१४	जीवणजी	५१	१८६२
१५	बगतोजी	५८	१८७४
१६	पीपलजी	७२	१८७८

## द्वितीय आचार्य भारीमालजी के समय गणवाहर साधु

क्रम	नाम	क्षीताक्रम	गण बाहर सवत्
	मिलतु सभ्य के		
१	कुसालजी	३८	१८६६
२	ओटोजी	३९	१८६०
	भारी० समय		
३	दीपाजी	४२	१८७७
४	जयचन्दजी	४५	१८६६
५	सावलजी	४७	१८६६
६	मन्दोजी	६५	कुछ समय बाद गणवाहर
७	रूपचन्दजी	६९	१८७१
८	रामिधजी	७०	सबत् प्राप्त नहीं है

**द्वितीय आचार्य श्री भारीमातजी के स्वर्गवास के समय  
विद्यमान साधु**

क्रम	नाम मिलु-समय के	दोसाक्रम	बाद ॥ दिवगत या गगनबाहर
१	श्री सेतमीजी	२२	१८८०
२	" हेमराजजी	३६	१९०४
३	" रायचन्दजी	४१	१९०८
४	" जीबोजी	४४	१८९०
५	भगजी	४७	१८९९
६	श्री भागचन्दजी	४८	१८९७
	भारी-समय के		
७	" जवानजी	५०	१९०५
८	" गुलाबजी	५३	१८९५
९	" मीजीरामजी	५४	१८९९
१०	" पीपलजी	५६	१८८३
११	" सन्तोजी	५९	१९१२
१२	" ईशरजी	६०	१९०१
१३	" गुमानजी	६१	१९१०
१४	" स्वरूपचन्दजी	६२	१९२५
१५	" भीमजी	६३	१८९७
१६	" भीमजी	६४	१९३८
१७	आ० श्री जीतमलजी	६५	१९१९
१८	श्री रामजी	६६	१८९४
१९	" बर्डमानजी	६७	१८८३ गगनबाहर
२०	" भवानजी	६८	१९०० के आसपास
२१	" भाणकचन्दजी	७१	१९१५
२२	" टीकमजी	७३	१९१७
२३	" रत्नजी	७४	

क्रम	नाम	कीर्ति नाम	कार में दिवंगत या मरणवात्स
२३	श्री अमीषण्डकी	७४	१८८७
२४	हीरकी	७५	१८८३
२५	" मोरित्री	७७	१८२८
२६	" गिरकी	७८	१८११
२७	" धीरकी	७९	१८२५
२८	" अमीषण्डकी (छोटा)	८०	१८८६
२९	" रत्नकी	८१	१८००
३०	" गिरकी	८२	१८१३
३१	" अमृषण्डकी	८३	१८२६
३२	" मणीशमकी	८४	१८०८
३३	" दीपकी	८५	१८८३
३४	" जीरोकी	८६	१८२८
३५	" मोड़की	८७	१८२६

परिशिष्ट १ (ख)

दीहा

यत्र द्वितीयाचार्ये की, शिष्याओं का स्वच्छ !

रमिक जनों को घीचता, ज्यो फूलों का गुच्छ ॥१॥

द्वितीयाचार्य श्री भारोमानजी के समय में दीक्षित साध्वियों का दीक्षा-द्वयं

[illegible]

आचार्य संख्या	आचार्य नाम	पूर्व विद्यमान तथा साध्वीहोता	स्वर्गवास	मरणबाहुर	विद्यमान
१		२७	१७	०	१०
२	धो भिक्षुगणी धी भारीमासजी	४४	६	१	१२
		—	—	—	—
		कुल ७१	२६	१	६२

आचार्य धी भारीमासजी के पदासीन के समय आचार्य भिक्षु के समय धी २७ साध्वी विद्यमान थी। उनमें भारीमासजी के १ में १७ साध्वी दिवगत हुई और १० रही।  
भारीमासजी के समय में ४४ साध्वी दीक्षित हुई। उनमें उनके समय में ६ दिवगत और ३ मरणबाहुर हुई। १२ साध्वी गन रही।

गय पंथीस श्रमाली साध्वी, सेवी ने सामजी।

य वर्ष में अग्य सिधाय हो सात ॥  
(देम पुनि रचित भारी० च० ६० १३ वा० ११)

(देम मसीसा टी० स० ४४ मे)  
वर पंथीस मुनिमरु, समजी दत्तानीय।  
मैमो परभन धामरदा, भारीमास जपोस ॥  
(आर्य दर्शन ३१० १ ८१०५)

## द्वितीयाचार्यश्री भारीमालजी के समय दीक्षित साधिवयां

क्रम	संख्या	नाम	गांव	दीक्षा सं०	साधनाकाल स्वर्ग, गणबाहर सं०
१७	१	भातूजी	पीपाड	१८६१-६२	१८७१-७४
१८	२	मूमोजी	पाली	१८६२	१८८२
१९	३	हस्तूजी (छोटा)	पीपाड	१८६२ १८६२-६६ के बीष	१८८६ भारी० मुख में गणबाहर
१०	४	राहीजी			१८६८ बैठ मुदि ७ और १८७० कारिऊ मुदि ६ के बीष
११	५	कुशासाजी	जीलबाड	१८६२-६६ के बीष	" "
१२	६	कुनभाजी	बेभवा	१८६२-६६ के बीष	१८९७
१३	७	दीनाजी	काहरीनी	१८६२-६२ के बीष	१८८६
१४	८	चनभाजी	मड़ी धाटु	१८६६	१८९४
१५	९	चटुजी (बड़ा)	बाजोनी	१८६६	१८८८
१६	१०	बगूजी	बीलमपुर	१८६८	१८७८
१७	११	कुशासाजी	बोराबरा	१८६८	१८७८ माच बरि ८ के पूर्व
१८	१२	दीदाजी	बाजोनी	१८६८	" "
१९	१३	कुशासाजी	देवदह	१८६८	१८८१
२०	१४	चटुजी (छोटा)	लेधीना	१८६८	१८९१

क्रम	संख्या	नाम	प्रांत	बीजा-संख्या	साधनाकारण रक्षण, गणनाद्वारा से
७१	११	पान्नी	बोराबड	१८६८	१८७८ माघ बदि ८ के पूर्व
७२	१२	रमाजी	पीमागन	१८६८	१८९५
७३	१३	पान्नी	गोड	१८६८	१८७८ माघ बदि ८ के बाद अगिराद युग में
७४	१४	पान्नी	गोड	१८६८	१८८७
७५	१५	पान्नी	माउडा	१८६८	१८७८ माघ बदि ८ के पूर्व
७६	१६	पान्नी	बोराबड	१८६८	१८७९
७७	१७	उपेदी	पान्नी	१८७०	१८७८ माघ बदि ८ के पूर्व
७८	१८	पान्नी	पीमागन	१८७०	१८८७
७९	१९	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
८०	२०	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
८१	२१	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
८२	२२	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
८३	२३	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
८४	२४	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
८५	२५	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
८६	२६	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
८७	२७	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
८८	२८	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
८९	२९	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
९०	३०	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
९१	३१	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
९२	३२	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
९३	३३	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
९४	३४	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
९५	३५	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
९६	३६	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
९७	३७	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
९८	३८	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
९९	३९	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७
१००	४०	पान्नी	माउडा	१८७०	१८८७

क्रम	संख्या	नाम	गाँव	बीता-संखन्	साधनावाग स्थग, गणबाहर म०
८८	३३	अमियाजी	बामोतरा	१८७२	१८७८ के पूर्व भारी० मृग में गणबाहर
८९	३४	दीपाजी	जोरावर	१८७२	१८९८
९०	३५	पेमाजी	सावा	१८७३	१८७८ के पूर्व भारी० मृग में गणबाहर
९१	३६	मदुजी	सावा	१८७३	१८४९
९२	३७	मबलाजी	बटार	१८७३-७४	१८९६ के पश्चात् जवाबार्द के समय
९३	३८	बमलुजी	बमेरी	१८७४	१८०२
९४	३९	मबलाजी		१८७४-७५	१८८७
९५	४०	दीपाजी	छोड	१८७५	१८९९
९६	४१	डुमेराजी	जोरावर	१८७६	१८८८
९७	४२	मोराजी	जोरावर	१८७७	१८९०
९८	४३	मलुजी	माममवा	१८७७	१८९७
९९	४४	बबुजी	बरापुर	१८७७	१८८०

## आचार्यश्री भारीमालजी के समय दिवंगत साध्वियां

क्रम	नाम	दीक्षा क्रम	देवलोक सन्
------	-----	-------------	------------

मिस्र-समय की—

१	साध्वीश्री अमराजी	२३	१८६०-६८ के बीच
२	" तेजुजी	२५	१८६०-६८ "
३	" हीराजी	२८	१८७८
४	" मगाजी	२९	१८६६
५	" पन्नाजी	३१	१८६०-६८ के बीच
६	" गुमानाजी	३३	"
७	" सेमाजी	३४	"
८	" सरुपाजी	३८	"
९	" बग्गाजी	४१	१८६७
१०	" ऊदाजी	४३	१८६०-६८ के बीच
११	" कुशामाजी	४६	१८६७
१२	" वस्तूजी	४७	१८७६
१३	" नोराजी	४९	१८७२
१४	" कुशामाजी	५०	१८७०
१५	" असोदाजी	५४	१८६० के बाद १८६८-७० के पूर्व
१६	" डाहीजी	५५	" " "
१७	" नोराजी	५६	" " "

क्रम	नाम	दीक्षा-क्रम	वेवस्तोक सप्तत्
भारोमास-समय की			
१८	"	बामूजी	५७ १८७३ या ७४
१९	"	कुशासाजी	६१ १८६८-७० के बीच
२०	"	कुन्नासाजी	६२ " "
२१	"	दोसाजी	६३ १८६७
२२	"	कुशासाजी	६७ १८७८ माघ यदि ८ के पूर्व
२३	"	गीसाजी	६८ " " "
२४	"	कतूजी	७१ " " "
२५	"	बालाजी	७५ " " "
२६	"	उमेदाजी	७७ " " "

## आचार्यश्री भारीमालजी के समय गणवाहर साध्वियां

क्रम	नाम	हीरा क्रम	गणवाहर संवत्
भारीमाल समय की—			
१	श्री राहीजी	६०	संवत् प्राप्त नहीं है।
२	„ खमीपाजी	८६	१८७८ भाष यदि ८ के पूर्व
३	„ पेयाजी	६१	„ „ „

## आचार्यश्री भारीमालजी के स्वर्गवास के समय विद्यमान साध्वियां

क्रम	नाम	हीरा क्रम	बाद में दिवगत
मिलत समय की —			
१	सायबीश्री बगनुजी	२७	१८७६ बैष यदि १ के बाद ज्येष्ठराय युग में
२	„ अजबूजी	३०	१८८८
३	„ बरबूजी	३६	१८८७
४	„ बीनाजी	४०	„
५	„ शूमाजी	४४	१८६६ या ६७
६	„ हसनूजी	४५	१८६७
७	„ जोनाजी	४८	१८०८
८	„ नाथाजी	५१	१८६७
९	„ बीनाजी	५२	१८८६
१०	„ गोमाजी	५३	१८६०

नाम बीछा-क्रम बाद में दिवमत

सारीमाल-समय की—

साप्तीथी	शूमाजी	५८	१८८२
"	हस्तूजी छोटा	५९	१८८६
"	चनणाजी	६४	"
"	चनूजी बडा	६५	१९१४
"	जसूजी	६६	१८८८
"	कुशालाजी	६९	१८९३
"	चनूजी छोटा	७०	१९१३
"	रमाजी	७२	१९१५
"	पन्नाजी	७३	१८७८ माघ यदि ८ के बाद ऋषिराय शुभ मे
"	बस्तूजी	७४	१८८७
"	नगाजी	७६	१९०१
"	रत्नाजी	७८	१८८७
"	चनणाजी	७९	१८८७
"	बेशरजी	८०	१८८३
"	गेनाजी (मानाजी)	८१	१८९४
"	गगाजी	८२	१८७९
"	नोनाजी	८३	१८७९
"	बन्नाजी	८४	१८८७ के बाद ऋषिराय शुभ मे
"	जत्रनाजी	८५	१८७८ माघ यदि ८ के बाद ऋषिराय शुभ मे
"	मराजी	८६	१९०९
"	मधुजी	८७	१९०८ जवाहार के समय
"	बीराजी	८८	१८९९ के राखन जवाहार के समय
"	दीनाजी	८९	१९१८
"	बदुजी	९०	१९४१
"	बबनाजी	९१	१९१९ के राखन बबनाजी के समय



## ८. लिखमोजी

(दीक्षा स० १८१६, १८२४, २५ के पूर्व गणवाहर)

### रामायण-छन्द

जयमलजी की संप्रदाय को तजकर अलग हुए गुरुमाथ' ।  
नूतन दीक्षा ली है लेकिन खूब न सके संयम का बचाव ॥  
शहर केलवा में स्वामीजी आदि साधु कुछ ठहराये ।  
किनने साधु अन्य क्षेत्रों में पावस पहला कर पाये' ॥१॥  
मिले बाद में की फिर चर्चा पर न मिला है श्रद्धाचार ।  
पृथक् हो गये पांच सभी से मामिल आठ रहे अणगार' ॥  
लिखमोजी कुछ वर्ष बाद में, दूर हुए भैरव गण से ।  
बिन क्षयोपशम मोहकर्म के मुक्तिल तत पालन जन मे' ॥२॥

### दीक्षा

आठ साधुओं में हुए, दो फिर गण से दूर ।  
संयम में दृढ़ संयमी, रहे शेष छह गुरु' ॥३॥

१. स्वामीजी आदि तेरह साधु जब दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए उनमें से एक लिखमोजी थे । तेरह साधुओं में २ आचार्य रत्नाचारी के १ जयमलजी के तथा २ अन्य होने के (ममयन नामदासजी के) थे । लिखमोजी जयमलजी की संप्रदाय के थे । मुनि विरपालजी (१) जब जयमलजी की गुरुदत्त में थे तब उन्होंने चार टापी में स० १८१४ का श्रावणमास राजनगर में बिताया । उन चारों में एक लिखमोजी थे । (देखें विरपालजी का प्रचार)

२ स्वामीजी ने केलवा तथा अन्य साधुओं ने जिन क्षेत्रों में श्रावणमास में वहां सभी ने स्वामीजी के निर्देशानुसार अष्टाष्टकना १३ को नई दीक्षा कर ली ।

३. चानुमणि के बाद बापन सब साधु मिले—

हिंसे योग्यामो उनर्यो, भेसा हुआ सहु भांज हो ।

[चिन्तु जस रमायण का० ८ गा० ७]

उनमें से पांच साधु धडावार न मिलने से स्वामीजी के सप में नहीं रहे ।

आठ साधुओं का सबध शामिल रहा । उनमें एक मित्रमोजी थे ।

पांच बलग हुए उनके नाम— १. बखतरामजी. २. गुमाबजी ३. भारमलजी

{ द्वितीय } ४. जयचन्दजी ५. येमजी ।

आठ शामिल रहे उनके नाम— १. चिरपायजी २. जनेहचन्दजी ३. मोखन

जी स्वामी ४. बीरभाणजी ५. टोकरजी ६. हरनाथजी ॥ भारीमातजी

८. लिखमोजी ।

४. लिखमोजी के पुषरू होने का सबन प्राप्त नहीं है । १८३२ मृगतार बदि ७ के सामूहिक लेखन सद्यः १ में उनके हस्ताक्षर नहीं मिलने अब उनके पूर्व के सप से ध्यान हो गये यह तो स्पष्ट ही है लेकिन चैदाय-गण में स० १८२४, २५ तक दीक्षित होने वाले साधुओं की मर्यादा १३ है । स्वामीजी ने भाव-दीक्षा की सब १३ साधु में, उनमें ५ तो चानुमणि के बाद सम्मिलित हुए ही नहीं । फिर कई वर्षों तक १३ की मर्यादा नहीं हुई ऐसा कहा जाता है । इसमें यह सम्भावना की जाती है कि लिखमोजी (८) १८२४, २५ के पूर्व अमरोजी (११) १८२४ या २५ के पूर्व और मोतीरामजी (१३) दीक्षित होने के कुछ समय परचातु चन्द्रभाणजी की दीक्षा के पूर्व ही गणबाहर हो गये थे ।

शासन विनाम तथा मित्र जस रमायण में केवल उनके पुषरू होने का उल्लेख है—

तेरा माहिलो ताम रे, लिखमो छूटो गण बकी ।

पामी गण अभिराम रे, चारिन रत्न मयावियो ।

[शासन विनाम का० १ सो० ११]

लिखमोजी सत्रम सीध बर्षे प्रभावे ही गण सू म्पारो मपो ।

[चिन्तु जस रमायण का० ४५ गा० ११]

५. उत्पन्न आठ साधुओं में दो—बीरभाणजी और लिखमोजी बाद में गण में अलग हो गये । छह साधु आजीवन गण में रहे ।<sup>१</sup>

१. रहे बिस भेसा रमा, मु० बर बट सग बडोण हो ।

आजीवन सग जाणयो मु० बरब माहोमाही पीन हो ॥

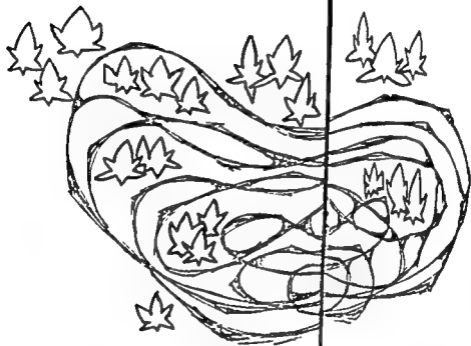
[चिन्तु जस रमायण का० ८ गा० १०]







शारदा  
भाग-१

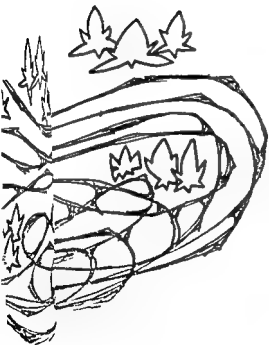


जेन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा प्रकाशन

मुंबई

# ज्ञान समुद्र

भाग-१ (क)



मुनि नवरत्नमल

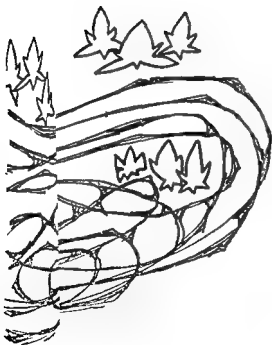
श्री  
१९७१



श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा प्रकाशन

# शासन सङ्ग्रह

भाग-१ (क)



मुनि नवरत्नमल

□ प्रथम संस्करण १९८१

□ मूल्य . बीस रुपये

□ प्रकाशक :

उत्तमचन्द सेठिया

भाष्यदा, श्री जैन स्वयम्भर तैराजधी महामभा  
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००१

□ मुद्रक : गणेश वाष्पोत्रिग एजेंसी द्वारा  
रुपाय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

## आशीर्वचन

हमारे धर्म-संघ का यशस्वी इतिहास है और यह प्रामाणिक रूप में मुरझित है। यह एक बिरल घटना है। यशस्वी इतिहास का होना दुर्लभ है, पर उसका मुरझित रहना अति दुर्लभ है। तेरापथ धर्म-संघ के सौभाग्य का यह एक समूचन है। यशस्वी इतिहास के बनने में तो समूचा संघ ही निमित्त है, पर इसकी मुरझा में संघ निमित्त नहीं बन सकता। इसमें सर्वत्रयम निमित्त बने हैं श्री मज्जयाचार्य, जिन्होंने अपनी सूझबूझ के कारण स्वामीजी से लेकर अपने समय तक का पूरा

उनके आभारी रहेंगे।

इस शृंखला में दूसरा स्थान बड़े कालूजी स्वामी का है, जिन्होंने शासन की कथा लिखकर उस इतिहास को और सुदृढ़ बना दिया। इसके बाद अनेकों

चार्य कालगणी के समय तो व्यवस्थित रूप से कथा लिखी जाने लगी। मुनि चौधमलजी, वर्तमान युवाचार्य महाप्रज्ञजी (तत्कालीन मुनि नयमलजी), मुनि दुलहराजजी एवं मुनि मधुकरजी ने इस कार्य में अपना पूरा योगदान किया। श्रावक समाज में श्री सतोपबन्दजी बरहिया तथा श्री श्रीचन्द्रजी रामपुरिया का नाम भी उल्लेखनीय है। श्रावकों में श्रीचन्द्रजी ने शासन-माहित्य के क्षेत्र में जितना कार्य किया तथा कर रहे हैं, यह विशेष उल्लेखनीय है। मुनि बुद्धमल्लजी ने प्राजल और सजी हृद् भाषा में तेरापथ का खोजपूर्ण इतिहास लिखकर आज की एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति की। उनका कार्य अब भी चालू है।

इन सबके बादजुद एक अपेक्षा अनुभव हो रही थी कि इतिहास का पूर्वापर संकलन कर उसे सभप्रता से लिखा जाए। इसमें आचार्य के निर्देश की अपेक्षा तो रहती ही है, पर नैसर्गिक रधि वाले लेखक की भी आवश्यकता रहती है। इस दृष्टि से मुनि नवरत्नमल हमारे सामने आया। उसकी अभिरुचि, परिश्रम तथा



## भूमिका

अभी हम जयाचार्य की निर्वाण शताब्दी मना रहे हैं। जयाचार्य का सम्बन्ध आचार्य भिक्षु से लेकर आचार्य तुलसी तक रहा है। वे आचार्य भिक्षु के उत्तराधिकारी भारद्वाजजी स्वामी की छत्रछाया में दीक्षित हुए और आचार्य भिक्षु के परम शिष्य मुनि हेमराजजी से उन्होंने विद्या-अध्ययन किया। इन दोनों के माध्यम से उन्होंने आचार्य भिक्षु तथा उनके सच के समय व्यक्तित्व को आत्मसात् कर लिया। 'भिक्षु जगद्गुरु', 'भिक्षु दृष्टान्त' आदि रचनाएँ उसका प्रमाण हैं। आचार्य ऋषिराय उनके दीक्षा गुरु और आचार्य वे। आचार्य ऋषिराय ने ही उन्हें तेरापथ का नेतृत्व सीखा था। आचार्य मधुवा उनके उत्तराधिकारी थे। माणवगणों उनके हाथ में दीक्षित हुए थे। डालनगी उनके शासन-वास में एक प्रसिद्ध साधु के रूप में विद्यमान थे। वृद्ध बालगणों और आचार्य तुलसी के समय तक उनके हाथों दीक्षित साधु-साध्वियाँ विद्यमान थीं। इस प्रकार जयाचार्य का व्यक्तित्व तेरापथ सच की सच्ची अवधि का स्पर्श कर रहा है।

जयाचार्य का चतुर्त्वं तेरापथ मय का शाश्वत स्पर्श करने वाला है। उनकी प्रज्ञा की रश्मियाँ चारों दिशाओं में विकीर्ण हैं। वे अतीत और भविष्य—दोनों का स्पर्श कर रही हैं। तेरापथ सच साधना और तत्त्वज्ञान की दृष्टि से जिनका समूह है, इतिहास की दृष्टि से भी उसका ही समूह है। हमें इस बात का गर्व है कि हमारे धर्ममय का इतिहास बहुत गौरवशाली है। हमें आवश्यक है कि आज से बड़े-सबसे पूर्व जयाचार्य ने इतिहास-संरक्षण का कार्य शुरू किया और उसकी श्रद्धा निरंतर चली रही। कहा जाता है कि भारतीय लोग इतिहास लिखना नहीं जानते। यह कहना बड़ा तर्क नहीं है। हमारी चर्चा में मैं नहीं जाना चाहता, किन्तु तेरापथ धर्ममय के विषय में यह बात सही नहीं है, यह कहा जा सकता है। जीवन चरित, शासन-विनाय, राजा, शासन-प्रभाव, प्रकीर्ण पत्र आदि अनेक रूपों में इतिहास लिखा जाता रहा है।

जयाचार्य की निर्वाण शताब्दी निमित्त बनी इतिहास के अनुनीकरण, संरक्षण और पुनर्स्थापन का। आचार्य तुलसी के शासन-काल में हमारे धर्ममय से संबंधित दो शताब्दी आलोचकों का अवनत उपस्थित हुआ। वि० सं० २०१७



प्रस्तुत कृति की रचना-शैली पद्य-गद्यात्मक है। प्रारम्भ में पद्य है। उनमें लिखित घटनाओं का विस्तार पद्य-शैली में किया गया है। भाषा परिष्कृत होती तो और अच्छा होता। पर इसमें मुख्य ध्यान सामग्री-संकलन पर ही दिया गया है। इस दृष्टि से भाषा भौण हो गई है। सामग्री-संशोधन की दृष्टि से प्रस्तुत कृति सचमुच ही शासन-समुद्र है। इसमें मुनि नवरत्नमलजी का श्रम और अध्यवसाय स्वयं बोल रहा है। आचार्यश्री तुलसी ने उन्हें जैन विश्व भारती (लाडनू) में रहकर कार्य करने का अवसर दिया और उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ उसका उपयोग किया। फलस्वरूप हमारे घर्ममघ के इतिहास का एक बड़ा संकलन पाठकों के हाथों में आ रहा है। आचार्यश्री तुलसी के शासन-काल में अनेक बृहद् प्रकल्प (प्रोजेक्ट) क्रियान्वित हुए हैं। उनमें इतिहास के प्रकल्प का प्रथम चरण भी क्रियान्वित हो रहा है। मुझे आशा है कि इसे पाठक रवि के साथ पढ़ेंगे, उनका ज्ञान संपूर्ण होगा और इतिहासकार को इतिहास के लेखन में बहुत सुविधा मिलेगी। इस प्रयत्न में मुनि नवरत्नमलजी को साधुवाद देना अनुपयुक्त नहीं होगा। हमारे सघ के अनेक साध्विया और साधु विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सेवाएं देकर शासन की श्रीवृद्धि कर रहे हैं। प्रस्तुत कृति का भी शासन की श्रीवृद्धि में निश्चित ही योगदान होगा।

अनुबन्ध-बिहार,  
नई दिल्ली,  
१५ अगस्त, १९८१

मुवाचार्य महाप्रज्ञ



साध-साध रो गिसो करै, ते तो आप आपरो मत ।

सुणज्यो से सँहर रा सोक, ए तेरापयी सत ॥

इस प्रकार आचार्य भिक्षु के समुदाय का नाम सहज ही 'तेरापय' विद्युत हुआ और हवा की तरह चारो ओर फैल गया। आचार्य भिक्षु ने मुना तो तन्नाल आमन से नीचे उतर कर वन्दन की मुद्रा में बहा—हे प्रभो ! यह तेरा पय है। (तेरा अर्घान् तुम्हारा पय)। उन्होंने तेरापय शब्द को अभिव्यक्ति देते हुए कहा कि जो पय महाशत, पय समिति व तीन गुणित का पालन करे वह तेरापयी—आपके पय का ही पयिक है।

तत्पश्चात् वि० स० १८१७ आषाढ़ शुक्ल १५ को केलवा (मेवाड़) में आचार्य भिक्षु ने अरिहत्ता की साथी में भाव-दीप्ता ग्रहण की, यहा से तेरापय की विद्युत् स्थापना हुई। स्वामीजी आदि १ साधु केलवा में और ८ साधु अन्य क्षेत्रों में थे। आनुमति के बाद सभी का मिलन हुआ पर आचार-विचार में सामंजस्य न बैठने के कारण ५ साधु पृथक् रहते और ८ साधु सम्मिलित हुए।

आचार्य भिक्षु ने इस प्रकार धर्म-क्रान्ति का सूत्रपात किया और प्रभु के पावन पद-चिह्नों पर चलने के लिए कटिबद्ध हुए। प्रारम्भ के अनेक वर्षों तक उन्हें भारी सपनों से लोहा लेना पड़ा पर ये सौहृदरूप चट्टान की तरह अडिग होकर अपने गमय पय की ओर अग्रगण्य गति में चरण बढ़ाते गए। अन्तर्गतवा उन्हें क्षणभंगुर गौरवपूर्ण सकलता मिली और धर्ममय मुद्रा बना। उनके समय में ही १०५ साधु-गाथी दीक्षित हो गए। उसरोत्तर वह तेरापय शतगात्री बट-बुझ की तरह पलता-फूलता गया। मवा दो भी वर्षों में आज वह इतना विस्तार पा गया है कि गाधारण शीतली से लेकर राजभवनो तक उसकी गूँज पहुँचने लगी है। विचट विषमताओं से आन्तर्गत इस आधुनिक युग की नैतिक जागरण का उद्बोधन देने वाला यह प्रमुख केन्द्र बन गया है।

समय गतिशील है वह आता है और चला जाता है। जो चला गया वह अतीत (भूत), जा रहा है वह वर्तमान और आने वाला भूतल (भविष्य) कहलाता है। तीन काम में होने वाले पदार्थ ज्ञेय है अथ ज्ञान स्वतंत्र विकासवर्ती हो जाता है सर्वज्ञ अतीत अतीत ज्ञान-रश्मियों में वैज्ञानिक पदार्थों की जान लेते हैं। परन्तु जो अज्ञ है उन्हें अनुमान आदि साधनों का सहारा लेना पड़ता है। अतीत का अध्ययन करने के लिए इतिहास प्रमुख माध्यम है। उसके बिना जन-साधारण तटस्थ ज्ञान से अछूता रह जाता है। समाज की जागृति के लिए वह बहुत अरक्षित है। जिस समाज का इतिहास नहीं होता उसकी प्रगति का माप अचटक हो जाता है। धर्मसमयों की भी यही स्थिति बन जाती है। किन्तु हमें सार्वजनिक दोष है कि हमारे दृष्टिपूर्व वर्तमान धर्मकार्यों ने पुरातन धर्मियों की निषिद्ध करने का उद्यम किया है।



## दीक्षा : एक सिंहावलोकन

(वि.सं. १८१७ आषाढ़ पूर्णिमा से सं. २०३८ आषाढ़ पूर्णिमा तक)

आचार्य का नाम	कुल दीक्षा		दिव्यवत		गणबाहुर		वर्तमान	
	साधु	साध्वी	साधु	साध्वी	साधु	साध्वी	साधु	साध्वी
१. आचार्य श्री भीमराजजी	४६	२६	२६	३६	२०	१७	०	०
२. " " भारीमानजी	३८	४४	३१	४१	■	३	■	०
३. " " रायचंदजी	७७	१६८	५३	१६३	२४	५	०	०
४. " " जीतमानजी	१०५	२२४	७१	२१३	३४	११	०	०
५. " " मधराजजी	३६	८३	२६	७८	१०	५	०	०
६. " " भाणवचंदजी	१५	२५	८	२३	७	२	०	■
७. " " बालचंदजी	३६	१२५	२६	१२४	१०	०	०	१
८. " " कासूरामजी	१५५	२५५	७०	१५६	४६	■	३६	६१
९. " " तुलसीरामजी	२१८	५०१	१६	४७	७१	१५	१२८	४३६
जोड़	७२६	१४८१	३३३	८८४	२३२	६६	१६४	५३१
कुल सध्या	२२१०	१२१७	२६८	६६५				

मेरी प्रारंभ में ही इतिहास के विषय में सहज अभिरुचि रही है। उसके लिए मैं यथाशक्य प्रयास भी करता रहा हूँ। कुछ समय पूर्व मैंने जमना साधु-साध्वियों की पञ्चात्मक जीवनिमा लिखी और इस का नाम "शासन-समुद्र रक्षा परम्पु परिपूर्ण सामग्री के अभाव में वह सागोपाग नहीं बन सका।

वि.सं. २०३१ में आचार्यश्री तुलसी ने श्री कृष्णरत्न में बृहद् मर्यादा महोत्सव किया। उस समय वाली धानुर्मास सम्पन्न कर मैं भी गुरुदेव के शरणों में पहुँचा। एक दिन मैंने आचार्यश्री के सम्मुख उक्त शासन-समुद्र की चर्चा करते हुए उसे व्यवस्थित रूप में तैयार करने की भावना अभिव्यक्त की। आचार्यश्री ने प्रसन्न मुद्रा में फरमाया—“हा शासन का इतिहास व्यवस्थित लिखा जाना बहुत आवश्यक है।” साथ-साथ ऐसा भी निर्देश दिया—“अपार्षदों की गतावधि निजट आ रही है अतः अपार्षदों द्वारा रचित समग्र साहित्य को संयोजित करना है। लेकिन ये दोनों कार्य यहाँ (आचार्यश्री के साथ) अथवा किसी निश्चित स्थान पर रहने में ही हो सकेंगे क्योंकि अनुकूल स्थान, आवश्यक माध्यम और समयावधि होने पर ही स्थायी कार्य हो सकता है।” मैंने दृढ़ सत्य के साथ



८. अवधान-विष्टा —स्मृति-विधाय वा यम—एक दिन में दो में डेढ़  
हजार तक अवधान करना ।
९. वषा —मेथुन, बिह, मिनाई, रसाई आदि ।
१०. प्रतिनिति —विभिन्न रोगों, विभिन्न यय प्रमाण आदि ।
११. तपश्चर्या —उपवासादिक में शोषासी, छहमासी, श्राव्णमासी,  
मन्तोत्तर, महाभन्तोत्तर, रत्नाक्षनी, तपुनिहृ निष्पी-  
डित तप तथा गलेखना स्तर, अनशन आदि ।
१२. मेवा —गुदकुम्भवात की तथा अन्य रोगी, तपस्वी, स्थाविर,  
नव-दीक्षित आदि की ।
१३. विनिष्ट-भाषना —शौन-महन्, भानारना, स्वाध्याय-अपान, मौन  
आदि ।
१४. धर्म प्रचार —दूर देश आदि में गमन, यात्रा परिणाम ।
१५. आचार्यों द्वारा पुरस्कृत—शमूकचय के काम, ब्राह्म में मुद्रा करना आदि ।
१६. ध्यानिगन महारण —उन्मेषनीय घटना आदि ।

भंजव-शामन में अनेक साधु-भाषी महान् साधना के धनी, घोर तपस्वी,  
सैद्यार्थी, शिक्षक, उच्छ्वसोट के साहित्यकार संग्रह (विनिवर्त्ता), कवि, वक्ता,  
धर्म-प्रचारक आदि हुए । उन्होंने शामन की अनुसंधी उन्नति करते हुए स्व-कल्याण  
किया और जन-कल्याण के दायित्व को निभाया । भगीरथ प्रयत्नों द्वारा धर्म-सध  
की प्रभावना करते हुए जैन शासन को गौरवान्वित किया ।

ऐसे संयमी पुरुषों की ज्वलन्त कहानियों में 'शामन-ममुद्र' स्वतः गरिमाप  
बन जाता है । समुद्र अगाध होना है उसकी चाह वाता दुसाध्य है, पर मैंने एक

.....  
.....  
.....

और साधियों के भाग अनन्त-अतन्त रहे गये हैं ।

इसमें मदांभत ग्रन्थों की सक्षिप्त सूची इस प्रकार है—

नाम	रचयिता
१. तैरापथ के तीन आचार्य <sup>१</sup>	जयाचार्य

१. इसमें जयाचार्य रचित भिक्षुशरमायण, लघु भिक्षुशरमायण, ऋषिराय-  
सुजग, ऋषिराय पंचडालिया गणी गुण वर्णन की डालें तथा मुनि हेमराजजी  
कृत—भिक्षु-चरित्र, भारीमाल-चरित्र एवं मुनि वैष्णोरामजी कृत भिक्षु-  
चरित्र है ।



१६. गुलाब-मुकुट  
 १७. बामुणजी जीवन-वृत्त  
 १८. बामुणजी श्रद्धाञ्जलि और मस्मरण  
 १९. मगन परिचय  
 २०. छोटी मनी का बोझानिया  
 २१. शामल प्रभाव  
 २२. सद्गुणों की दिव्यशक्ति  
 २३. मैटिया-सदृश  
 २४. तेरावण का इतिहास  
 २५. जय-श्रीराम  
 २६. जयबायें की साहित्यिक कृतियाँ  
 २७. माधु-माध्वियों द्वारा लिखित एवं प्रकाशित पुस्तकें विरच जादि ।
- महात्माजी का इतिहास है और उनके उत्तरण शिष्य गये हैं । उनके अनिर्वचन सुकृत्य माधु-माध्वी तथा श्यावको द्वारा गुनकर अनेक घटनाएँ मशहूर हुई हैं ।

योद्धा मगल में जाता है, उसे पीछे बचपाने वाला साथी मिल जाता है तो उसका मन भीगुना बढ़ जाता है और वह विजय-नाद करना हुआ यापस पर का दरवाजा मटपटाता है । पुत्र छोटी-बूढ़ों के लिए विदेश की सुदूर यात्रा करता है, उसे अभिभावक गण का शुभ आशीर्वाद मिल जाता है तो वह अपने शिष्य को गुरु कर मानद अपने माता-पिता के पास लौट आता है । शिष्य जीवन-विभाग के किसी भी क्षेत्र में प्रवेश करता है, उसे गुरु का स्नेह-मरुत आसन्न और मगल सदैव मिल आता है माँ वह दुःख में दुःख कार्य को भी हसते-मोहते गान्धर्व भाव-विभोर होकर गुरु-चरणों में ओत-प्रोत बन जाता है ।

मैं जो इनके विशालकाय समुद्र के किनारे तक पहुँच गया यह मेरे जीवन-उन्नायक, प्रगति पथदर्शक, श्रद्धास्त्र आचार्यश्री तुमगी की अमोघ अदृश्य शक्ति का ही अमिट प्रभाव है करना हम ब्रह्म-वाय, अल्प बुद्धि चरण-रज से पाँव-मात साज की अन्यायधर्म में इतना बड़ा कार्य होना दुष्कर, महात्मा दुष्कर था । मैं आचार्यश्री के इस असीम उपकार व माहुर्य को शब्दों की सीमा में नहीं बाध सकता । आचार्यश्री की उत्साहपूर्ण प्रेरणा के साथ-साथ युवाचार्यश्री महाप्रज्ञा की मार्ग-दर्शन भी मुझे पाथेय की तरह समय-मसम पर मिलता रहा । इतिहास-विद्वान् मनिश्री ब्रह्ममलजी, माणिकमलजी और माणिकमलजी का विचार-निर्दिष्ट



## प्रकाशकीय

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी महासभा तेरापथी समाज की एक सार्वभौम संस्था है। पिछले पाँच दशकों से यह संस्था बड़ी निष्ठा एवं लगन से समाज की सेवा करती आ रही है। संस्था का एक उज्ज्वल इतिहास है। जिस पर हर तेरापथी को सात्विक गौरव की अनुभूति होती है।

महामभा ने समय-समय पर अनेक प्रवृत्तियों का कुशलता पूर्वक संचालन किया है। इनमें एक प्रमुख प्रवृत्ति है धार्मिक एवं सामाजिक साहित्य के प्रकाशन की। महासभा के द्वारा प्रकाशित साहित्य का हमारे समाज में अच्छा आदर हुआ है। अन्य समाज के प्रबुद्ध लोगों ने भी हमारे साहित्य की भूरि-भूरि सराहना की है।

विगत कुछ वर्षों में महासभा के द्वारा साहित्य-प्रकाशन का कार्य स्थगित था। इस बार हमने थड्यास्पद आचार्य प्रवर से इस कार्य को प्रारम्भ करने के लिए आशीर्वाद मागा। गुरुदेव ने अत्यन्त कृपा करके हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

मुनिश्री नवरत्नमत्तजी द्वारा लिखित 'शासन-समुद्र' भाग-१ (क) को प्रकाशित करते समय महासभा प्रसन्नता का अनुभव करती है। ध्वज्य आचार्य प्रवर के निर्देशन में मुनिश्री ने इस ग्रन्थ को बड़े परिश्रम से तैयार किया है। इस ग्रन्थ के दूसरे भाग भी बहुत जल्दी महामभा के द्वारा प्रकाशित होंगे।

हमें पूर्ण विश्वास है कि जिस प्रकार अतीत में महासभा द्वारा प्रकाशित ग्रंथों को समाज में आदर मिला है, उसी प्रकार इस ग्रंथ को भी स्वीकार किया जाएगा।

मैं एक बार पुनः थड्यास्पद आचार्य प्रवर के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ और आशा करता हूँ कि महासभा भविष्य में भी साहित्य-प्रकाशन का काम करती रहेगी।

अमपुर

१५ अगस्त १९८१

उत्तमचन्द्र सेठिया

अध्यक्ष

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी महासभा,

कलकत्ता



## अनुक्रम

### प्रथमाचार्य श्री भिक्षुगणी का शासनकाल

आराध्य-स्तुति	३
१. मुनिश्री विरपालजी (साबिया)	६
२. मुनिश्री फतेहचंदजी (साबिया)	६
३. प्रथमाचार्यश्री भिक्षुगणी	१६
परिशिष्ट १ (क)	२६४
परिशिष्ट १ (ख)	२७४
परिशिष्ट २	२७६
परिशिष्ट ३ (क)	२८४
परिशिष्ट ३ (ख)	२८३
४. श्री धीरमाणजी (मोजत)	३००
५. मुनिश्री टोकरजी	३०८
६. मुनिश्री हरनाथजी	३०८
७. द्वितीयाचार्य श्री भारीमातजी	३१३
परिशिष्ट १ (क)	३६३
परिशिष्ट १ (ख)	३७१
८. सिखमोजी	३८१



## शासन-समुद्र

प्रथमाचार्य श्री भिक्षुगणेश का शिष्य

(वि० सं० १८१७-१८८०)

बोहा

महामना श्री भिक्षु के, युग में प्रति  
इष्ट देव स्मृति कर लिख, उन गुरु शिष्य

### मुक्तक

वर्तमान का ज्ञान विनाश से होता है  
और अनागत का ज्ञान विश्वास से होता है।  
मनुष्य कितना ही पढ़ा-लिखा क्यों न हो पर  
अतीत का ज्ञान इतिहास में होता है।

## आराध्य-स्तुति

बोहा

'कृपभ' कृपभ नर-कृपभ मे, आदिम त्रिन अवतार ।  
 'अत्रिन' अत्रिन नर-देव मे, स्वय त्रिनेन्द्रिय द्वार ॥१॥  
 'गभय' हस्ते भय - भयन, भस्ते नय - आराध्य ।  
 'अभिनन्दन' है वगुन, अभिनन्दन के योग्य ॥२॥  
 'गुमति' गुमति - दाता सदा, दिग्विजये सत्पथ ।  
 'पय' पयवन् स्वच्छतर, भरते गुरभि अनन्त ॥३॥  
 'श्रीगुणान्' साने सतत, समता श्री को पाम ।  
 'वन्द्यप्रभ' मयवन्द्यवन्, उग्रजाने उन्नाग ॥४॥  
 'गुविधि' गुविधि निर्माण की, सतताने साकार ।  
 'गीतन' गीतन कर रहे, भर गिता - रग छार ॥५॥  
 करते हैं 'धेपाय' त्रिन, जन - जन का कल्याण ।  
 'वागुपूज्य' गुर - पूज्य हैं, तीन लोक के प्राण ॥६॥  
 विदिन 'विमन' की विगमता, श्फटिक रत्नवत् स्पष्ट ।  
 चार अनन्त 'अनन्त' के, प्रातिहार्य गुण अष्ट ॥७॥  
 'धर्म' धर्म - गुरु - देव के, व्यापराता अविकार ।  
 गानि 'गाति' के नाम मे, मिलती है हर चार ॥८॥  
 हर कर 'कंघु' कपाय-दन, साते नया घनान्त ।  
 'अर' अरि - चत्रयूह का, करते भेद सुरत ॥९॥  
 'मलि' महागुण - लीध के, पहंचे ऊंचे रथान ।  
 'मुनिगुत्रन' हो ध्यान - रत, साये अद्भुत शान ॥१०॥

१. अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त बल ।

२. भोजन-वृक्ष, पुण-वृष्टि, दिव्य ध्वनि, देव-दुग्ध, श्फटिक-नीलहामन, भामण्य, छत्र, चापर ।

‘नमि’ वर त्यागी उन्नतम, सब देवों में दृष्ट।  
 ‘नेमि’ विरत हो विश्व में, पाये पद उत्कृष्ट ॥११॥  
 ‘पार्थ’ पार्थमणि प्रमुखतम, विकसित दर्शन - ज्ञान।  
 अन्तिम अहंन् अति यत्नी, ‘महावीर’ भगवान् ॥१२॥

### सोरठा

आगम रचनाकार, त्रिपदी के आधार पर।  
 एकादश गणधार, इन्द्रभूति आदिक प्रवर ॥१३॥  
 गणधीन पटधार, युगप्रधान पूर्वभुतो।  
 रही सूत्र अनुसार, बालू जैन परम्परा ॥१४॥

### सामायण-छंद

‘मिश्र’ मिश्रगण के अधिनेता, ‘भारी’ भारीमान गणी।  
 ‘रायचन्द्र’ कृषि शरच्चन्द्रयन् ‘जय’ चिन्मय वैदूर्य मणी ॥  
 मयया माणक दानिम बालू तुलसी प्रभु प्रतिभाशाली।  
 एव एव मे हृष्ट अधिपतिर सद्य - प्रभावक गणमाली ॥१५॥  
 कर मौर्यरत्न, गणधर, पटधर, नी आचार्यों को वन्दन।  
 परमेश्वरी गणर को जगता नेता चार शरण पावन ॥  
 मेरागण के गणन गणोपन मुनि जन का वर्णन रुचिकर।  
 रचना हूँ मद्गुरु - कृपया तन मन में अनि स्थिरता धर ॥१६॥  
 अगणित गणित-सिन्धु गणर के अगणित कृतदायी के कूल।  
 अगणित गणित विरिटर के मणि अगणित भू के रत्नकण मूल।  
 गणन का शिखर यदा है उषा अम्बर की लम्बाई।  
 उषाई है मेरुदण्डन् महागिन्धुवन् महाराई ॥१७॥  
 प्रग - बृहत् प्रग - गणित में अग - कणा - पट्टा - समीत।  
 अग - भार मे आचार्य हो, शीघ्र रहा कुछ-कुछ नवनीत।  
 परमागण इष्ट - देवों को सम्भाषण मे गणन विचार।  
 गणन दूर विचित्र हृदय मे कार्य रूप मे साधारण ॥१८॥

## ਪੰਜਵੇਂ ਪਾਠ

### ਭਾਗ

ਭੀਮਾਰਾਜਾ ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦੇ ਦੇ ਭ੍ਰਾਤਰ ਸ੍ਰੀ ਭੀਮਾਰਾਜਾ ॥  
 ਭੀਮਾਰਾਜਾ ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦੇ ਦੇ ਭ੍ਰਾਤਰ ਸ੍ਰੀ ਭੀਮਾਰਾਜਾ ॥੧੩੧॥  
 ਭੀਮਾਰਾਜਾ ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦੇ ਦੇ ਭ੍ਰਾਤਰ ਸ੍ਰੀ ਭੀਮਾਰਾਜਾ ॥  
 ਭੀਮਾਰਾਜਾ ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦੇ ਦੇ ਭ੍ਰਾਤਰ ਸ੍ਰੀ ਭੀਮਾਰਾਜਾ ॥੧੩੨॥  
 ਭੀਮਾਰਾਜਾ ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦੇ ਦੇ ਭ੍ਰਾਤਰ ਸ੍ਰੀ ਭੀਮਾਰਾਜਾ ॥  
 ਭੀਮਾਰਾਜਾ ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦੇ ਦੇ ਭ੍ਰਾਤਰ ਸ੍ਰੀ ਭੀਮਾਰਾਜਾ ॥੧੩੩॥  
 ਭੀਮਾਰਾਜਾ ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦੇ ਦੇ ਭ੍ਰਾਤਰ ਸ੍ਰੀ ਭੀਮਾਰਾਜਾ ॥  
 ਭੀਮਾਰਾਜਾ ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦੇ ਦੇ ਭ੍ਰਾਤਰ ਸ੍ਰੀ ਭੀਮਾਰਾਜਾ ॥੧੩੪॥

## १. मुनिश्री थिरपालजी\* (लाविया)

(समय-पर्याय सं० १८१६-१८३३)\*

## २. मुनिश्री फतेहचंदजी (लाविया)

(समय-पर्याय १८१६-१८३१)

समय—बगीची निम्बुआ की...

नींव स्थिर शासन की, शासन की सुख आसन की ।

जम पाई अति सगीन । नींव स्थिर...

थिरपाल प्रथम मुनि पीन । नींव...

सुत फतेहचंद सह सीन । नींव...॥ध्रुव०॥

मरु-भू में पुर 'लाविया', था ओसवश विख्यात ।

जयमलजी के पास में, दीक्षित पहले सुत तात' ॥नींव...१॥

राजनगर में कर दिया, चीदह का चातुर्मास ।

सच्ची श्रद्धा का प्रकट, दिखलाया कुछ आभास ॥२॥

\* आचार्य निम्बु के समय से लेकर अद्यावधि दीक्षित समस्त साधु-साध्वियों की सूची रहती है, उसी सूची का क्रम का सूचक १ अंक है । अतः सर्वत्र साधु-साध्वियों के नाम के पहले या बाद में दी गई जम-संख्या को उक्त प्रकार समझना चाहिए । साधु-साध्वियों की सूची पुष्क-पुष्क है । कही ५०।२।१ हो तो समझना चाहिए कि मूल क्रमांक ५० और दूसरे आचार्य भारीमालजी के समय के प्रथम संत है । सर्वत्र इसी प्रकार समझना चाहिए ।

\* विष्णु सवत् श्रृंग शुक्ला १ ॥ बदलता है, परन्तु जैन तथा कुछ जैन तथा परम्परा में यह भावना कृष्णा १ को बदलता है । इस ग्रंथ में प्रायः इसी सवत् का उल्लेख है । जहां विष्णु सवत् का उल्लेख है वहां स्पष्ट कर दिया गया है ।

पन्द्रह में श्री भिक्षु को हो पाया बोध - विकास ।  
 रूपचन्द्रजी ने किया, मोक्षह का वर्षावास ॥२॥  
 कड़ी परस्पर जुड़ गई, पहले से कुछ अमात ।  
 सत्य शान्ति के समय में, ये हुए भिक्षु के साथ ॥४॥  
 तेरह मुनियों ने ग्रहण, की दीक्षा भाव प्रधान ।  
 सोन जगह पावस किये, आचार्य भिक्षु को मान ॥५॥  
 एकत्रित मय फिर हुए, पर मिला न श्रद्धानार ।  
 पूयक् पांच तब हो हुए, रह गये आठ अपगार ॥६॥  
 पितापुत्र जोड़ी मिली, गण-वनिका खिली विमोह ।  
 भाग्यवती गुरु भिक्षु के, सहयोगी रहे हमेशा ॥७॥  
 नव दीक्षा के समय में, देकर के गहरा ध्यान ।  
 बड़े रंगे श्री भिक्षु ने, मुग मुनि को दे सम्मान ॥८॥  
 उभय समय में बँटना, करते थे भिक्षु महान् ।  
 विनयवान दोनों श्रुती, रखते उनका ब्रह्मदान ॥९॥  
 भक्ति भाव करते बहुत, थी गुरु सह अन्दर प्रीति ।  
 शामन में स्थिर स्तम्भवन्, दुःख-निपट्टा निर्मल ॥१०॥  
 किस टोले के साथ है ? हम भिक्षु-संग छत्रम् ।  
 चर्चा पूछो भिक्षु को, ये दोगे उत्तर मन्त्र ॥११॥  
 अप्रगण्य हो विचरते, 'कोटा' पहुँचे एक दिन ।  
 दर्शनच्छत्र राजा हुआ, तब तत्क्षण दिया निमन्त्र ॥१२॥  
 हम साधारण साधु हैं, आचार्य भिक्षु ब्रह्म ।  
 दर्शन उनके कर सही, वे लें प्रतिदोष निमन्त्र ॥१३॥  
 निस्पृह निर्मल गरल दित, निर्वाणी श्रद्धा ।  
 आत्माधी अन्तर्मुखी, आदर्श पुराण ब्रह्म ॥१४॥  
 घूरी वर्षावास में, दिया नाम - गुरु के ब्रह्म ।  
 सहजम्मा बाघव धुगल, दीक्षित हो गये मन्त्र ॥१५॥  
 पनजी को दीक्षित किया, लो नेत्र-मन्त्र ॥१६॥  
 वीरमाण पनजी सहित, पावस कर मन्त्र ॥१७॥  
 बड़े तपस्वी तप रसिक, रहते थे मन्त्र ॥१८॥  
 खड़े-खड़े जप ध्यान भी, करते थे मन्त्र ॥१९॥  
 बने सहायक भिक्षु के, जब रहे मन्त्र ॥२०॥  
 कहा...आप श्रम कौजिये, तब रहे मन्त्र ॥२१॥  
 गुरु आज्ञा से विचरने, मन्त्र रहे मन्त्र ॥२२॥  
 आये 'बड़लू' ग्राम में, कहे रहे मन्त्र ॥२३॥

युगल श्रमण की साधना, चली है दिन में रात ।

पत्तेहचन्द मुनि ने किया, तप मत्त माग (३७ दिन) का उन्न ॥२०॥

तब—मन्दिर में जाई—

मुद्रित ने भिक्षावृत्ति में मिनो,

ठंडी बाजरे की यह घाट । मुद्रित ० ।

खाकर तो परम की वाट ॥ मुद्रित ० ध्रुव ० ॥

अधिम मुनि को फिरते-फिरते, मिला शीतलाहार ।

जैसा गृहि के घर में होता, यंग पात्राधार ॥२१॥

लिए साधु के कही न बनता, किन्ति भोजन पागी ।

बना बनाया दे दाता तो, से सते समुदानी ॥२२॥

कठिन साधना कठिन नियम है, जीवन भर एक सार ।

स्वस्थ और अस्वस्थ समय में, है न अलग आगार ॥२३॥

पिता साधु ने कहा पारणा, करो पत्तेह ! घर मोद ।

विकृत अशन से आयु पूर्ण कर, पहुँचे स्वर्ग की गोद ॥२४॥

तब—बगीची निम्बूआ की—

धिरपाल श्रमण मुनि पाम में, आये कर उग्र विहार ।

नही अकेला विचरता, पचम अर में अणगार ॥२५॥

अन्तिम पावस धरवा, कर लाये अधिक निघार ॥

सतलेखन तप की ग्रही, कर में दृढ़तर तलवार ॥२६॥

दर्शन कर नर नारिया, देते हैं झुक-झुक धोक ।

विविध त्याग कर भर रहे, आध्यात्मिक नव आलोक ॥२७॥

ऊर्ध्व विचारों में किया, अनशन-यत दुःखरुकरार ।

दिवस एक दस से फना, उतरे हैं भव जल पार ॥२८॥

अष्टादस तेतीस की, ग्यारस कृष्णा गुरुवार ।

प्रथम सितारे संध के, स्वर्गों में गये सिधार ॥२९॥

थावक नेमोदास कृत, दो डाले प्राचीन ।

ध्यात आदि में भी लिखा, विवरण तत्कालीन ॥३०॥

१. मुनि पिरपालजी और फतेहचंदजी का गांव साबिया (मारवाड़) और वन ओसवाल था। उनके पिता का नाम राहसिहजी था।

पहले उन दोनों ने स्थानकवासी आचार्य जयमलजी के पास दीक्षा स्वीकार की थी। पिरपालजी पत्नी विमोय के परचात् और फतेहचंदजी अनुमानतः अविवाहित वय में दीक्षित हुए थे।

सुबानगढ़ निवासी लिखमीचंदजी दूगरवाल द्वारा संकलित गत विवरणिका में भी ऐसा लिखा हुआ है।

२. दोनों मुनि जब जयमलजी की सम्प्रदाय में थे तब उन्होंने ४ साधुओं — १. पिरपालजी २. फतेहचंदजी ३. वज्रमलजी ४. भारमलजी हैं त. १८१४ का चातुर्मास राजनगर में किया। वहां उन्होंने सच्ची थड़ा की कुछ बातें कहीं— 'नव सरवों के ज्ञान के बिना सम्यक्त्व नहीं सम्यक्त्व के बिना व्यावक्त्य और साधुत्व नहीं। बेचलजानी की आज्ञा के बिना धर्म नहीं, व्रत में धर्म, अव्रत में पाप। मोक्ष-अनुक्या में पाप, सावध अनुक्या में पाप।'

जब जयमलजी ने उक्त प्रदपणा करने की बात सुनी तो उन्होंने इसका निषेध किया।

स. १८१५ में स्वामी ओछणजी ने ५ साधुओं (१. स्वामीजी २. भारीमालजी ३. टोकरजी ४. हरनाथजी ५. बीरमाणजी) से राजनगर चातुर्मास किया। वहां उन्हें बोधि-प्राप्ति हुई।

स. १८१६ में स्थानकवासी रूपचंदजी आदि साधुओं ने राजनगर चातुर्मास किया। उक्त थड़ा की बातें उनके भी ज्ञाप्यी।

स्वामीजी ने स. १८१६ का चातुर्मास जयमलजी के साथ ओछपुर किया तब उनके तथा मुनि पिरपालजी फतेहचंदजी आदि के पूर्ण रूप से स्वामीजी की थड़ा बैठ गई। ऐसा दृष्टांत १३ में लिखा है।

आचार्य भिन्दू ने स० १८१६ खैत्र शुक्ला ६ को स्थानकवासी सम्प्रदाय से पूषक होकर धर्म प्राप्ति का सूत्रपात किया तब १३ (५ रूपनाथजी के ६ जयमलजी के और २ अन्य टोले के) साधु मिले। जो प्रायः राजनगर चातुर्मास करने वाले ही थे।

१. साबिया नगर मुहामणी, त्यां ऊंचे कुल अवतारो जी।

पूर्व पुण्य पसाय थी, सहयो मानव भव सारो जी।

माय ओसवाल घर जनमिया, साहा राहसिहजी घर जामो जी।

(श्यावक नेमीदास कृत गुण व० डा० १ पा २, ३)

२. हम कृति में मुनि हेमराजजी से सुनकर जयाचार्य द्वारा संग्रहीत की गयी स्फुटकर घटनाएँ हैं।

नई दीक्षा ग्रहण के पूर्व स्वामीजी आदि १३ ही साधु राजनगर में एकत्रित हुए। वहाँ सभी ने नई दीक्षा लेने का निर्णय किया। छोटे बड़ों का प्रथम पहने की तरह ही रखा। सब में रूपचन्दजी बड़े रहे। स्वामी भीष्मराजजी को आचार्य रूप में माना। जिस साध में चानुर्माण करें वहाँ मन्त्री पुन पक्ष महात्रय स्वीकार करने का निर्देश दिया गया। १३ साधुओं ने तीन मिथाडो के रूप में निम्नोक्त स्थानों में चानुर्माण किया।

१. रूपचन्दजी वरानमन्त्री ठाणा ४ बूरी।

२. भीष्मराजजी स्वामी ठाणा ५ केलवा

३. विरपालजी स्वामी ठाणा (ठाणें तथा स्थान का उल्लेख नहीं है पर चार टहरते हैं।)

वहाँ सभी ने आपाङ्ग मुक्ता १५ को नई दीक्षा ग्रहण की।

मुक्त आचार का पालन न कर सकने के कारण रूपचन्दजी चानुर्माण में ही अलग हो गये। चानुर्माण के बाद १२ साधु मिले। उनमें बख्तरामजी और गुनाव जी बालवादी हो गये। भारमलजी (द्वितीय) और प्रेमजी का भानार-विचार न मिलने से सम्बन्ध साध में नहीं रहा।

इस प्रकार ५ साधु प्रारम्भ से ही अलग रहे। आठ साधुओं का सम्बन्ध शामिल रहा। उनके दीक्षा-पर्याय के प्रथम से नाम इस प्रकार हैं—

१. विरपालजी २. पतेहचन्दजी ३. आचार्य श्री भीष्मराजजी ४. वीरभानजी ५. टोकरजी ६. हरनाथजी ७. भारीमालजी ८. लिखमोजी।

(पुर निवामी महात्मा मोहनलालजी से प्राप्त प्राचीन पत्रों के आधार से)

दृष्टान्त १३ में लिखा है कि स्वामीजी ने आचार्य जयमलजी के साथ स० १८१६ का चानुर्माण जोधपुर किया तब आचार्य जयमलजी के तथा विरपालजी, पतेहचन्दजी आदि साधुओं के दिन में स्वामीजी द्वारा निर्माण धडा बैठ गयी।

स० १८१६ पत्र मुक्ता ६ को बगधी में स्वामीजी के स्थानस्थानी मन्त्रदाय से अलग होने के पश्चात् मारवाड़ के किमी क्षेत्र में आचार्य जयमलजी के शिष्य विरपालजी, पतेहचन्दजी आदि ६ साधु स्वामीजी के सामिल हो गये। स्वामीजी ने चानुर्माण नियुक्त कर सभी को आपाङ्ग मुक्ता पूर्णमा को भाव-दीक्षा ग्रहण करने का आदेश दे दिया। फिर स्वामीजी आदि सभी साधु मेराड़ की तरफ पधार गये और पूर्व निर्दिष्ट नियम को यथास्थान नई दीक्षा स्वीकार कर ली।

उक्त वर्णन आचार्य धिनु के प्रकरण में विस्तार पूर्वक दिया गया है।

स्थानों में लिखा है कि मुनि श्री विरपालजी और पतेहचन्दजी ने जयमलजी के सम्बन्ध को छोड़कर स्वामीजी के साथ नई दीक्षा ली और उन्होंने आजीवन

स्वामीजी को प्राणप्रण से सहयोग दिया ।

शासन विलास<sup>१</sup> डा० १ गा० १ में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है—

‘भिक्षु गुण में पिता पुत्र नी जोड़ कै, स्वामी विरपाल ने फतेहचंद भलाजी ।

भिक्षु साथे चरण लियो घर कोड कै, जयमलजी मां गू नीकल्या जी ।’

३. स्वामीजी ने मुनि श्री विरपालजी और फतेहचंदजी को दीक्षा में अपने से बड़ा रखा । इसका कारण था कि वे दोनों जयमलजी की सम्प्रदाय में स्वामीजी से पहले दीक्षित हुए थे ।<sup>२</sup>

(ध्यात)

४. स्वामीजी बंदना के समय धाजोट से नीचे उतर कर इन दोनों सत्तों को लोगों के सामने दिग्विजय बंदना करते थे ।<sup>३</sup>

(ध्यात)

५. दोनों मुनियों को कोई व्यक्ति पूछता कि आप किस टोले के साधु हैं । वे निःसंकोच कहते—‘हम भीखणजी के टोले के साधु हैं ।’

कोई उनको चर्चा पूछता तो वे कहते—भीखणजी से पूछो, वे जो कहें वही सत्य है । हमें पूरी जानकारी नहीं है ।’

इस तरह स्वामीजी के प्रति हार्दिक प्रीति व अखंड आस्था थी ।<sup>४</sup>

६. मुनि विरपालजी मुनि फतेहचंदजी के साथ सिषाडबध रूप में विचरते-विचरते एक बार कोटा पधारे । बहा का राजा उनके दर्शनार्थ आने के लिए उत्सुक हुआ । इसका पता लगते ही उन्होंने बहा से विहार कर दिया<sup>५</sup> और कहा—आचार्य

१. जयाचार्य द्वारा रचित ।

२. आगे बूढ़िया माहि बड़ा हूता, सो बडा रा बडा राखू ।

यां नै छोटा कर नै हूं बड़ो हुवू इण में स्पू फल चाखू ॥

(जयाचार्य रचित मुनि विरपाल गुण वर्णन डा० १ गा० ३)

३. पद आचार्य हो भिक्षु बुद्धि ना भटार जन बहु देखता मुक्ति सू ।

आप सूकी हो पद नो महकार कर जोरो बन्दना करे भक्ति सू ॥

(भिक्षु जय रसायण डा० ४४ गा० २)

४. कोई पूछै सत दोनू भणी, ये किण रा टोला रा सोय ।

ते कहै भीखणजी रा टोला तणा, ऐमा नियवीं दोय ।

चर्चा बोल कोई पूछता, दोनू सत भाखतो ।

भीखणजी नै पूछ निर्णय करो, भीसू कहै सो ततो ॥

(मुनि विरपाल गुण वर्णन डा० १० गा० ५, ६)

५. कोटे आप पधारिया, महिपति जावणहार ।

साभल नै ते सत बिहुं, ततधण कियो बिहार ॥

(भिक्षु जय रसायण डा० ४४ दो ८)

भिष्णु यहाँ पधारने वाले हैं अब उनके दर्शन करना विशेष ठीक रहेगा क्योंकि हम तो साधारण साधु हैं।'

ऐसे निरभिमानी साधु थे।

(ध्यात)

७ मुनि श्री ने बूढ़ी चानुर्मास किया तब उनके उपदेश में युगल-जन्मा दो भाई रामजी तथा रामजी तैरापय के अनुयायी बने और स० १८३८ में आचार्य भिष्णु के पास दोनों ने दीक्षा ली।

(मुनि रामजी रामजी की वृत्तान्त)

८ सन् १८३२ के अस्तितगत लेखपत्र क्रमांक ८ में है कि वीरमाणजी (४) ने एक बार पनजी (१७) से कहा — 'तू तपस्वी मुनियो—पिरपालजी, फतेहचंद जी का चेला सोनुपता (गाने के सासल) ने बना।' इससे ज्ञात होता है कि पनजी (१७) ने उनके पास दीक्षा ली। वीरमाणजी तथा पनजी ने मुनि श्री पिरपालजी फतेहचंदजी के साथ सन् १८३१ के पूर्व (मुनि फतेहचंद जी के स्वर्ण-दमन के पहले) एक चानुर्मास किया। उक्त लेखपत्र में ऐसा भी प्रतीत होता है।

९ दोनों मुनि बड़े तपस्वी हुए। वे शीतकाल में शीत सहन करते, उष्णकाल में आतापना लेते तथा छडे-छडे ध्यान करते।'

(ध्यात)

१० आचार्य भिष्णु ने लोगों को धर्म न समझते हुए देखकर एकान्तर तप और मरी की धूल में आतापना लेना प्रारम्भ कर दिया। उनकी उत्कट तपस्या एवं साधना से लोग आकर्षित होने लगे। तब दोनों मुनियों ने स्वामीजी को धर्म-प्रचार के लिए प्रेरणा दी। बूढ़े साधुओं के कथन को मानकर स्वामीजी जन-कल्याण के लिए उद्यत हुए।'

११ स० १८३१ में मुनि पिरपालजी और फतेहचंदजी विहार करते हुए बड़लूँ पधारे। वहाँ मुनि फतेहचंदजी ने ३७ दिन का तप किया। पारण के दिन मुनि पिरपालजी भिष्णु में टहरी बाजरे की घाट लेकर आये। मुनि फतेहचंदजी

१ तपारा तप नो अधिको विचार, कायर गुण कपे घनार ।

अति पामे हो मूरा हरष अपार सन दोनू ही सुहायनः ॥

(भिष्णु जगन्नाथ द्वा० ४४ भा० ९)

२ तपना कस रहै आगम तारणी, अधिक पोहच नही और हो ।

आन तरो बं तारो अवर में आओ बुद्धि नो जोर हो ॥

सन बडा रो कवन सीनू मुनी, धारयो घर बिन धीर हो ।

प्याय विनय बनावना निरमचा, हरयो शिखो होर हो ॥

ने उसे समता-पूर्वक खाया पर बिकृति पैदा होने से वे उभी दिन दिवगत हो गए ।'

हुलामजी जती द्वारा रचित शासन प्रभाकर डा० २ गा० १२० में ३१ दिन के तप का उल्लेख है जो गलत है ।

१२. क्यात में लिखा है कि मुनि श्री फतेहचंदजी के सं० १८३१ में स्वर्ग-गमन के बाद मुनि बिरपालजी ने खेरवा में साधुओं के समीप आकर 'सलेखना' प्रारंभ कर दी । परन्तु अनुसंधान से ऐसा प्रतीत होता है कि मुनि फतेहचंदजी के स्वर्गवास के बाद मुनि बिरपालजी साधुओं के पास आये और एक वर्ष लगभग बिचर कर फिर उन्होंने सं० १८३२ आषाढ़ महीने से खेरवा में सलेखना तप चालू किया । ऐसा मानने से आगे दिया गया सलेखना तप का मिलान बराबर बैठना है ।

सं० १८३३ में मुनि बिरपालजी ने खेरवा चातुर्मास किया । उस समय उन की सेवा में मुखरामजी ६ और तिलोकचंदजी १२ थे ।'

क्यात एव शासन विलास डा-१, या-४ से ६ में उनके सलेखना तप का वर्णन इस प्रकार मिलता है ..

१४, २, ८, ८, २, २, २०, ३, ३, १६, ४, ४, ६, ५, ५, ८ ।

श्रावक नेमीदास कृत ढाल में इस प्रकार है

१४, २, ८, ८, २, २, २, २०, ३, ३, १६, ४, ४, ६, ५, ५, ८ ।

उत्पुंजन दोनों उद्धरणों में केवल एक बेले का अन्तर है । क्यात और शासन विलास में आठ के बाद दो बेले लिखे हैं और ढाल में तीन बेले हैं ।

शासन प्रभाकर में लिखित तपस्या के अतिरिक्त एक १६ का थोकड़ा अधिक लिखा है जो गलत है ।

शासन-विलास, क्यात एव बिधु मल रसायण में उनके सलेखना तप के १४ पारणों का उल्लेख है—'आसरे चबई किया वही' यह सही नहीं है, क्योंकि जब

१. फतेहचंदजी बरलू जगीस, भीष्मा तप दिन प्रवर सीतीस ।

ठंडी बाजरी भी घाट ताम, आण दीघी बिरपालजी स्वाम ॥

फत्ता पारणों करते एह, मुनि व्याहार भोगवियो तेह ।

तिण जोग स्पु कर गया काल, अष्टादश इकतीसे न्हात ॥

२. समाधि मरण की भावना से शरीर को कृष्ण करने के लिए की जाने वाली तपस्या सलेखना कहलाती है ।

(शासन विलास डा० १ गा० २, ३)

३. कई साधु सुखोजी तिलोकजी, बिने विधावन रे इधकार जी ।

(था० नेमीदास कृत गु० व० डा० २, गा १७)

शामन-विनाश और क्यात में तपस्या के अंक १६ बार हैं तो पारणे के दिन १६ कर्मे हो सकते हैं ?

ज्ञान में तपस्या के अंक १॥ बार और पारणे के अंक १७ हैं—'सर्व पारणा मतरे क्रिया' (दा० २, पा० १५)। इस प्रकार क्यात आदि में तथा ज्ञान में तपस्या के एक अंक का फल पड़ता है परन्तु ज्ञान में तपस्या एवं पारणे की निधियों तथा वारों का भी क्रमशः उल्लेख किया गया है, अतः वह ठीक लगता है।

मुनिश्री ने ज्ञान के अनुसार आपाद अमावस्या रविवार को सर्वप्रथम १५ दिनों की तपस्या का प्रत्याख्यान किया।<sup>१</sup> आपाद पूर्णिमा को पारणा करके अमा किया और उसका पारणा श्रावण कृष्ण ३ गुरुवार को किया, फिर दो अष्टमियों की और पारणा श्रावण शुक्ल ७ सोमवार (बीच में एक तिथि घटी है) को किया, फिर क्रमशः २, २, २, २०, ३, ३ की तपस्याएँ की और पारणा प्रथम भाद्रव पूर्णिमा गुरुवार को किया, फिर द्वितीय भाद्रव से क्रमशः १६, ४, ४, ६, ५, ५, ८ की तपस्याएँ की और पारणा आश्विन शुक्ल १४ शनिवार (बीच में एक तिथि घटी है) को किया। उसके बाद समस्त आश्विन पूर्णिमा को आहार किया और कार्तिक वदी १ सोमवार को मयारा (आजीवन के लिए आहार का त्याग) किया। जो ग्यारह दिन का आषा एवं कार्तिक वदी ११ बृहस्पतिवार को सम्पन्न हुआ।

तप के ११५ दिन  
पारणे के १७ दिन  
अधिक भोजन का १ दिन  
अनशन के ११ दिन  
कुल १४४ दिन

आषाढ़ के १५ दिन  
सावन के २६ दिन  
प्रथम भाद्रव के ३० दिन  
द्वितीय भाद्रव एवं आश्विन के ५६ दिन  
कार्तिक के ११ दिन  
कुल १४४ दिन

१३. मिश्र यज्ञ रसायन, शामन विनाश तथा क्यात आदि में लिखा है कि मुनि विरपात्मजी का स्वर्णवाम स० १८३२ कार्तिक वदि ११ को हुआ। लेकिन यह गदिग्र हो जाता है जब हम स्वामीजी के स० १८३२ भूगमर वदि ७ के प्रथम मर्षादान-पत्र पर मुनि श्री विरपात्मजी के हस्ताक्षर पाते हैं। दूसरा प्रमाण यह है कि थावक मेमीदामजी कृत् ज्ञान में उनका स्वर्णवाम स० १८३३ कार्तिक वदि ११ बृहस्पतिवार को माना है। मुनि श्री के स्वर्णरोहण पर रची हुई यह अति प्राचीन ज्ञान, पीपाह निवामी भुमानजी सुनावन द्वारा हस्तलिखित पोथे [पुस्तक] में उद्धृत कर चरित्राचम्यो पुस्तक में प्रकाशित है। यह गीतिना सम्भवन जपाचार्य के दृष्टिकान नहीं हुई हो, जिसमें उनकी तथा अन्य कृतियों में पूर्वभूति के अनुसार

१. सम्भवन उस दिन सप्या के समय प्रत्याख्यान किया और आपाद शुक्ल १ में तप आरम्भ हुआ।

धर्मीय की साधना का अनुकरण होता रहा है। तीसरा प्रमाण फिर यह है कि स० १८३२ में तो स्वयं स्वामीजी का चातुर्मास 'मेरवा' था। ये स्वामीजी के साथ नहीं थे। चौथा प्रमाण तो बहुत ही स्पष्ट है कि स० १८३२ जेठ सुदि ११ को स्वामीजी ने लिखित (व्यक्तिगत जमांक ६) किया। जिसमें मुनि धिरपालजी, हरनाथजी, भारमलजी, चन्द्रभाणजी, अर्धरामजी, सुखरामजी, त्रिलोकचन्दजी, अणदोजी—इन ६ साधुओं के हस्ताक्षर हैं। इससे इनका स्वयंवास स० १८३२ में नहीं हो सकता। स० १८३३ में ही यथार्थ लगता है।

कई क्षेत्रों में सबत् दीपावली से अथवा मृगसर महीने से प्रारम्भ होता है, अतः स्वयं सम्बत् १८३३ की जगह किसी कृति में १८३२ लिखा गया हो और अन्य कृतियों में उसका अनुकरण होता रहा हो, ऐसा भी सम्भावित है।

१४. गुगल मुनियों के जीवन सन्दर्भ में ध्यावक नेमीदासजी कृत दो डालें 'प्राचीन गीतिका सग्रह' में तथा 'वरितावली' पुस्तक में प्रकाशित हैं जो स० १८३३ में मेरवा में बनाई गई हैं।

जयाचार्य रचित उनके गुण वर्णन की १ डाल है। अथवा, शासन-विलास, शासन प्रभाकर डा० २ भा० ११ से १३० तथा भिक्षु यश रसायण डा० ४४ भा० १ से १४ में भी संक्षिप्त विवरण मिलता है।

जयाचार्य ने मुनिन्द मोरा डा० भा० ८ में उनकी स्मृति करते हुए लिखा है—

धिरपाल फलचन्द जपिरी रे, स्वामी मोरा, प्रेम सु रे मोरा स्वाम ॥

## ३. प्रथमाचार्य श्री भिक्षुगणो

(ग० १८१७-१८१०)

दीपा-गर्भ ४३ वं

बोहा

'भिक्षु' भिक्षुगण के प्रथम, धर्माचार्य प्रवीण ।  
गरिमा उन्नी गा रहा, गान्गुस मर्यादोण ॥१॥

रामायण-छंद

वीर भिक्षु की सरस कहानी, वीरो की महनाणी है ।  
आत्मोन्नति को प्रबल प्रेरणा, देनी बड़ी मुहानी है ॥प्र०॥  
मध्वरणी के पूर्व किनारे 'कटालिया' गांव गाया ।  
पिता 'बालु' माना 'दीपा' की रत्न-कुट्टि में गुन आया ।  
स्वप्न मिहू का भवितात्म - अणगार मूचना परक सबल ।  
साल तंयामी सतरह सी की सिनापाह सेरस भगल ।  
ओमवाग - मंफनेचा वगज की अच्छी गानदानो है ॥२॥

बोहा

होलोजी भाई बड़े, छोटे भिक्षु सुदस ।  
कुन का परिचय दे रही, वशावलि प्रत्यक्ष ॥३॥

रामायण-छंद

देह दीपंतर वर्ण दयाम था साल नयन गति गजवर-सम ।  
पे सामुद्रिक चिह्न अनूठे एक एक से सुंदरतम ।  
दक्षिण पद मे ऊर्ध्व - सुरेखा भगवत्कृष्ण की धी कर मे ।  
रेखात्रय भणिवध - कलद पर चक्र दमागुलिकान्तर में ।  
भय्य ललाट व गर्दन पर भी रेखा तीन सुभानी है ॥वीर...४॥

स्वस्ति ध्वजा आकार उदर पर सम रेखाएँ तीन मिली ।  
 कानो पर थे केश निराले तन की आभा खूब खिली ।  
 शभ लक्षण हो जिनके ऐसे कहते ज्योतिर्विद् पत्र में ।  
 दो हजार वर्षों तक उनका नाम अमर है भूतल में ।  
 पुण्यशालिता महापुरुष की रहती नहीं अजानी है ॥वीर...५॥  
 बालक-वय में सूक्ष्म बुद्धि थी पढ़े हिसाब महाजन के ।  
 चतुर मुख्य थे पचायत के कार्य-सृजन में जन-जन के ।  
 समझदार समझे जाते थे बड़ी प्रतिष्ठा पुर जन में ।  
 सूझ-बूझ की घटनावलियाँ लाती अद्भुत रस मन में ।  
 योग्य पुरुष की महिमा बढ़ती करते सब अगवानों है ॥वीर...६॥  
 ठग-विद्या से अन्ध पुरुष जो देव-भक्त बन पूजाता ।

॥वीर...७॥

हुआ विवाहोत्सव लघु वय में सुनी गालियाँ व्यग्यात्मक ।  
 छोड़ चले भोजन को तत्क्षण, थी रुढ़ी से बड़ी शिक्षक ।  
 भौतिक भोगों में न अधिक रुचि सहज विरति थी अंदर में ।  
 सत् सत्कार पूर्व भव के अब जागृत होते अवसर में ।  
 लगे खोज में सत्य धर्म की बात मर्म की जानी है ॥वीर...८॥  
 कुलगुरु यती, पोतियावध व स्थानकवासी मुनि जन की ।  
 सगति से दिल हुआ शीघ्रतर लेने निधि संयम धन की ।  
 ब्रह्मचर्य सह तप एकांतर जब तक दीक्षा—ग्रहण नहीं ।  
 पत्नी भी थी साथ किन्तु वह तब तक जीवित नहीं रही ।  
 बड़ी भावना अधिक भिक्षु की, सोचा काल कृपाणी है ॥वीर...९॥  
 कठिन साधना की कुछ दिन तक, पीकर देखा जल कटुतर ।  
 हुए तोलकर आत्म-शक्ति को लेने चरण-रत्न सत्पर ।  
 'छा लूगी मैं पेट-कटारी' कहा बुआ ने उनसे तब ।  
 पूनी क्या वह जो छा लेगी बोल रही क्यों बेमतलब ।  
 आज्ञा लेते जननी भी तो करती आनाकानी है ॥वीर...१०॥

दोहा

होनहार होमा तनुज, सिंह स्वप्न अनुसार ।  
 इसीलिए मैं कर रही, दीक्षा हित इन्कार ॥११॥

गृहेमा हरि की तरह, करके धार्मिक भ्रान्ति ।  
साधु बनेगा उच्चतम, सकल हरेगा भ्रान्ति ॥१२॥

### रामायण-छंद

समझाने से मृदु शब्दों में माता अनुमति देती है ।  
रूपे एक हजार भिक्षु तज करते समय - भेती" है ।  
आठ अठारह सौ में ली है दीक्षा गुरु रघुनाथ समीप" ।  
आगम पढ़ने - पढ़ते क्रमशः जना हृदय में चितन - दीप ।  
नहीं मृदु समय का पालन जैसे प्रभु की वाणी है ॥वीर...१३॥  
आध्यात्मिकी का स्थापित स्थानक में रहने रोक बिना ।  
लेते द्रव्य मोल के, खाते नित्यपिंड भी रोक बिना ।  
प्रतिलेखन के बिना पुस्तकें रहती बघ तिजोरी में ।  
बद्ध - पाश की मर्यादा का ध्यान नहीं कमजोरी में ।  
आज्ञा बिना मूँटते बाहे अविवेकी अज्ञानी है ॥वीर...१४॥  
स्थाप दोष की और कर रहे मिथ धर्म की प्रकट पुकार ।  
गोममान सच्ची श्रद्धा में शिथिल-शिथिल आचार-विचार ।  
पुन पुन प्रश्नोत्तर में भी नहीं तसल्ली मिलती है ।  
मीठी - मीठी बातों से कब अंतर कलिया छिलती है ।  
फिर भी प्रेम द्रव्य गुरु में, करने न कभी मनमानी है ॥वीर...१५॥

### दोहा

पद लायक गुरु जानने, योग्य शिष्य श्रीकार ।  
बीना ऐसे समय कुछ, फलता अब सहकार" ॥१६॥

### रामायण-छंद

राजमगर के नामी थावक तत्त्व - विज्ञ जो कहलाये ।  
गाथाचार विचार विषय में पूरे शक्ति हो पाये ।  
छांट दिया गुरु-वन्दन करना, तब उनको समझाने हित ।  
गुरु ने शिष्य भिक्षु को भेजा, पढ़े वे मुनिचार सहित ।  
बचन मुनि में उन्हे झुकामा वही यथा गुरु-वाणी है ॥वीर...१७॥

### दोहा

बोले थावक हृदय में, नहीं बैठती बात ।  
आप विगामी इगनिग, जोड़ रहे हैं हाथ" ॥१८॥

## रामायण-छंद

रजनी में ज्वर तनु कम्पन सह आत्मिक बल देने आया ।  
 अकस्मात् की इस घटना से रोम-रोम अति कपाया ।  
 प्रातः साफ-साफ मैं कह दू बातें जो सिद्धान्तों में ।  
 होना है वह होगा किन्तु न जीभ दबाऊ दातो में ।  
 जाना है परलोक एक दिन पोल न जरा चलानी है ॥वीर...१६॥

## दोहा

चितन करते ही त्वरित, उतर गया है ताप ।  
 मुबह थावको को दिया, आश्वासन सात्ताप ॥२०॥

## रामायण-छंद

दृढतम निश्चय करने खातिर पढ़े सूत्र फिर दो-दो बार ।  
 सत्य झूठ को झूठ सत्य को कहने से बढता संसार ।  
 पावस कर गुरु सम्मुख पहुंचे देखा गुरु का बदला रंग ।  
 सविनय झुके चरण मे सोचा—अभी बात का नहीं प्रसंग ।  
 समसाऊंगा फिर धृति पूर्वक, उचित न खीचातानी है ॥वीर...२१॥

## दोहा

विविध युक्ति युत सूचित मे, भिक्षु महा मतिमान् ।  
 गुरु सम्मुख स्फुट रूप में, रखते निज अरमान ॥२२॥

## सय—ऊनी जोऊ बाटइसी...

सच्ची थढ़ा ग्रहण करे जो पालें शुद्धाचार ।  
 आप नाथ मैं शिष्य हूं कर नव दीक्षा स्वीकार ।  
 जीवन का करे सुधार ॥२३॥  
 मेरा मन संयम मे, है एक यही सुविचार । मेरा मन...  
 हो सफल मनुज अवतार ॥मेरा... ध्रुव०॥  
 'देव' सही अरिहंत 'गुरु' मुनि, पंच महाव्रत धार ।  
 धर्म जिनेश्वर द्वारा भाषित, थढ़ा लें यह धार ।  
 होगा इससे निस्तार ॥मेरा...२४॥

मित्र न दन नीनों में होता पागल ॥१॥ १॥१॥

एक बायें में गुन पाव दो ॥१॥१॥ १॥१॥

मन गुन ॥१॥ १॥१॥ ॥२५॥

पूजा द्वापा के लिए छोटे न मन्त्रन पन्ना ॥

आत्म-शुद्धि दिन गिर मृदाया नीर वान अनुसार ॥

पन्ना का परो विचार ॥२६॥

कायगता है रण में हटना, हो ॥१॥ में भीन ॥

वीर पुन तो गाता विजयी मित्रनाद के गीत ॥

भर हर गौरव अनार ॥२७॥

### बोहा

इत्यादिक मधुरोक्ति में, गते हृदय के भाव ॥

आत्म-प्रसादन के लिए, प्रगुन रिया गुमाव ॥२८॥

मामिल बागुमंग कर, निगम कर मधामे ॥

लेकिन ये माने नहीं, न रिया गिरन मार्ग ॥२९॥

अलग-अलग पावन रिया, मित्रे दूमरी पार ॥

कमी न कहने में रगी, फिर भी अस्थीतार ॥३०॥

सथ—ऊँची ओढ़ बाइकुमी...

नही समझते देव भिक्षु ने, सोट दिया मन्त्रगु ॥

सथ सिद्धि के लिए चले हैं, छोटे सत्य प्रतिबध ॥

हो गये सग मुनि चार ॥मेरा...३१॥

साल अठारह सो सतरह की, नवमी गुनना चेत ॥

अभिनिष्क्रमण दिवस आया ने, शुभ दिन शुभ सकेत ॥

छोला नूतन ध्यापार ॥मेरा...३२॥

जगह ठहरने को न मिली तब, तत्क्षण किया विहार ॥

रुके शमशानों की छतरी में, देव वायु-विस्तार ॥

कर सीना चयाकार ॥मेरा...३३॥

### गीतक-छंद

तहलका मच गया भारी भिक्षु के प्रस्थान से ॥

लोग से बहु छतरियों पर आ गये गुरु स्थान से ॥

भान भीखण ! बात मेरी काल पचम है अभी ॥

सथ के आश्रय बिना तुम निभ न पाओगे कभी ॥३४॥

## दोहा

मैंने निर्णय कर लिया, पढ़ कर सूत्र सतकं ।  
 तोयं चनेगा अन्त तरु, अज्ञ न इसमें फकं ॥३५॥  
 जिन आजा को शीप घर, विधिवत् समय भार ।  
 पालूंगा मैं भाव मे, मेरा एक विचार ॥३६॥

## गीतक-छंद

वचन सुनकर द्रव्य गुरु के तो निराशा छा गई ।  
 बंदो चिता मोह आया उदामी अति आ गई ।  
 अथु गिरते देख बोला एक सहचर सत जो ।  
 सधपति हो ले रहे क्यों मोह मय यह पथ जो ॥३७॥

## दोहा

जाने से ही एक कं, उछली दुख-तरंग ।  
 मेरे जाते पाच ये, होना गण में भग ॥३८॥

मय—ऊभी जोऊ बाढइसी...

दिलगोरी से गुरु की पथ से, डिगे न तिलभर आप ।  
 सोचा—मैंने दोक्षा सी सब, माने किया विलाप ।  
 ममता वधन का द्वार ॥३९॥  
 तूं आगे पीछे रहूँ मैं, लोग लगाऊ पृष्ठ ।  
 नहीं कभी भी डरने वाला, परिपहूँ मैं उत्कृष्ट ।  
 है मरना आश्चर्यकार ॥४०॥

## दोहा

बड़लू में चर्चचिली, पुनरपि उनके साथ ।  
 किया परिश्रम भिक्षु ने, किन्तु न मानी बात ॥४१॥  
 पूरा पल सकता नहीं, कलि में समय भार ।  
 प्रथम अग में देख लो, (ये) दुर्बल जन उद्गार ॥४२॥  
 उभय घड़ी चारित्र से, (जो) पाये केवलज्ञान ।  
 (तो) द्वास रोक एकान्त में, बैठूं मैं घर ध्यान ॥४३॥  
 वीर शिष्य छत्रस्य बहु, फिर प्रभवादिक अनेक ।  
 कर न सके थे साधना, क्या मुहूर्त्त तक एक ॥४४॥

पंचमार का नाम ले, करने क्यों तकरार ।  
हो सकती मत् माधना, हो यदि सबल विचार ॥४५॥  
इत्यादिक सवाद मे, सार न निकला अल्प ।  
कदम बढ़ाये भिक्षु ने, कर चिन्तन अविकल्प ॥४६॥

सय—ऊँची जोऊ बाटइसी...

मरण धार सम्मार्ग मे वे, आये निमर्य - कोट ।  
ऊँखल मे गिर दे दिया, सहने मूसल की चाँट ।  
साहस भर लिया अपार ॥४७॥

रामायण-छंद

जयमलजी से मिले भिक्षु फिर बडलू जोधनप्र के बीच ।  
छह मुनि उनके बने सहायक खुद न सके समय रस र्छींच ।  
मिले दूसरे टोले के दो, हो पाये तेरह अणगार ।  
बहस परस्पर करके कुछ दिन किया एक श्रद्धा - आचार ।  
प्रभु - साक्षी मे, नियत समय पर दीक्षा लेनी ठानी है ॥४८॥

बोहा

रहे जोधपुर कुछ दिवस, समझाये बहु भ्रात ।  
श्रायक गेलालजी, आदि हुए विध्यात ॥४९॥  
विदा जोधपुर से हुए, बीलाडादिक स्पर्श ।  
आये काठा क्षेत्र मे, फिर मेवाड़ सहर्ष ॥५०॥  
अमुक - अमुक पुर ग्राम मे, कर पावस सुखकार ।  
पूनाम को आपाद की, लेना संयम भार ॥५१॥  
वर्षा ऋतु के बाद मे, सम जो श्रद्धाचार ।  
तो शामन सम्बन्ध है, नहीं अन्यथा प्यार ॥५२॥

रामायण-छंद

नहीं नाम की भूख जरा कन्याण-दृष्टि से काम किया ।  
शहर जोधपुर मे मेवग ने माधु सय का नाम दिया ।  
अप्य अनोपा किया भिक्षु ने प्रभो ! पय यह तेरा है ।  
हम अनुपायी अटल तुम्हारे पसका पण पर लेना है ।

कहा—किराये दो दुकान को, बोला मालिक मुँह से साफ ।  
 दे न सकूँगा अभी हाट को जड़ दो यदि रुपये से आप<sup>१६</sup> ।  
 करो रवाना भीखणजी को वरना हम जाते अब ही ।  
 जा सकते हो, मैं अन्याय न ऐसा कर सकता कब ही ।  
 चले गये चुपचाप चाबिया लेकर गलत-वयानी है<sup>१७</sup> ॥६५॥  
 अशन पान की कहा व्यवस्था रूखा सूखा जो मिलता ।  
 पाँच वर्ष तक नहीं पेट भरती भी रहता दिल खिलता ।  
 पूछा प्रश्न किसी ने धूत-गुड मिलता क्या गृह-द्वारे में ?  
 गुड़ फरमाते विकता देखा पाली के बाजारों में<sup>१८</sup> ।  
 घाट साय मे घी भी वापस लिया पक्ष अति तानी है<sup>१९</sup> ॥६६॥  
 कपड़ा पुस्तक श्रावक जन की नहीं बहुलता दिल धारें ।  
 रेजे के छातिर होती थी शिष्य सुगुरु में मनुहारें<sup>२०</sup> ।  
 सूत्र भगवती बहुत वर्ष तक नहीं मिला था पढ़ने को<sup>२१</sup> ।  
 श्रावक भी दो बार सामने आते आगे बढ़ने को ।  
 कभी-कभी व्याख्यान निकेवल सुनते साधु सुजानी हैं<sup>२२</sup> ॥६७॥  
 द्वेष-भाव था 'बोलाड़े' में अशन पान की सकड़ाई ।  
 फिर भी एक मास तक ठहरे अधिक गोचरी करवाई ।  
 भोजन जल का योग कहो क्या ? है किन्तु न मैं दे पाती ।  
 देने से सामायिक करती हुई ननद की गल जाती ।  
 ग्यारह सामायिक का कर जो दे यदि भोजन पानी है<sup>२३</sup> ॥६८॥

### बोहा

सन्नी वा सन्नी नहीं ? पृच्छा की निरपाय ।  
 मुक्के की देकर चला, उचित न उत्तर न्याय<sup>२४</sup> ॥४६॥  
 सधर्पो का सामना, डटकर किया नितान्त ।  
 रहे वहाने शात रस, हुए न कब ही क्लान्त ॥७०॥  
 जयमलजी की सामयिक, मानी नहीं सलाह ।  
 अतः द्रव्यगुरु-संध की, टूटी शक्ति अयाह<sup>२५</sup> ॥७१॥  
 अगर पुण्य कण-दान में, तो आज्ञा दें साफ ।  
 वरना ब्राह्मण-वर्ग को, क्यों भड़काते आप<sup>२६</sup> ॥७२॥  
 बिना प्रयोजन ही खड़ा, कर लेते उत्पात ।  
 मुल्टी कहने ही त्वरित, उल्टी करते बात<sup>२७</sup> ॥७३॥  
 मूह न देखू भिक्षु का, बोला घर कर द्वेष ।  
 कुछ दिन से अन्धा हुआ, पड़ा भोगना क्लेश<sup>२८</sup> ॥७४॥

## १. कष्ट सहिष्णुता

### बोहा

प्रमुग्ध-प्रमुग्ध गुण भिक्षु के, चुन चुन कर वगान ।  
सह योकिनः दृष्टान्त भी, स्मरणं गुरुमि उगमान ॥६०॥

### छप्पय

कष्टों का जो सामना करता नर कोटीर ।  
कहलाता मसार में वह बीरों का योर ।  
वह बीरों का योग और बाधाएं देना ।  
वन धरणी सम धीर विजय-नक्षत्री वर लेता ।  
साखी लोगों के लिए बनना एक नजीर ।  
कष्टों का जो सामना करता नर कोटीर ॥६१॥  
हीरा चढ़कर शाण पर पाता जमरा अगार ।  
सोना तप कर आव में लाता अधिक निगार ।  
लाता अधिक निगार दूध का दही बनाता ।  
मन्यन में पय सार रूप में बाहर आता ।  
सब कुछ महने से बना सिन्धु बड़ा गंभीर ।  
कष्टों का जो सामना करता नर कोटीर ॥६२॥  
धीर पृष्ठ इतिहास के आप लीजिए देख ।  
बलिदानों के सैकड़ों लिपे वहां पर लेख ।  
लिपे वहां पर लेख रमे जो पोष्य रस में ।  
कड़ी जोड़ दी एक भिक्षु स्वामी ने उसमें ।  
लाता उनकी सामने तेजस्वी - तस्वीर ।  
कष्टों का जो सामना करता नर कोटीर ॥६३॥

### शामायण-छंद

छोटी-छोटी जगह ठहरने को मिलती थी कुटिकावार ।  
और स्थान का परिवर्तन भी करना पड़ता कितनी बार ।  
शहर उदयपुर से विहरण का नृपादेश वे सुन पाये ।  
नामद्वारा से पावस के मध्य विहारी वन पाये ।  
कष्ट अनेकों पढ़ने पर भी छाती तो मरदानी है ॥६४॥

कहा—किराये दो दुकान को, बोला मालिक मुख से साफ ।  
 दे न सकूंगा अभी हाट को जड दो यदि रुपये से आप" ।  
 करो खाना भोखणजी को खरना हम जाते अब ही ।  
 जा सकते हो, मैं अन्याय न ऐसा कर सकता कब ही ।  
 चले गये चुपचाप चावियां लेकर गलत-बयानी है" ॥६५॥  
 अशन पान की कहा व्यवस्था रुखा सूखा जो मिलता ।  
 पाच वर्ष तक नहीं पेट भरती भी रहता दिल खिलता ।  
 पूछा प्रश्न किसी ने घृत-गुड मिलता क्या गृह-द्वारों में ?  
 गुरु फरमाते बिकता देखा पाली के बाजारों में" ।  
 घाट साय में घो भी बापस लिया पक्ष अति तानी है" ॥६६॥  
 कपड़ा पुस्तक श्रावक जन की नहीं बहुलता दिल धारें ।  
 रैजे के खातिर होती थी शिष्य सुगुरु में मनुहारे" ।  
 सूत्र भगवती बहुत वर्ष तक नहीं मिला था पढ़ने को" ।  
 श्रावक भी दो चार सामने आते आगे बढ़ने को ।  
 कभी-कभी व्याख्यान निकेल मुनते साधु सुज्ञानी है" ॥६७॥  
 द्वेप-भाव था 'बोसाड़े' में अशन पान की सकड़ाई ।  
 फिर भी एक मास तक ठहरे अधिक मोचरी करवाई ।  
 भोजन जल का योग कहो क्या ? है किन्तु न मैं दे पाती ।  
 देने से सामायिक करती हुई ननद की गल जाती ।  
 ग्यारह सामायिक का कर जो दे यदि भोजन पानी है" ॥६८॥

### बोहा

सन्नी वा सन्नी नहीं ? पृच्छा की निरपाय ।  
 मुक्के की देकर चला, उधित न उत्तर न्याय" ॥६९॥  
 सधर्षों का सामना, डटकर किया नितान्त ।  
 रहे वहाते शात रस, हुए न कब ही क्लान्त ॥७०॥  
 जयमलजी की सामयिक, मानी नहीं सलाह ।  
 अतः द्रव्यगुरु-संघ की, टूटी शक्ति अयाह" ॥७१॥  
 अगर पुष्प कण-दान में, तो आज्ञा दें साफ ।  
 खरना ब्राह्मण-वर्ग को, क्यों भड़काते आप" ॥७२॥  
 बिना प्रयोजन ही खड़ा, कर लेते उत्पात ।  
 मुल्टी कहते ही त्वरित, उल्टी करते बात" ॥७३॥  
 मुह न देखूं भिक्षु का, बोला घर कर द्वेप ।  
 कुछ दिन से अन्धा हुआ, पड़ा भोगना क्लेश" ॥७४॥

अब कैसे कहने लगे, तुम स्थानक में होय ।  
 रावण के सामनवत्, वैसा मुख पर घोष" ॥७५॥  
 विग्रह बढ़ता देख के, मौन हुए गुरु दश ।  
 'शिव' प्रधान की डाट में, दया विपक्षी पक्ष" ॥७६॥  
 धैर्य वृक्ष के फल मधुर, विजयी आप भदन्त !  
 यथा राव रुघनाथ का, बना जवाई अन्त" ॥७७॥

### रामायण-छंद

ग्राम-ग्राम में ऐसे सज्जन लेखपथ भी घर-घर में ।  
 बदोशस्त किये कितने ही डोष भरा है नर-नर में ।  
 देश भावन दूषित जन को एक बार आशा टूटी ।  
 मुदिरुल चलना मार्ग बीर का प्रचल मोह की है चूटी ।  
 फल आत्म-कल्याण तपोव्रत से जो दृढ़ कुर्वामी है ॥७८॥

### बोहा

को बालू आतापना, तप एकान्तर संग ।  
 ध्यान मौन स्वाध्याय में, हुए एक रस रंग" ॥७९॥

### रामायण-छंद

समय बिताया कितना प्रभु ने हृष्टमना एकान्तर कर ।  
 प्रीप्सुनाम की कटी धूप में तप्त धूल पर भी सोकर ।  
 देश शुकाव हुआ जन-जन का सत्य माधना बीरों में ।  
 धमक स्वर्ण की बढ़ती चाहे, गुरु तपाओ पोरों में ।  
 उद्यत हुए परीक्षारहित मानी मुनि मुग-बाणी है ॥८०॥

### २. धर्म प्रचारक

सय—बीकनजी स्वामी हो शासन—

भिन्न गणों ने त्रिने शासन की महिमा गूँव बढ़ाई जो ।  
 बर-बर धर्म-प्रचार ज्ञान की ज्योति जलाई जो ॥ध्रुव०॥  
 अध्यात्मिक उद्देश गतिन में अन्तर प्यास बुझाई जो ।  
 नव दृष्टान्त युक्ति में मानविक नींव जमाई जो ॥भिन्न०॥८१॥  
 दया दान उपागदिक की गूँव रहस्य ममजाई जो ।  
 थड़ा भ्रमजन - महात्रनों की छाग नगाई जो ॥भिन्न०॥८२॥

जगह-जगह उपकार अधिक कर विजय-ध्वजा फहराई जी ।  
 साधु - श्रावकों की सेना मजबूत बनाई जी ॥भिक्षु० ८३॥  
 त्यागमूर्ति सद्गुण-संतति ने सत्य-श्रान्ति दिखलाई जी ।  
 श्रान्ति मिटाकर जन-जन की गुत्थी सुलझाई जी ॥भिक्षु० ८४॥  
 आये ले अवतार यहां पर शक्ति अलौकिक पाई जी ।  
 अलग दूध पानी कर रस को नदी बहाई जी ॥भिक्षु० ८५॥

### शोहा

ध्यातया शैसी थी सरस, सार भरा व्याख्यान ।  
 जिससे जन-जन का सहज, होता केन्द्रित ध्यान ॥८६॥  
 वही बात व्याख्यान है, कथन-कथन में फर्क ।  
 श्रोताओं को लग गया, शालिभद्र मधुपर्क ॥८७॥  
 व्यक्ति-व्यक्ति को प्रेरणा, देते यथा प्रसंग ।  
 ऐसा स्नेह उड़ेलते, चढ़ जाता था रंग ॥८८॥  
 फला वर्ष छत्तीस से, उद्यम का सहकार ।  
 वृद्धि उत्तरोत्तर हुई, बंकचूस अनुसार ॥८९॥

## ३. साहित्यकार

### छप्पम

माध्यम धर्म-प्रचार का प्रमुख एक साहित्य ।  
 लाता स्थायी रूप से वह नूतन लालित्य ।  
 वह नूतन लालित्य व्यक्ति बहु लाभ उठाते ।  
 युग-युग तक इतिहास पृष्ठ दुहराते जाते ।  
 ज्ञान-रश्मियों के लिए तेजस्वी आदित्य ।  
 माध्यम धर्म-प्रचार का प्रमुख एक साहित्य ॥९०॥

### शोहा

स्रष्टा सत् साहित्य के, मुधि जन हुए अनेक ।  
 पर मेघाबो भिक्षु तो अपनी छवि के एक ॥९१॥

### रामायण-छंद

राजस्थानी भाषा में साहित्य मुशोभित है सारा ।  
 सुंदर सरल सहज भावों की चती बहा अविरल धारा ।

पद अटनीन हजार प्रागन, तिनो भूतभूत प्रनियाँ ।  
‘मिश्र ग्रन्थ गन्तार’ में है मण्डोपकारी कृतियाँ” ॥६२॥

### दोहा

रचना करने शोधनर, भग्ने भाग गगन ।  
मुनकर ग्रिने प्रनापजो, रनिन पय तगगन” ॥६०॥

### सोरठा

करता कुछ उल्लेख, अशों का माहिर्य के ।  
और लोजिए देख, मूची ग्रन्थों की बड़ी” ॥६४॥

## ४. गुण प्राही

### दोहा

प्राहक गुण के मिश्र थे, पुरयोत्तम गमकश ।  
जिससे वे बढने गये, पिछट गया प्रनिपक्ष ॥६५॥

### रामायण-छंद

बोला सज्जन एक तुम्हारे मुख-श्रंगन से नरक-गमन ।  
हस बोले मैंने तेरा मुख देखा है मम स्वर्ग-गमन” ।  
कहा किसी ने लोग आपके काढ़ रहे अवगुण भारी ।  
त्याग-तपस्या मे मैं कितने, कितने वे मम उपकारी ।  
अवगुण मे भी गुण लेना यह गुणिजन की अह्वानी है” ॥६६॥  
मेरे शिर पर डाला भारा, तुम क्यों कुपित हुए इस पर ।  
बिना बजाए एक टके की हड़िया भी कब लेता नर” ।  
दोष निकाले मिश्रराज में मध्या सी ऊपर उनमठ ।  
रहे सुरक्षित एक पत्र में लिखकर प्रभुवर ने भटपट ।  
एक-एक से उग्र उपनर चले दूर नूकानो है” ॥६७॥  
एक वहिन ने निज दूकान में रहने को इन्कार किया ।  
छद्म-भाव मे लहर हृदय में आये पर उपकार किया” ।  
पद्मपुष्प में इन्द्रध्वज सह गजध्वज सम्मिश्र हुए धड़े ।  
गुरु बोले मन रोंको इनको हम भी ‘जिन’ के माथ बड़े ।  
गुण-प्राहिता देख मिश्र की विम्बित प्राणी-प्राणी है” ॥६८॥



## ६ बुद्धि-विनशनाता

## रामायण-संज्ञ

ओत्पत्तिही बुद्धि भिन्न की वस्तुजान की नि.शानी ।  
 आगम अथे मयायं हिमे हैं जगो करो के.श.शानी ।  
 तात्कालिक मग्निरूप उपज मे तरने पत्थर पानी में ।  
 प्रदन जवाय मे भाव भरे थे नई शाना वाणी में ।  
 चुम्बक रूप नमूना देगो खाने गरुण जगानी है ॥१०५॥

## बोहा

गुह-पद्य भावार्थ - वत, मने हुए कंटम्प ।  
 बिना पड़े व्याकरण ही, खीचा मार प्रशस्त ॥१०६॥

## रामायण-ध्वज

'कयरे मने अकप्राया' का गही अथे बतलाया है ।  
 पडित-मानी एक व्यक्ति का अह दूर हो पाया है" ।  
 एक जातिनी घोली—घोवन देना महंगी खेती है ।  
 गौ को घास खिलाकर वापस बत बहिन क्या खेती है ?  
 बात समझ में आते ही बहराया प्रासुर पानी है" ॥१०७॥  
 इनमे साधु-असाधु कौन हैं आप बताए गणना कर ?  
 देखो तुम में ज्ञानोञ्जन से, खोलू आये आम्बतर" ।  
 देता वस्त्र, न साधु मानता लाभ भुझे क्या मिल पाया ।  
 ग्रापी मिथी विष समझा तो क्या वह मानव मर पाया ?  
 कमी ज्ञान की, शुद्ध दान मे कमी न होती हानी है" ॥१०८॥  
 एक यहन ने कहा लाभ तू भंस विषाये जब प्रभुवर !  
 कय वह भंग विषाये कत्र हम आये समाचार मुनकर" ।  
 गाय - भंस के आगे ज्यादा चारा हो तो ओगाला ।  
 'डाडा' तू तो ज्ञान हमारा चारा, क्यों मुरझित लाला" ।  
 भोले बालकवत् चर्चा मे करते से मस्तानी हैं" ॥१०९॥  
 थडा जमी हृदय मे तो भी हलचल है अरमानो में ।  
 पकड़-आकड़ परीक्षा होनी पावल के दो दानों में" ।

ममता तत्त्व तथापि जानकर फिर गुरु का गिरना मृगा ।  
 आगे गुनी बघाई दुगा पर पयो मे पूछूंगा" ।  
 क्यापनीय है बुद्धि वही जो कम पीनने पाणी है" ॥११०॥  
 पके साधु को बिठा महज गाड़ी मे साना बैठा है ?  
 गाड़ी के बंदने गर्भ पर यदि साये तो कैसा है ?  
 भोग्य की धड़ा लेने मे बनी बहन वह यदि विधवा ।  
 तु भोग्य की निन्दा करती फिर भी क्यों न रही सधवा" ।  
 सगे दामवत् धड़ा त्याग न बापग लेते प्राणी है" ॥१११॥  
 हरियाली तो पाने गानिर ही ईश्वर ने निपजाई" ।  
 भय मिह का तुम्हें बनाया क्यों तू भय खाता भाई ।  
 आप इतर मुनि हितमिल करके क्यों न एक हो जाते हैं ।  
 धड़ाचार विचार मिलन मे समोगी बन पाते हैं ।  
 पृथक् जानि की परम्परा में मूल पृथक्ता मानी है" ॥११२॥  
 गण मे पृथक् तिलोक आदि मिल अपना पथ चलाए तो ?  
 करामात इतनी होनी तो गण को सजकर जाए क्यों" ?  
 पिता-पितामह-ज्ञान क्या करते भाटो के पोयो से ।  
 भूत भविष्य काल की बातें कहने हम सिद्धान्तों मे" ।  
 कारीगर मुनि अल्प अधिक पापाण तुल्य भवि-प्राणी है" ॥११३॥  
 नही मानते साधु जिन्हें क्यों साधु नाम से बतलाते ?  
 काढा प्रथम दिवाला फिर भी शाह व्यक्ति वे कहनाते" ।  
 नहीं तीन को पूरा भोजन कैसे अष्टाविंशति को ?  
 नहीं द्वारका में 'दृढ' को मिलता सब श्रुति-सतति को" ।  
 पात्र दान की कला सिखाई देय पात्र में पानी है" ॥११४॥

### गीतक-छन्द

'साम' 'राम' समान आकृति के सहोदर भूल से ।  
 वन्दना में गोल पड़ता येतसी के भूल से ।  
 करो पहले येतसी को वन्दना तुम रामजी !  
 भिदा की नव युक्ति मे खिल उठे सन्त समामजी" ॥११५॥  
 जोड़ते क्यों आप इतने गीतिकाव छन्द है ?  
 जोड़ता वह नन्द प्रिय वा तोड़ता वह नन्द है" ?  
 सात देने एक गिनते अर्थ क्या इनका कहें ?  
 सात देते हैं सुपारी एक साता गिन रहे" ॥११६॥

## रामायण-छन्द

मिश्र पुण्य थड़ा का गड़न करते क्रमशः सस्कृति से ।  
 पकड़े एक जाट ने चारों चोरों को जैसे मति से ।  
 बात न्याय की नहीं मानता करता ननुनच स्वाग्रह से ।  
 वाद्य बजाकर चतुर गेठवत् वचता मानव विग्रह से ।  
 पैरो में सिर देते बयो चोके हित आनाकानी है ॥११७॥  
 निद्रा आती क्या आसोजी ? नहीं-नहीं महाराज ! नहीं ।  
 जीते तो हो क्या आसोजी ? नहीं-नहीं महाराज ! नहीं ।  
 छोना शिश के कर से पत्थर उसका क्या फल दो उत्तर ?  
 बल-प्रयोग में धर्म नहीं है आया उसके कर पत्थर ।  
 ग्रामद्विषत यथाविधि होता किन्तु न स्वेच्छादानी है ॥११८॥  
 स्वेच्छा पावम किया साध्वियों ने क्या दोगे दण्ड प्रहार !  
 प्रथम दण्ड तो दिया ग्राम ने फिर मेरा भी जरा धिचारे ।  
 थावक दुष्ट तुम्हारे ऐसे नहीं खोलते गल-फांसी ।  
 बात समुच्चय करने के कुछ बनी प्रथम तुम अभ्यासी ।  
 नाम किसी का नेने में बढ जाती तानातानी है ॥११९॥

## गीतक-छन्द

तीर्थयात्रा अगर आयू की न की तो व्यर्थ सब ।  
 की न तुमने भी अभी तक विफल तेरा जन्म सब ।  
 अमरु साधु असाधु पर को, दूसरे कहते उन्हें ।  
 गण्य दोनों है कथन ने कहे दोषी हम किन्हे ॥१२०॥

## बोहा

‘बहने हमें यमाधु जो’ ठीक न वह, सब ठीक ।  
 मैं क्या कहता विग्रह में, तुम सब हुए शरीक ॥१२१॥  
 पानी के टपके गिरे, की गुह में फरियाद ।  
 रस्मी में त्रा माय सो, होगा शान्त विवाद ॥१२२॥  
 मांजुसूता के विषय में, न करो खोचानाथ ।  
 तुम दोनों परिन्याय कर, दे दो सही प्रमाण ॥१२३॥

## रामायण-छन्द

कोन-कोन मुनि सात पदो के धारक शासन सतति मे ।  
 सातों पद का करू कार्य मैं, सप्रति जिन अनुपस्थिति में"  
 किये आपने क्या घाली के दो टुकड़े ? तब प्रभु बोले ।  
 बारह आने करें प्रथम ही इतने हम न कभी भोले ।  
 षड़े षड़ाये उत्तर देने रखने मूढ़ जवानो है"  
 ॥१२४॥

## ७. अवसर के ज्ञाता

सत्य—महावीर प्रभु के—

अवसर के अच्छे ज्ञाता थे वे भिक्षु भिक्षुगण अधिकारी ।  
 प्रश्नों के उत्तरदाता थे वे जनमन को विस्मयकारी ॥१२५॥  
 अवसर से विद्या-यज्ञ-वाणी, अवसर से मानव अगवान्नी ।  
 चातुर वे जग में समस्त रहे हैं अवसर को जो नर-नारी ॥१२५॥  
 वह मधुर 'लापसी' है कितनी ? उसमें गुड़ मात्रा है जितनी ।  
 घृश हों बोला भीखण ने तो दिया जवाब बड़ा भारी ॥१२६॥  
 हौरिगढ़ में अन्यमती बोले, मोदक के पात्र सभी छोलें ।  
 अयाग्रह से झोली छोली, जन टोली बिखर गई सारी ॥१२७॥  
 कितने घोड़े के पैर कहो, दो उत्तर झट मत मौन रहो ।  
 पूछे 'कानखजूरा' के तो सुन फूला वह सुविचारी ॥१२८॥  
 मैं दान असयत दू न कभी, तुम त्याग कराओ मुझे अभी ।  
 हमें भाड़ने खातिर करता, वा दिन विपुल विरति धारी ॥१२९॥

## दोहा

कितने कहो तमुत्तरी—मे 'ता' 'त' हैं वर्ण ?  
 'का' 'कं' 'खा' 'ख' भगवती—मैं कितने हैं वर्ण ॥१३०॥  
 कितनी तुम हो मूर्तिया ? हम मुनि तीन पुनीत ।  
 पूछो किस ही भाव से, समय गया वह बीत ॥१३१॥

## रामायण-छन्द

विजयसिंहजी को क्या पुर में हुआ पडह फिरवाने में ?  
 बिना ज्ञान के लाभ न कुछ भी चर्चा बड़ी चलाने में ॥

पडिमाधारी भाग्य तो देने के प्रश्न नष्ट गयो।  
 हाथी भी न दिखाई देते अथ कंधरा तो धरते।  
 अवन से न, श्रुति में श्रावणा जाती पट्टिनी है। ॥१३२॥  
 सर्व पाप का त्याग किया क्या उम श्रावण को देने में ?  
 धर्म वस्तुन बना साधु यह पाप न तिमिन् लेने में।  
 कहो प्राण पर्याप्ति जीव ना है निर्जीव कभी कर्मा।  
 तनातनी हो गई परस्पर, ज्ञान विना न फलिन कर्मा।  
 मत उलझो शब्दों में धमण व यनि, दोनों गम स्थानी है। ॥१३३॥  
 अन्य जाति में क्रमश जाते नहीं गौरी क्या कारण ?  
 द्वेष भाव का प्रकट नमूना देख हेम ! तू जा तत्क्षण।  
 'धम्मो भगव' आप गुनाओ, यह न अधम्मो भगव है।  
 लक्ष्य निर्जरा का तो उत्तम इतर भावना निष्फल है।  
 व्याप शरण की स्मृति हित मुनना भगव पाठ विधानी है। ॥१३४॥  
 बातें कही विषम यतिजों ने उत्तर गुरु ने नहीं दिया।  
 क्या मेरी जंच गई मान्यता ? नहीं मनोगत भाव किया।  
 उत्तर देना योग्य व्यक्ति को नहीं इतर को लाभप्रद।  
 मलिन पात्र में दुकन्दार भी नहीं सोलता सपि विशद।  
 अवसरक के पास निरुत्तर इन्द्र और इन्द्राणी है। ॥१३५॥

### ८ सत्य न्याय निष्ठा

#### रामायण-छन्द

सत्य न्याय की सखल मच पर डटे पड़े गुरु बेपरवाह।  
 साधु सभ में काम वा ज्यादा किन्तु न हो पंडित धत-बाह।  
 भजनहार कहलाने वाले निकल गए तो भीति नहीं।  
 पांच साध्वियों को सह छोड़ी अनाचार से प्रीति नहीं।  
 सोहपुरुष के वज्र हृदय में जरा नहीं नादानी है। ॥१३६॥  
 कटु पद है यह स्वामिन् ! इसमें कहा वीर प्रभु भूले हैं।  
 शिष्य ! सत्य है तो भय किसका, झूठ पैर बगुले है।  
 दोष करेंगे देव आपको इतने जिन्हे निषेध रहे।  
 कष्ट साधुओं को यदि दे तो कौन इन्द्र का बख्श सहे।  
 कटु औपधवन् कडे हेतु है, (क्योंकि) मिथ्या उदर तूफानी है। ॥१३७॥  
 चढ़र बड़ी हेम की विधि से, गुरु ने माप दिखाई झट।  
 चारागुल कण्ठे हित क्या हम कर देंगे समय खोपट।



मुनते हो व्याख्यान भिक्षु का दाहा तुमको लग जायेगा ।  
दादा नहीं 'टूठ' को लगता उम पर न असर हो पायेगा" ॥१४५॥

बोहा

शका क्या निशक यह, भोजन लिया अशुद्ध ।  
उत्तर दिया नडाक मे, गुरुवर ने अविरुद्ध" ॥१४६॥

८. सिद्ध पुरुष

सिद्ध पुरुष के सिद्ध वचन थे कहा एक दिन बातों में ।  
उदयराम की मृत्यु खेतसी । होगी तेरे हाथों" में ।  
मिलना कठिन निलोक । मूरिपद, मूरदाम पद मिल सकता ।  
छोड़ दिया साथी ने आग्निर जगल में कर निर्दयता" ।  
कम आस्था से सम्यग् मणि का रहना क्या आसानी" है ॥१४७॥  
एक व्यक्ति ने कहा व्यग में हेतु लगाकर बंदर का ।  
थोड़े दिन में साफ हो गया, वचन मिल गया गुरुवर" का ।  
कहा भिक्षु ने अजयराम की 'आत्मा वश' विश्वास नहीं ।  
गणबाहर हो वापस आये किया मुगुरु का वाक्य" सही ।  
अनि ओपग्र मे नजर गवाई हत्—कलियां अलमानी" है ॥१४८॥  
सावत्सर दिन क्षमायाचना करने गया कपूरा है ।  
प्रत्युत क्षमा लेकर आया मिला भिक्षु वच पूरा" है ।  
भोजन में उपकार हुआ अनि, कहते बहुजन हिलमिल है ।  
पुर बाहर की घेनी लोंगों ! सावित रहनी मुश्किल" है ।  
आर्वात्मिक मुनि-वाणी मिलनी यह लोकोक्ति पुरानी" है ॥१४९॥

१०. जिन जाणी पर कटिबद्धता

मधु—प्रभु पार्ष्व देव...

अग्नि देव की आज्ञा, जीवन धन प्राण है ।  
इसमे वरकर क्या कोई, बन मक्का प्राण है ॥ध्रुव॥  
वीरराग तीव्रकर—वर्णा अविकार है २ ।  
विज्ञान ज्ञान मधु उममे, उममे व्याण है । अग्निह... ॥१५०॥  
श्रेय मार्ग सर्वोत्तम पुराणोत्तम दृष्टि मे २ ।  
यथा ज्ञान-दर्शन मत् तप-चरण प्रधान है ॥१५१॥

सवर धर्म निजरा, सर्वज्ञ विधान में २।  
 तीन योग शुभ लेश्या, निर्मल दो ध्यान है ॥१२२॥  
 दया दान पारमार्थिक, है धार्मिक-कोटि में २।  
 गुरु देव धर्म असली की, करना पहचान है ॥१२३॥  
 सर्व-देश-व्रत सत्पथ, आर्हत उपदेश में २।  
 सर्व मूल—उत्तर गुण गुण की सोपान है ॥१२४॥  
 शरण चार हैं सहचर, परमेष्ठी पच वा २।  
 इत्यादिक धर्म-क्रिया से, जीवन उत्थान है ॥१२५॥  
 इतर सभी कामो मे, आदेश न ईश का २।  
 यह तत्त्व भिक्षु ने खोजा, कर लिया प्रमान है ॥१२६॥

सब—भारे घर बघारो...

सच्ची जिनवर वाणी जी क, सच्ची जिनवर  
 पालन कर-कर तरते जो हलुकर्मा  
 राजमार्ग है वीतराग का कब ही नहीं  
 पाखंडों की पगडंडी का पता नहीं चब  
 व्रत में धर्म, नहीं अव्रत में त्याग भाग  
 धर्म अहिंसा दया सही है, हिंसा अप  
 धर्म अमूल्य, मूल्य में मिलता नहीं  
 है उपदेश धर्म पर बल में नहीं  
 'राग' असंयम-जीवन-वाछा, द्वेष  
 धर्म सही अरिहत देव का, जो  
 शिशु के शिर पर चपत लगाना, द्वेष  
 मोदक देना राग, समझ में बिरयों  
 आज्ञा में जिन कथित धर्म है किन्तु  
 साहुकार तो पता बताता पगड़ी का  
 विधिवत् भोजन करना भुनि का जिन  
 बुरा काम कहते मुख से तो करते  
 नदी उत्तरना फूल चढाना कहते  
 तत्व-दृष्टि से यदि सोचें तो लाभ  
 देवालय बयो पूर्वकाल में धर्म  
 धन होने से हेया-देय वस्तु का  
 (यदि) तार मात्र कपडा रखने से  
 (तो) भोजन-जल सेवन से खडित

कठिन क्रिया हो रखे न कपडा, पैर आपके पकड़ें ।  
होने से विस्वास 'दिग्म्वर' का छोड़ेंगे कपड़े" ॥१६७॥  
हमें मान्य जो जैसी प्रतिमा सोने-चादी वाली ।  
निर्गुण को गुण कभी न कहते हैं यह सत्य प्रणाली" ॥१६८॥

### दोहा

पुस्तक पत्र न ज्ञान है, और न अक्षर ज्ञान ।  
करता है नर अर्थ की, उनसे तो पहचान ॥१६९॥  
चेतन की आशातना, होती है प्रत्यक्ष ।  
किन्तु नहीं जड़ द्रव्य की, मर्म समझते दक्ष" ॥१७०॥

### गीतक-छंद

घोलना वा बन्द करना लिए मुनियों के नहीं ।  
साधियों के लिए आज्ञा है किवाड़ों की सही ।  
ग्राम सोजत में गुरु ने उपाध्य को घोलकर ।  
सात सतियों को उतारा कल्प मौलिक समझकर" ॥१६५॥  
कहा चूहों को छुड़ाओ बिल्लियों को दूर कर ।  
गूत्र आवश्यक बिलोको लिया उसमें स्पष्टतर ।  
भिन्न होने बाद का प्रक्षिप्त है यह अर्थ तो ।  
नहीं प्राणन मूल प्रति में देखिए कर शर्त तो" ॥१७२॥

### दोहा

बन्दन स्वीकृति में प्रभो ! क्यों कहते 'जी' आप ?  
'जीपमेवदेवा' प्रमुख-की आगम में छाप" ॥१७३॥  
बरनी मिथ्यादृष्टि की, दाना-दिक जो दाद ।  
जिन आज्ञा में है सही, स्वयं कह गए बुद्ध" ॥१७४॥

### ११. पाप-भीरता

#### दोहा

पाप-भीरता थी बड़ी, पग-पग पर अनि ध्यान ।  
मह आ-मार्थी गुरु का, सक्षण सर्व प्रधान ॥१७५॥

## मनोनन्द

पाश्चात्य की अवध-त्रिया को जो नहीं छोड़ती तू तेरी ।  
 तो रोटी हित मुझ त्रिया को कैसे मैं छोड़गा मेरी<sup>१००</sup> ।  
 कपड़ा से मो, मोन लिया यह, जो नहीं बला तो अन्य ग्रहो ।  
 उनको हमको तुल्य कहेंगे, पर सार निकासे कौन कहो<sup>१०१</sup> ॥१७६॥  
 घोनी विहकी कल्पनोय यह, क्यों हेम ! कर रहा तू गणप ।  
 जिनासा मे पूछ रहा हूँ, मेरा न दूसरा है आशय<sup>१०२</sup> ।  
 दर्जी के घर मे कौन साधु गुड़ साया ? मुन इन्कार गर्भी ।  
 से सपको उसके घर पहुँचे सब निकल गया निष्कार्य तभी<sup>१०३</sup> ॥१७७॥  
 बेला किया सापगी हित क्या ? हा दिन में तो कुछ-कुछ भाई ।  
 मेना न दूसरे दिवस मिटाई 'आरे' में जो भी यत्र पाई<sup>१०४</sup> ।  
 दस रुपया का खर्च हुआ है पैदा टोटल में उतनी ही ।  
 पर घेनी में गुलना ! हिंसा हो गई निरर्थक किनारी ही<sup>१०५</sup> ॥१७८॥

## १२. वास्तविक दृष्टि

### रामायण-नन्द

नाम साधु पर नहीं साधुता यहाँ न परभय में हितकर ।  
 कान कटाये क्या लोमड़ी ने चौघरण में फंमकर<sup>१०६</sup> ।  
 नूतन दीक्षा भी कद्यों ने किन्तु न सत् धड़ा भाई ।  
 राव सिरोही वाला अद्भुत बना पावघा वह भाई<sup>१०७</sup> ॥१७९॥  
 बिना साधना फलित न कुछ भी ज्यों कृत्रिम गुरुआनी है<sup>१०८</sup> ॥१८०॥  
 रोटी हित जो वेप पहनता वह क्या सयम को पाले ।  
 चढ़ी चिता पर देवी कैसे रोग नेत्रों का गाले<sup>१०९</sup> ।  
 नहीं त्रिया मे हमे प्रयाजन करे वेप को ही वन्दन ।  
 ऊन भेड़ की वण कपास की, क्यों न करें फिर उन्हे नमन<sup>११०</sup> ।  
 एक महाप्रन मे पाँचों की खदित मञ्जरदानो है<sup>१११</sup> ॥१८०॥  
 विपद् दशा में अप्रामुक भी लाभ बता भुनि ले लेते ।  
 बड़ी शर्म की बात बीर हो रण से पग पीछे देते<sup>११२</sup> ।  
 नहीं शुद्ध संयम क्या बनता केवल बाह्य क्रियाओं मे ।  
 लाखों का जो पडा दिवाना भिटता कैसे पैसों से<sup>११३</sup> ।  
 खदित तैले मे एकासन-सप सम्यग् फलदानो है<sup>११४</sup> ॥१८१॥

मोदक तब पर मामूली में मानव दिन बटाने है।  
 अन्नध्वेनि में पडितजी भी आभा थी तो पाते हैं।  
 कुशल निनोह दिगाने दुःखा, लपट दिया है अन्दर में।  
 गुलो पोन जब 'तू' मोलुप तू मोलुप' कहा परम्पर में।  
 'पूरा समय अभी न पनना' दुर्वन जन की थापी है। ॥१८२॥

### बोहा

तेला तो दिन तीन का, गाहे पंचम काल।  
 घाने से कण एक भी, टूटंगा सरकाल। ॥१८३॥

### गीतक छन्द

साधना ही साधु का गूगार संयम देह है।  
 बेप भूषा सहज सम्कृति सभ्यता का गेह है।  
 सहायक वे समय में 'मैं' रूप में मुनि के अभी।  
 स्वर्ण बहू रुपया न छूरा माधु कुत्रिम बन कभी। ॥१८४॥

### बोहा

साधु बेप धारण किया, पर न साधु-आचार।  
 घर स्वर्घो पर मोक्ष वे, भटक रहे बेकार ॥१८५॥  
 गुरु युत यदि गण विकृत हो, तो बघार हर स्थान।  
 फट जाए आकाश तो, माधे कौन सुजान ॥१८६॥  
 बजा लीजिए मन चहे, यहा पोल के दोल।  
 राज्य न 'पोपा' का वहाँ, नहीं चलेगा गोल ॥१८७॥  
 रस-मोलुप मुनि ताकता, अच्छे-अच्छे गेह।  
 दीड़ा जाता समय पर, लेने रस अबलेह ॥१८८॥  
 सूत्र अर्थ समझे बिना, कहते उल्टी बात।  
 गालों के गोले बड़े, चला रहे दिन रात ॥१८९॥  
 वर्तमान में जो दशा, साधु संघ की दृष्ट।  
 चित्रण उसका मिश्र के, शब्दों में उल्टुष्ट ॥१९०॥

## १३. गुरु-परीक्षा

### नघोन-छन्द

गुरु के विना न देव, धर्म की वास्तविक जांच हो पाती है।  
 समता में ही मध्य छिद्र के, पनडों की काण मिटाती है। ॥

दोनों सहृद बिना परीक्षा विषमम निविष घाने दानता ।  
 होने मे साधु-असाधु मुनिर्जन गिर समशदार नर का सुवता" ॥१६१॥  
 परपो मुगुर मुगुर को पहले बन ज्ञान-बन्धु से बधुमान् ।  
 होने पृथक् काष मणि आगिर बड़ नजर ओहरो की सुनिमान्" ॥  
 तावे के दर्शन अग्रे हैं रावे के तो उममे अग्रे ।  
 छोटे रावे के प्रभाव में दर्शन कहताने है कच्चे" ॥१६२॥  
 सुन्दर जायम बिछो कष पर चारो कोनों पर भार रखा ।  
 कोई व्यक्त भुक्तावे में आ बैठे तो होता मृगु राखा ।  
 भडभूजे के तुल्य मुगुर है है भाड़ सुदृग थडा उनकी ।  
 अमानो नर बने घरावर वे उन्हें तांके भर घुटनी" ॥१६३॥

बोहा

छात्री पट्टी काण्ड की, अथवा परयर-नाथ ।  
 मुगुर मुगुर के विषय में, की तुलना गमभाव" ॥१६४॥

## १४. कयनी करनी

रामायण-छन्द

स्यानक रचो हमारे पतिर कहते नहीं, ठहर जाते ।  
 नहीं जवाई हनुआ हित कहते पर गुण होकर घाने" ॥  
 जीव बनाते कहते केवल जीव मारने तो छोडी ।  
 चौकीदार ! आपकी चौकीयग चोरी से मुंह मोडो" ॥  
 अपनी भाषा नहीं समझने स्वाक्षरवतअज्ञानी है" ॥१६५॥  
 मौन रहे सावध दान में अभिप्राय से कह देने ।  
 मौनी मुनिवत नहीं मिले तो तोड़ तोड़ के लू लेते" ॥  
 स्वयं कापट खोलते जटते ले न गृहस्थी देता जब ।  
 जिसके कर की रोटी खाते हर्ज स्पर्श में है क्या तब" ॥  
 पदनी पति का नाम न लेती कहती कर-कर मानी है" ॥१६६॥  
 तीन करण हैं तीन योग है सम्बन्धित जो इतरेतर ।  
 एक भला तो इतर भसे हैं एक बुरा तो बुरे इतरे ।  
 अपराधी अपराध-सहायक अनुमोदक का एक गणित ।  
 नृप ने किये युवक सह फूना और भगैड़ी को दंडित ।  
 न्याय प्रजा के लिए महिष का बना मुशिला दानी है" ॥१६७॥

मोदक तब पर गामघी में मारा हिन बंटाने है ।  
 अन्नध्वेनि में पड़ितजी भी आधा भी तो पाते हैं ।  
 कुशन तिलोक्त शिरो दुहा, बपट शिरा है अन्दर में ।  
 घुलो पोन जय 'तू नोनुष नू नोनुष' कहा परम्पर में ।  
 'पूरा समय अभी न पन्ना' दुर्गन्ध जन की वाणी है । ॥१८२॥

बोहा

तेना तो दिन तीन का, चाहे पंचम काल ।  
 घाने से कण एक भी, टूटेगा तलकाल । ॥१८३॥

गीतक छन्द

साधना ही साधु का शृंगार समय देह है ।  
 वेप भूषा महज गम्भूति सम्पत्ता का गेह है ।  
 सहायक वे समय में 'मैं रूप में मुनि के अभी' ।  
 स्वर्ण बहु रुपया न छूना साधु कृत्रिम बन कमी । ॥१८४॥

बोहा

साधु वेप धारण किया, पर न साधु-आचार ।  
 घर स्कंधों पर बोझ ये, भटक रहे बेकार । ॥१८५॥  
 गुरु युत यदि गण विकृत हो, तो बयार हर स्थान ।  
 फट जाए आकाश तो, गांधे कीन गुजान । ॥१८६॥  
 यज्ञ लीजिए मन चहे, यहा पोल के डोल ।  
 राज्य न 'पोषा' का बहा, नहीं चलेगा मोल । ॥१८७॥  
 रस-नोलुप मुनि ताकता, अच्छे-अच्छे गेह ।  
 दौड़ा जाता समय पर, लेने रस अवलेह । ॥१८८॥  
 सूत्र अर्थ ममत्ते बिना, कहते उरटी यात ।  
 गालों के गोले बड़े, चला रहे दिन रात । ॥१८९॥  
 वर्तमान में जो दशा, साधु संघ की दृष्ट ।  
 चित्रण उमका मिश्र के, शब्दों में उत्कृष्ट । ॥१९०॥

१३. गुरु-परीक्षा

नवीन-छन्द

गुरु के बिना न देव, धर्म की वास्तविक जांच हो पाती है ।  
 समता में ही मध्य छिद्र के, पलकों की काण मिटाती है । ॥

दोनों लड़्डू बिना परीक्षा विषमय निर्विष खाते रुकता ।  
 होने से साधु-असाधु मुनिर्णय शिर समझदार नर का झुकता" ॥१६१॥  
 परबो सुगुरु कुगुरु को पहले बन ज्ञान-चक्षु से चक्षुमान् ।  
 होते पृथक् काँच भणि आखिर चढ़ नजर जोहरो की द्युतिमान्" ॥  
 तावे के दर्शन अच्छे हैं रुपये के तो उससे अच्छे ।  
 छोटे रुपये के प्रभात में दर्शन कहलाते हैं कच्चे" ॥१६२॥  
 सुन्दर जाजम बिछी कूँप पर चारों कोनों पर भार रखा ।  
 कोई व्यक्ति भुलावे में आ बैठे तो होता मृत्यु सखा ।  
 भडभूँजे के तुल्य कुगुरु हैं है भाड़ सदृश थड़ा उनकी ।  
 अज्ञानी नर चने बराबर वे उन्हें झोकते भर घुटकी" ॥१६३॥

बोहा

साजी फूटी काष्ठ की, अयबा पत्थर-नाव ।  
 सुगुरु कुगुरु के विषय में, की तुलना समभाव" ॥१६४॥

## १४. कयनी करनी

रामायण-छन्द

स्थानक रघो हमारे खतिर कहते नहीं, ठहर जाते ।  
 नहीं जवाई हलुआ हित कहते पर खुश होकर खाते" ॥  
 जीव बचाते कहते केवल जीव मारने तो छोड़ो ।  
 चौकीदार ! आपकी चौकीवस चोरीं से मुँह मोड़ो" ॥  
 अपनी भापा नहीं समझते स्वाक्षरवतप्रज्ञानी हैं" ॥१६५॥  
 मौन रहे सावध दान में अभिप्राय से कह देते ।  
 मौनी मुनिवत नहो मिले तो तोड़ तोड़ केलू लेते" ॥  
 स्वयं कपाट खोलते जड़ते ले न गृहस्थी देता जब ।  
 जिसके कर की रोटी खाते हर्ष स्पर्श में है क्या तब" ॥  
 पत्नी पति का नाम न लेती कहती कर-कर सानी है" ॥१६६॥  
 तीन करण हैं तीन योग हैं सम्बन्धित जो इतरेतर ।  
 एक भला तो इतर भले हैं एक बुरा तो बुरे इतरे ।  
 अपराधी अपराध-सहायक अनुमोदक का एक गणित ।  
 नृप ने किये युवक सह फूला और भगेंड़ी को दडित ।  
 न्याय प्रजा के लिए महिष का बना मुशिक्षा दानी है" ॥१६७॥

## १५. जैसी करनी वैसी भरनी

रामायण-छन्द

अपने कर्म कमाये अब क्या विलापात तुम करते हो ?  
 कैसे मेहं निकलेंगे जब खाद कोष्ठ में भरते हो<sup>१</sup> ।  
 कर्म भार से जीव नरक में नीचे पतारवत् जाता ।  
 हलकेपन से जीव स्वर्ग में ऊँचें दाखवत् पहुँचाता<sup>२</sup> ।  
 तप सयम से ताग्र-कटोरीवत् लघु होता प्राणी है<sup>३</sup> ॥१६८॥  
 घोर असात्ता क्यों मुनियों के ? पहले फेंका था पापान ।  
 सर्व पाप का त्याग किया अब नहीं लगेगा दुःखद वाण<sup>४</sup> ।  
 सहनशीलता रोगोदम में रखकर विलापात न करे ।  
 मानों कजंदार कमों का कजं बड़ा भारी उतरे<sup>५</sup> ।  
 बिना प्रदेशों की हलचल के नहीं निर्जरा मानी है<sup>६</sup> ॥१६९॥

## १६ जैन-दीक्षा

रामायण-छन्द

काटिन काम जैनी दीक्षा का क्या बातों में जोर पड़े ।  
 घड़ी धारु से तन में ज्वर कम्पन से रां रां हुए खड़े<sup>१</sup> ।  
 दीक्षार्थी के आसू आए मोह राग से परिजन के ।  
 हसी कराए यह दुलहावत् रोकर पीछे दुलहन के<sup>२</sup> ।  
 मरी एक भा, मेराणमा बहु कदा मोह अवसानी है<sup>३</sup> ॥२००॥

दोहा

चौमे गोले की तरह, होता जो भजवत ।  
 मयम ग्रन लेता वही, देता सही सबूत<sup>१</sup> ॥२०१॥

रामायण-छन्द

स्वर्गकार 'ओटा' कुम्भारों 'बीरा' ने सयम धारा ।  
 टीक न रहने में दबि उनरी है सयम अमि-ग्रत धारा<sup>१</sup> ।  
 मनेग्रन-अनशन थ्यम्कर अपछन्दापन टीक नहीं ।  
 भारिमात्र ह्यदोनी कर ले रह करके नजदीक नहीं ।  
 गुरु बीर ह्यमाय करें तज गईन वशी हिनानी है<sup>२</sup> ॥२०२॥

टोकम डोसी की शकाएं मिटी बीस छह पत्रों को ।  
गद्गद् स्वर बोला जोड़े तो हैं निर्युक्ति सुसूत्रों को ।  
तीर्थकरवत् आप जगत् में साक्षात् केवलज्ञानी हैं” ॥२१२॥

दोहा

आया लेकर हृदय में, शका का अवलेह ।  
गिरा चरण में भिक्षु के, वनकर नि सदेह” ॥२१३॥

## २२. योग्यता से असर

दोहा

धान्य सीजते हैं सभी, नहीं ‘कोरडू’ धान ।  
योग्य पुरुष ही समझता, नहीं इतर अनजान ॥२१४॥

रामायण छन्द

सम्यक्स्त्री न बिना भति बनता जैसे नग नामक भाई ॥  
मणिपा स्वर्णिम, धविपा मोटी, जब सिद्धान्तों में आई” ॥  
‘सम्यक्स्त्री को पाप न लगता, कहकर बहकाते जन की ।  
बतलाने से लाल क्रोध में, कैसे समझाए उनको” ॥  
गेह दान समान अवल बिन समझ न पाता प्राणी है” ॥२१५॥  
बोले कुछ जन तार निकालो अग्नि भीखणजी ! आप जरा ।  
कैसे तार निकालूँ डडा नहीं दीखता दोष-भरा” ॥  
काला वर्तन काली राव व काली निशा अमावस की ।  
छाने और परोसन वाला अंधा निगा रहे किसकी” ॥  
घटी हवा में बैठ धलाती कहलाती न सयानी है” ॥२१६॥

दोहा

मानव बिना विवेक के, कभी न पाता सत्त्व ।  
हठाप्रही बन होश बिन, खोता अपना सत्त्व ॥२१७॥  
जिसके हृदय न आंख है, वह रामभ समकक्ष ।  
पमकर पद के लोभ में, बनता हरि का भक्ष” ॥२१८॥

## १६. वर्तमान में सामासाभ

रामायण छन्द

वर्तमान में पुन दाता को नाभ हुआ गुम भागों में ।  
मरे चीटिया उसने तो सम्पन्न जुग फिर मुनियों में ।  
नियम भग का दोष उगी को नहीं दिखाने वालों को ।  
प्राहक वस्त्र जनाए तो नुकसान जानने वालों को ।  
वर्तमान में ही हो जाना प्राणी कर्मशाला है ॥२०८॥

## २०. सम विषम दृष्टि

रामायण छन्द

गुण-प्राप्ति की दृष्टि गुणों पर छिद्रान्वेषी छिद्रों में ।  
करते सब तारीफ भवन की पर दुर्जित दुग् गुप्तों में ।  
ध्यान बिना झुटि बार-बार भी हो जानो छद्मस्थों की ।  
किन्तु शुद्ध है नीति व थढ़ा, नहीं स्थापना दोषों की ।  
एकम पूनम चन्द्रोपम मुनि श्रेणी में सम-म्यानी है ॥२०९॥  
सम्पन्न भी विपरीत दृष्टि में देनी बुरी दिखाई है ।  
वस्तु 'पोलिया' वाले को सब देनी पीत दिखाई है ।  
साधु समागम से मगजन गुण दुग्धित होते दुर्जन नर ।  
मन्त्रकार आने से घर-घर छुशिया, टाकनियां घर-घर ।  
मिथ्या-उदर-रोगी को लगती कटु मीठी गुड-धानी है ॥२१०॥

## २१. सम्पर्क से अम दूर

रामायण छन्द

कैसे रोग मिटे पीने की दवा पीठ पर रखने से ।  
मिथ्या-विष उतरेगा कैसे बिना ज्ञान रस चम्बने से ।  
बोला मोजीराम बोहरा—रे ! घर सारा लूट लिया ।  
पाच महाव्रत टूटे ऊपर चार मास का दण्ड दिया ।  
मुनि सम्पर्क साधने से फिरता सशय पर पानी है ॥२११॥  
भृगु ने निज पुत्रों को को थी मुनि सगति हिन प्रथम मनाह ।  
मिलने से सयोग अचानक बने बती वे बेपरवाह ।

टीकम डोसो की शंकाएं मिटी बीस छह पत्रों की।  
 गद्गद् स्वर बोला जोड़े तो हैं नियुक्ति गुप्तों की।  
 तीर्थकर वत् आप जगत् में साक्षात् केवलज्ञानी हैं" ॥२१२॥

बोहा

आया लेकर हृदय में, शंका का अवलेह।  
 गिरा धरण में भिक्षु के, बनकर नि सदेह" ॥२१३॥

## २२. योग्यता से असर

बोहा

धान्य सीजते हैं सभी, नहीं 'कोरडू' धान।  
 योग्य पुरुष ही समझता, नहीं इतर अनजान ॥२१४॥

रामायण छन्द

सम्पत्की न बिना मति बनता जैसे नग नामक भाई ॥  
 मणिपा स्वर्णिम, धविपा मोटी, जब सिद्धान्तो में आई" ॥  
 'सम्पत्की को पाप न लगता, कहकर बहकाते जन को।  
 बतलाने से साल प्रोध में, कैसे समझाए उनको" ॥  
 गेहूँ दाल समान अकल बिन समझ न पाता प्राणी है" ॥२१५॥  
 बोले कुछ जन तार निकालो अग्नि भीखणजी ! आप जरा।  
 कैसे तार निकालूँ डडा नहीं दीखता दोष-भरा" ॥  
 काला बर्तन काली राव व काली निशा अमावस की।  
 खाने और परोसन वाला अधा निगा रहे किसकी" ॥  
 घटी हवा में बैठ खलाती कहलाती न सयानी है" ॥२१६॥

बोहा

मानव बिना विवेक के, कभी न पाता तत्त्व।  
 हठाग्रही बन होश बिन, खोता अपना सत्त्व ॥२१७॥  
 जिसके हृदय न आख है, वह रासम समकक्ष।  
 फंमकर पद के लोभ में, बनता हरि का भक्ष" ॥२१८॥

## नवीन छन्द

गुद की समझ बिना न समझना नरभूढ़ दूसरों के द्वारा ।  
छोड़ू अगर चेप तो रोया पीटा जाए मिथ्यन सारा" ।  
नर बिना समझ के कहते हैं कब ही कुछ कब ही कुछ स्वर से ।  
दूध रम्सी से यह बाधकर पीपन को खींच रही कर से" ॥२१६॥

## २३ विनयी अविनयी

## नवीन-छन्द

विनयी की विद्या सफल-सफल मिल जाते उसके मधुर वचन ।  
है पैर सगर्भा हयिनि के, घर पर आया बुद्धिमानन्दन ।  
निष्फल विद्या विनयेतर की तत्क्षण कह देता विनचितन ।  
हैं हाथी के पैर बड़े ये, मर गया अरे । बुद्धिमानन्दन" ॥२२०॥  
कितना ही शिष्य कृतघ्नी को ऊर्ध्वोर्ध्व चडाओ अम्बर में ।  
वह तो लात मारता अपने उपकारी गुरु के भी शिर में ।  
योगीश्वर ने भद्र योग से छट सिंह बनाया घूँहे को ।  
वह योगी को खाने आया फिर तां यह खत्म हुआ देखो" ॥२२१॥  
मुट्ठिवर, कुमनि सिखा औरों को गुतरा अपने पर लाता है ।  
मर गया बनद, बुढ़कना दुष्ट गाड़ी में जोता जाता है" ।  
दुहरी बात बनाते मुयरी हाकोत क्या-वाचक जैसे ।  
बेदा-बेटी धोख नकारा कह देता लेने को पैसे" ॥२२२॥  
मन्त्री नमकहराम एक को, मिमता है मृत्यु दंड भारी ।  
मन्त्री सामग्रोर तो पाता, वापस नृप से विमृता सारी" ।  
बहता नाक कटा कर नरुटा भगवान् दियाई देते हैं ।  
उगके चगुस में फम भोले जन पय बही ले लेते हैं" ॥२२३॥  
स्वार्थी ब्राह्मण चार दूध तां दुह लेने गुश हो बारी से ।  
बारा नहीं डालना बोई, पाये धिक्कृति नर-नारी से" ।  
मुनिव्य प्रहृति बदरना अपनी चाहे ऊपर से बदलो तन ।  
बुद्धिद्वय कट प्रकट हुआ है मारा तब पशुओं ने तत्क्षण" ॥२२४॥  
गानी में मौ बार प्यात्र को धोओ आ गया यमुना पर ।  
उगरी वासु न मिटनी जंमे त्यो प्रहृति अविनयी की बदलर" ।  
करना जाना दुष्ट दुष्टता फिर दूध घुना सा भी बनता ।  
गाना बृहन्नगर बृहन्नी भी दिखलाना सम्मुख सज्जनना" ॥२२५॥



## रामायण-छन्द

मयविज्ञ ने जहर उतारा अहि का वह लौकिक उपकार ।  
 अनशन दे भव पार उतारा, कृपि ने वह आत्मिक उपकार' ।  
 पनि वियोग से एक रो रही एक न रोती धर्म-रता ।  
 सोर प्रशसा पहली की पर मुनि गाता पर की क्षमता ।  
 सोकोत्तर उपहार सार है इतर राग अहलानी है" ॥२४६॥  
 एक बना नय चोर मरे बदले में दिये नवति नय मार ।  
 मादृकार की हुई हेनना ऐसा है लौकिक उपकार" ।  
 भगवन्ती-पोषक छह कायो का पोषक है पाप अतः ।  
 देकर नर महयोग चोर को बना सेठ का शत्रु ह्यतः" ।  
 दीव दया ने किया कृपिक को कृपि पर चली कृपाणी है" ॥२४७॥

## २८. सायछ-निरयछ दया

## बोहा

दया-दया सब कठ रहे, कठिन ममक्षना मर्म ।  
 मृदु दया जो पामना, पाता वह शिव-शर्म" ॥२४८॥

मय—धर्म की जय हो जय...

पामना प्रीति दया, प्राप्ति मदन उदवालो । पालो...  
 मोहा पार मगायो । पालो ॥ध्रुव॥  
 दिये हर-मय है कृपयागी, ममता तर-वेन दिया प्यारी ।  
 दया की मृपनाई भागी, जान-गुरभि फंसायो ॥पा० २४९॥  
 मय मय प्रीति है सब ही, प्रीति के भी दुष्टरु सब ही ।  
 मृदु नय न कठिन सब ही, अन्तर ज्योति मगायो ॥पा० २५०॥

## बोहा

दया न प्रीति प्रीति का, मृदु न शिवा कथ्य ।  
 दिया दुमहा ममता, इतर (नदी मारना) दया है मय" ॥२५१॥

मय—धर्म की जय हो...

पामना प्रीति दया, प्राप्ति मदन उदवालो । पालो...  
 मोहा पार मगायो । पालो ॥ध्रुव॥

कहते जन पर प्राण बचाना, दया धर्म है यही पुराना ।  
 भूखे प्यासे को दो खाना, निबल सहाय सज्जालो ॥पा० २५६॥  
 (पर) मोह राग का जहा समागम, बल-प्रयोग वा पोष असयम ।  
 द्रव्यादिक का लालच लघुतम, दया न वह अजमालो ॥पा० २५७॥  
 जब तक सच्ची दया न आई, तब तक सार्थक नहीं पढ़ाई ।  
 बिना बीज की खेती भाई, करुणा बीज उगालो ॥पा० २५८॥  
 नेमिनाथ जिनरक्षित उपनय, समझो उभय दया के अभिनय ।  
 अभय-दान दो होकर निर्भय, आगम-वचन जमालो ॥पा० २५९॥  
 तीन, सात दृष्टान्त दया पर, दिये भिक्षु ने किसने सुन्दर ।  
 शीघ्र समझ सकता है हर नर, सुन दिल बीच रमालो ॥पा० २६०॥

### रामायण-छंद

चोरों की चोरी छूटी सह महाजन के धन प्राण बचे ।  
 हिंसक की हिंसा छूटी सह बकरो के भी प्राण बचे ।  
 व्यभिचारी व्यभिचार-त्याग से वेदया मरी कृप मे गिर ।  
 हेतु तीसरे में जब पाप न धर्म उभय में कैसे फिर ?  
 पाप टलाने हित हितशिक्षा देते अन्तर्वाणी है ॥२६१॥  
 भैंस चली नाड़े में बकरे धुलिये कण में तत्पर है ।  
 बैल चले भूकद-स्कंध पर गायें कच्चे जल पर है ।  
 पक्षी कच्छर, बिल्ली चूहे मक्खी-दल गुड बीनी पर ।  
 धर्म एक को रखने में तो क्यों न सभी में दो उत्तर ॥१॥  
 धर्म प्राण-रक्षा में उसकी जो न असयत प्राणी है ॥२६२॥  
 कीड़ी को कीड़ी जाने वह ज्ञान, कीड़िया ज्ञान नहीं ।  
 दया कीड़ियों को न मारना, लेकिन वे तो दया नहीं ॥१॥  
 छह कार्यों के जीव खिलाने-धाने में जब पाप सही ।  
 पानी जिनमें स्वयं आ गया मयो करते स्वीकार नहीं ॥१॥  
 ज्यो त्यो रखो सभी जीवों को कहने आगम-ज्ञानी हैं ॥२६३॥  
 अल्प पाप बहु कर्म-निर्जरा बहते बाग बसाने में ।  
 तो फिर होगी हिंसक सिंहादिक को भी मरवाने में ॥१॥  
 एकेन्द्रिय जीवों का वध कर पचेन्द्रिय के पोषण में ।  
 धर्म न होता बलात्कार से कबही जीवन शोषण में ॥१॥  
 धर्म न हिंसा बिना कहे तो

इतर पाप (मुषावादादिक) तत्स्थानी है ॥२६४॥

## रामायण-धनु

मन्त्रिने ने अहं उताग अहि का वह लौकिक उपकार।  
 अहं ने दे मर पार उताग, अहि ने वह आत्मिक उपकार"।  
 दहि सिनेम मे एक मे री एक न रोनी धर्म-रता।  
 मोक प्रसन्न दहनी की पर मुनि गाना पर की दामना।  
 मन्त्रिने उताग मार है इतर राग अहंलानी है" ॥२४॥  
 एक वन मर मोर मने वदने मे दिने मन्त्रि नर मार।  
 मन्त्रिने उताग मार है लौकिक उपकार"।  
 मन्त्रिने उताग मार कागो का पोषक है पाप अहं।  
 देकर मर मन्त्रिने मोर को बना मेठ का शत्रु स्वयं"।  
 मन्त्रिने उताग मार कागो का पोषक है पाप अहं" ॥२५॥

## २८ गानय-निरवय दया

## दोहा

१०१० १०१० मर कद रहे, मन्त्रिने मन्त्रिने मार।  
 १०१० १०१० मर कद रहे, मन्त्रिने मन्त्रिने मार" ॥२५॥

## मन्त्रिने मन्त्रिने मार" ॥२५॥

१०१० १०१० मर कद रहे, मन्त्रिने मन्त्रिने मार।  
 १०१० १०१० मर कद रहे, मन्त्रिने मन्त्रिने मार" ॥२५॥  
 १०१० १०१० मर कद रहे, मन्त्रिने मन्त्रिने मार।  
 १०१० १०१० मर कद रहे, मन्त्रिने मन्त्रिने मार" ॥२५॥  
 १०१० १०१० मर कद रहे, मन्त्रिने मन्त्रिने मार।  
 १०१० १०१० मर कद रहे, मन्त्रिने मन्त्रिने मार" ॥२५॥  
 १०१० १०१० मर कद रहे, मन्त्रिने मन्त्रिने मार।  
 १०१० १०१० मर कद रहे, मन्त्रिने मन्त्रिने मार" ॥२५॥

## दोहा

१०१० १०१० मर कद रहे, मन्त्रिने मन्त्रिने मार।  
 १०१० १०१० मर कद रहे, मन्त्रिने मन्त्रिने मार" ॥२५॥

## मन्त्रिने मन्त्रिने मार" ॥२५॥

१०१० १०१० मर कद रहे, मन्त्रिने मन्त्रिने मार।  
 १०१० १०१० मर कद रहे, मन्त्रिने मन्त्रिने मार" ॥२५॥

बहने जन पर प्राण बसाना, दया धर्म है पत्नी भुगना ।  
 भूषे प्यासे को दो पाना, निदम मत्तार गमावो ॥२४६॥  
 (पर) मोह राग का बहो समानम, मन-प्रनाम को पोष अगमम ।  
 द्रव्यादिक का सात्वत मनुष्यम, दया न यह अत्रमावो ॥२४७॥  
 जब तक मुखी दया न आई, तब तक मार्गिक नहीं पड़ाई ।  
 बिना बीज को बोनी भाई, बरणा बीज उगावो ॥२४८॥  
 नेमिनाथ दिनरहित उदय, समता उदय दया के अधिनय ।  
 अक्षय-दान दो होकर निर्भय, आगम-बचन दमावो ॥२४९॥  
 मौन, मात दुष्टाव दया पर, दिने निरु ने दिने मुन्दर ।  
 शीघ्र गला मक्का है ह/ नर, मुन दिन बीज गमावो ॥२५०॥

### साध्यायन छंद

बीरो को बीरो लूटी गह महाजन के धन प्राण बधे ।  
 हिमक को हिमा लूटी गह बरसों के भी प्राण बधे ।  
 अविचारो अविचार-त्याग मे बेच्यो मरी कण मे फिर ।  
 हेतु सांगरे मे जब पाप न धर्म उभय मे बेने फिर ?  
 पाप टमाने हिा हिनगिता देने अल्पवाणी है ॥२५१॥  
 भेग बनी माढ़े मे बकरे मुनिष बण मे उत्तर है ।  
 बीम बने भूवद-वध पर गामे बधे जल पर है ।  
 पत्नी बरपर, बिम्बी लूटे मक्खी-दल मुह भीनी पर ।  
 धर्म एक को रखने मे तो क्यों न सभी मे दो उत्तर ॥१॥  
 धर्म प्राण-रसा मे उमकी जो न अगमन प्राणी है ॥२५२॥  
 बीटी को बीटी जाने वह ज्ञान, कीटिया ज्ञान नहीं ।  
 दया बीटियों को न मारना, मेरिन मे तो दया नहीं ॥१॥  
 छह काया के जीव चिमाने-धान मे जब पाप गही ।  
 पानी त्रिनमे ग्वय था गया क्यों करते स्वीकार नहीं ॥१॥  
 ज्यों र्यों र्यों सभी जीवों को कहने आगम-ज्ञानो है ॥२५३॥  
 अल्प पाप बहु कर्म-निर्जरा बहने आग बुझाने मे ।  
 तौ फिर हांगा हिमक मिटादिक को भी मरवाने मे ॥१॥  
 एकेन्द्रिय जीवों का वध कर पंचेन्द्रिय के पोषण मे ।  
 धर्म न होना बलात्कार मे कबही जीवन शोषण मे ॥१॥  
 धर्म न हिमा बिना बहे तो

द्वारपाप (मुपावादादिक) तत्परानी है ॥२५४॥

## दोहा

तनेन्द्र को मार ने पीन्द्र का पोंग।  
करना मरिहो धर्म का रंग डीन्द्र में दोग" ॥२६५॥

## सामान्य-गुण

यत्न दयामारा का करो रीर मन्द धर्म भावना।  
हिमागर्भी जो कुशाव है न रंगो मर मे भरार"।  
मन्द बलाने वाला हिमा राव जाव-रा में न मर।  
अहि को गूहा मिना न मर म प्रेरक ता राव मर"।  
ममताकर हिमा कुरुना मर को रंग-मरागी है।" ॥२६६॥

## २८ पात्र अपात्र दान

सव—अव मानव मरही जाल रे...

है पात्र दान का साम रे, दाना को मर निराव।  
यह अमनी फूल गुलाव रे, गो मीरभ रंग-रंग भावा ॥२६७॥  
देना उपहार से दुनिया में दान है।  
रक्ता शिवपुर का द्वार धर्म दान है।  
कर देगी मही हिमाव रे। लो सौरभ... ॥२६७॥

## दोहा

आध्यात्मिक दम दान में, धर्म दान है एक।  
मासारिक नव दान है, आगम में उत्तम" ॥२६८॥

सव—अव मानव...

समझो विभेद पात्रापात्र में।  
प्रेत उपर-भू, धेनु अहि मात्र में।  
पद करके जान किताव रे"। लो सौरभ... ॥२६९॥  
प्रथम सुपात्र, शुद्ध द्रव्य, दातार हो।  
मंदा घृत चीनी से सीरा तैयार हो।  
वरना राव मान पराव रे। लो सौरभ... ॥२७०॥  
हलुआ पूड़ी बना के देना पाप है।  
ताम निर्दोष में गाया अमाप है।  
चाहे हो रोटी राव रे। लो सौरभ... ॥२७१॥

नैया तरती है अध्यात्मिक दान से।

सुनो भिक्षु दृष्टान्त कुछ ध्यान से।

सीखो तुम सही जवाब रे। लो सौरभ...॥२७२॥

### रामायण-छंद

सौ मन चने भूगडे, गुगरी, रोटो का बहु दान दिया।  
 त्याग एक कर पाया, किसने अधिक धर्म का साभ लिया<sup>११</sup> ?  
 एक भिक्षु को चने सेर भर दिये, एक ने पीस दिये।  
 रोटी की, पीताबु पिलाया कौन अधिक धर्मी कहिए<sup>१२</sup> ?  
 अन्न दान में पुण्य न चाहे पिया कही का पानी है<sup>१३</sup> ॥२७३॥  
 पुण्य दया-युत सलिल पिलाना क्यों कि भाव रक्षा के हैं।  
 करें परीक्षा हम छुरी की नही भाव हत्या के हैं<sup>१४</sup>।  
 असंयमी को देने से जब खुद का समय टूटेगा।  
 ऊर्ध्व भीम से गिरने पर सिर क्यों न इतर का फूटेगा<sup>१५</sup>।  
 कहते पुण्य अपर को फिर क्यों खुद न असयम-दानी है<sup>१६</sup> ॥२७४॥  
 श्रावक वेद्या सुल्य किये जब पाप उभय को देने में।  
 मा वेद्या सम की तुमने जब धर्म न सलिल पिलाने में<sup>१७</sup>।  
 श्रावक द्वारा जिमे खिलाओ अथवा दो निज पात्रो से।  
 करो मनाह किसी को देते वा लो किसके हाथों से<sup>१८</sup>।  
 दान न देते हम श्रावक तो क्यों न खुशी मनमानी है<sup>१९</sup> ॥२७५॥  
 अन्य दान में दोष साधु को क्यों न लगे गृहजन को फिर।  
 हाथी उड़ते जिस आधी में क्यों न उडे पूणी खिर-खिर<sup>२०</sup>।  
 दया - दान - उत्थापक तेरापथी कहते केवल है।  
 पर्युषण में बद किया क्यों देना जब धर्म - स्थल है<sup>२१</sup>।  
 रुप्य आदि देने से ममता कभी न होती फानो है<sup>२२</sup> ॥२७६॥  
 वर्तमान सावद्य दान में मौन साधु को हितकर है।  
 हलवानो के उभय किनारे छूने से जनता कर है<sup>२३</sup>।  
 प्रवचन में सावद्य दान का फल गाने में तनिक न दोष।  
 असयती को देने में एकान्त पाप यह आगम-घोष।  
 लेकिन देते समय न कब ही बन सकते व्यवधानी है<sup>२४</sup> ॥२७७॥

## २६. चर्चाके चमत्कार

दोहा

चर्चावादी भिक्षु ने, चर्चाएँ रसदार।  
कर-कर के दिखना दिया, तत्त्व सत्त्व साकार ॥२७८॥

सय—बाज़र की रोटी पोई...

चर्चावादी स्वामीजी के चर्चा-स्थल कुछ बतलाता।  
श्रुति-भोचर अथवा दृग्-भोचर चर्चा में तो रस आता ॥२७९॥  
'काफरला' में एक बार श्री भिक्षु शिष्य सह ठहराये।  
मूर्ति-प्रतिष्ठा करवाने को पतिविजयजी भी आये।  
मिलन मार्ग में हुआ सहज ही परिचय पहले हो पाता ॥२८०॥  
बतलाओ क्या नाम तुम्हारा ? भीखण मेरा नाम सही।  
क्या भीखणजी तेरा पथी ? हाँ मैं साक्षात्कार वही।  
गाथ तुम्हारे निक्षेपों की चर्चा हित मन ललचाता ॥२८१॥

दोहा

भिक्षु कितने निक्षेपे कहे, बतलाएँ क्रमवार ?  
यतिजी—नाम स्थापना द्रव्य फिर चोमा भाव विचार ॥२८२॥  
भिक्षु—वदनीय है कौन सा ? यति—चारों वन्ध हमेश।  
भिक्षु—भाग्य हमें भी भाव तो, चर्चणीय है शेष ॥२८३॥

सय—बाज़र की रोटी...

भिक्षु—कुम्भकार का नाम दिया भगवान् वन्ध क्या उसे कहो ?  
यतिजी—उमको क्या वन्दन जिम जन मे गुणन देवका एक अहो।  
भिक्षु—गुण निष्पन्न नाम नों हम ही जप-जप पाने मुद्यमाना ॥२८४॥  
भिक्षु—ग्रन्थ स्थापना का अर्थ प्रतिमा रख स्वर्ण वा रूपे की।  
मंत्र धानु पत्थर की क्रमज. कहो वन्ध क्या रख ऐसी ?  
यतिजी—हा हा मन्त्र में पर गोवर की

प्रतिवृत्ति हित मिर डोलाता ॥२८५॥

चोथानुर हो बोने बान न करनी जरा तुम्हारे मे।  
करने नम प्रथु की आशानन साथ न कभी हमारे मे।  
दो बहुर वे गये भिक्षु भी आये अवसर के जाना ॥२८६॥

पुनरपि लोगों के कहने से चर्चा हित यतिजी आये।  
 मध्य दुकान एक थी जिसमें स्वामीजी भी पहुँचाये।  
 चर्चा आचाराग पाठ की बने प्रथम गुरु (भिक्षु) आख्याता ॥२८६॥  
 नहीं दोष धर्मार्थ जरा भी जीवों की हिंसा करना।  
 यह बनायं पुरुषों की वाणी सुत्र पाठ स्मृति में धरना।  
 बोले यतिजी त्रुटि इस प्रति में मैं अपनी प्रति दिखलाता ॥२८७॥  
 वही पाठ निकला तब थर-थर घूँज रहे दोनों कर हैं ॥  
 क्या कारण पूछा चारों में, तब तो बड़ा कोप ज्वर है।  
 साले का सिर छेद अब ही खून नयन से टपकाता ॥२८८॥  
 भिक्षु—तीन लोक की सब महिलाएँ मेरे माँ-भगिनी सम हैं।  
 तुम घर में यदि गृहिणी हो तो सबमें उसका भी क्रम है।  
 इस हिंसा से कहा, अन्यथा वितथ वाक्य यह ठहराता ॥२८९॥  
 रखा भारने का क्या मुझको कुछ आगार नियम लेते ?  
 सुनकर खिन्न हुए हैं अति हो, सकुचाते उत्तर देते।  
 'क्यों हमको लज्जित करते' यो कहकर थावक ले जाता ॥२९०॥

दोहा

आये फिर पीपाड में, किन्तु न चर्चावाद।  
 पीछे पाली में हुई, चर्चा कुछ दिन बाद ॥२९१॥

सम—बाजरे की रोटी...

भिक्षु—मिश्री के बदले भिक्षा में प्राप्त नमक का क्या करना ?  
 यतिजी—पडा पात्र में जिससे मुनि को खा लेना वह शान्तमना।  
 तब तो खा लेना यदि गुड के बदले में दे विष दाता ॥२९२॥  
 नहीं जवाब आया दिल में भी कष्ट स्पष्टत पाया है।  
 ऐसे प्रश्नोत्तर में गुरु ने अच्छा सुयश कमाया है।  
 सत्य-न्याय-युक्त तर्क युक्ति से ऊँचा शब्द फहराता ॥२९३॥

दोहा

भय खाते हम भिक्षु ने, करते चर्चा बात।  
 जोड़ सिखाते विषय वह, गृहि को हाथोहाथ ॥२९४॥  
 थावक मोहक अकबरी, गोगूदा के साथ।  
 समझाये हैं भिक्ष ने, चर्चा कर सायास ॥२९५॥

एकलडा क्यों जीव है पचलडा है जीव ।  
 चतुरात्मा सब सिद्ध मे, कहें चौलडा जीव" ॥२६६॥  
 आत्मा सात व आठ की ? श्रावक जन में छाप ।  
 सत्य अपेक्षा उभय की, न करो आग्रह आप" ! ॥२६७॥  
 पट्ट चरचा मे भिक्षु सम, दुर्लभतम मुनि-पाद ।  
 कट्ट चरचा के समय में, आएं वे याद" ॥२६७॥

### ३०. दूरदर्शिता

रामायण-छंद

प्रभु का पय चलेगा गुह्यर ! इस कलियुग में अब कय तक ?  
 दूढ-श्रद्धा आचार-त्रिया फिर स्थिर सीमा में मुनि जब तक" ।  
 प्रतिक्रमण क्यों पड़े-पड़े कर रहे बुढ़ापे में प्रभुवर ।  
 भावी शिष्य करेंगे बंटे-बंटे तो कुछ स्मृति कर कर ।  
 दूर-दर्शिता बटी भिक्षु की चितन तो अवधानों है" ॥२६८॥  
 नीने लेने आप कहों क्या करना सग्न सगाई है ?  
 भूय लगे तब यादगार मे खाना-त्याग मिठाई है" ।  
 बाटी की घाटी पर चढ़ते पूव यकावट आई है ।  
 जानू पर दे हाथ मुगुश ने गाथा एक सुनाई है ।  
 दूढ अवस्था भीषण रास्ता दुविधा दोनों कानों है" ॥२६९॥

### ३१. अध्ययनसाधो

रामायण-छंद

ज्ञान-ध्यान का उद्यम हृदय अविरल गति से चलता था ।  
 'गमय गोचर मा पमाय' आगम पद यह फलता था ।  
 गार्ग-गार्ग रात पश्चिम करते जन समझाने में ।  
 कभी-कभी तो निशा पड़ी दो गहरी सूर्य उगाने में ।  
 ऐसे जीवन शौंका तब ही गण-आशी विक्रमानी है" ॥३००॥  
 नेत्रन की मदन तक अपने स्वप्नों बोझ उड़ाते थे" ।  
 चरम अवस्था मे भी स्वेच्छा मिश्रा लेने जाने थे" ।  
 शिष्य बड़े मुक्तिनो न माय मे सेवा सूच बजाने थे ।  
 विविध ब्रह्माण् मोक्ष-मोक्ष कर परमानन्द मनाने थे ।  
 लेने वाता पाव आर्द्रिण गुरु गुरुनरु गमदानी है" ॥३०१॥

## दोहा

जमी छाप साधुत्व को, पौरुष की अत्यंत ।  
कहते साधु विपक्ष के, हैं भीखणजी सत" ॥३०२॥

## ३२. दिप्यों का योग

### दोहा

शिष्य गुरु जोड़ी मिली, क्या उमका उल्लेख ।  
दंग रह गया ज्योतिषी, दिप्याकृति को देख ॥३०३॥  
भिक्षु व भारी छेतसी, बेणी हेम पवित्र ।  
महापुरुष पाचों मिले, एक स्थान में चित्र ॥३०४॥  
सहयोगी धरपान मुनि, तत्पुन पतह प्रतीत ।  
मेवाभावी प्रमुखनर, टोकर हर मुक्तीत ॥३०५॥  
मिले भिक्षु को भाग्य से, शिष्य बड़े अनुकूल ।  
जिसमें थी जिन धर्म का, गया बगीचा फूल" ॥३०६॥

## ६३. स्वामीजी के प्रमुख श्रावक

### गीतक-दृष्ट

जोधपुर के थे निवासी व्यास गेरनालजी ।  
ममन कर गुरु भिक्षु से श्रावक बने मुक्तिमानजी ।  
कच्छ 'वंदर माइवी' थे गये अपने कार्य बज ।  
गोत्र डोगी-नाम 'टीकम' बोध पाये कर बहुर" ॥३०७॥  
विदित श्रावक गोभजी पुर बेनवा के उच्चनम ।  
अत्य थडा हृदय में थी भिक्षु स्वामी ने परम ।  
परिरिपति यम गये बारा, भिक्षु ने दर्शन दिये ।  
सोह की जंजीर टूटी मुक्त शट विधि ने बिये" ॥३०८॥  
विजयचन्द पट्टापाथी के थे पहले स्थानस्वामी ।  
रजनी में बर्बा कर ममते भक्त बने दुःख शिरवासी ।  
धार्मिक गम्भिर-दृष्टि बहावे भाये गुरु ने मुक्त अवशान ।  
परिचय दिया बड़ा निष्ठा का बर-बर जनमे बर्षा बाज" ॥३०९॥  
पुर पीताइ निवासी धारक दोषमुनाबन नाम गुमान ।  
दुःखमी दुःखिण्ड दृष्ट के प्रति थडा क्षति साधिव जान ।

भिक्षु रचित साहित्य प्रागण, धारा कर विधिनत् कंठस्थ ।  
रत स्वाध्याय मनन मे रहते करते गुरु की सेवा स्वस्थ" ॥३१०॥

### ३४. विहार-स्थल

रामायण-छन्द

रहे विचरते दोष समय तक नहीं रहे स्थिरवास कहीं ।  
अग स्वस्थ परिपूर्ण इन्द्रियो आधि-भ्याधि का नाम नहीं ।  
धार्मिक जागृति चार देश मे स्थली देश भी स्पर्श लिया" ।  
आदिम जिन घत् घमं बता कर जन-जन का उद्धार किया ।  
दी है देन बडो इस युग को युग की नग्न पिछानी है" ॥३११॥

बोहा

प्रभु ने अन्तिम वर्ष मे, स्पर्श राम अनेक ।  
किया बडा उपकार तो, दी दीक्षा दश एक" ॥३१२॥

### ३५ वात्सल्य भाव

रामायण-छन्द

अन्तिम पावस सिरियारी मे सप्त श्रमण सह कर पाये ।  
भावक हुनमचन्द आछे की आपण में गुरु ठहराये ।  
सावन मे दस्तों का कारण हुआ असातोदय से कुछ ।  
फिर भी कुछ परवाह न करते साहस रस शरता सचमुच ।  
साधारण उपचार चल रहा पर न व्यथा छितरानी है ॥३१३॥  
पर्यूपण का पर्व आ गया तीन समय होता व्याघ्यान ।  
शुनल चोष को देख क्षीण तन कहते शिष्यो को साह्वान ।  
तुम तीनों के साहचर्य से पाला संयम सुख-मूर्ख ।  
चित्त-समाधि रहो है अच्छी विनय किया तुमने भरसक ।  
शिष्य भारमल से तो भानो प्राग्भव प्रीति पुरानी है ॥३१४॥

बोहा

गुण ग्राहक श्री भिक्षु के, वचन इसु सम मिष्ट ।  
मुनकर गद्गद् हो गए, विनयी शिष्य विशिष्ट" ॥३१५॥

## ३६ अन्तिम शिक्षा

बोहा

अन्तिम शिक्षा दे रहे, भावभरी गण-छत्र ।

मुनिगण आवक-आविका, सुनते हैं उभयत्र ॥३१६॥

रामायण-छन्द

जैसा मुझको समझ रहे तुम रखते मेरी पूर्ण प्रतीत ।  
 वैसे भारीमाल-चरण मे रहना बन कर परम विनीत ।  
 इसकी आज्ञा मे ही चलना, देना देख-देख दीक्षा ।  
 सयम रत्न सुरक्षा करना सेना भाधुकरी भिक्षा ।  
 रखकर एकीभाव परस्पर शोभा अधिक बढ़ानी है ॥३१७॥

विनय प्रणाली कायम रखना जो ऋषि-संस्कृति की जड़ है ।  
 अविनय उच्छृंखलता की स्खलना से होती गड़बड़ है ।  
 भद्र अथ वत् विनयी भुनि है विनयेतर गर्दभ कम मे ।  
 दोनों को उपमा यथार्थतः ही प्रभुवर ने आगम में ।  
 विनयी-भुनि शृंगार सय मे चाहें अल्पज्ञानी है ॥३१८॥

गीतक-छन्द

प्रभो ! है तकलीफ क्या कुछ ? नई तो बिल्कुल नहीं ।  
 मुझे लगता आ गया नजदीक अब आयुष्य ही ।  
 पर न तिल भर मृत्यु का भय, परम पुलकित-हृदय में ।  
 सत्य प्रभु का पथ बताकर हो गया कृत कृत्य मैं ॥३१९॥

जा रहे हैं आप स्वर्गों मे अहो गुरु-देवता ।  
 छटा अद्भुत है वहाँ पर देवता ही देवता ।  
 है न पुद्गल-सुख-पिपासा क्योंकि वे निस्सार हैं ।  
 मन लगा है मोक्ष-सुख से जुड़े उनसे तार है ॥३२०॥

३७ आत्म समाधि-रत

बोहा

की विचित्र आलोचना, क्षमायाचना और ।

मन्त्री रस भरकर बने, आत्मानन्द विमोह ॥३२१॥

### रामायण-छन्द

सायत्सरिक पर्व दिन भाद्रव शुक्ल पंचमी का आया।  
 द्योविहार उपवास किया अति तृप्ता परीपह सह पाया।  
 किया पारणा अल्प छठ को किन्तु अपच से हुआ यमन।  
 त्याग किया उस दिन फिर दो दिन नाम मात्र ही लिया अशन।  
 क्रमशः चिन्तन कर भोजन के बनते प्रत्याश्यानी हैं ॥३२२॥  
 नवमी दसमी को शिष्यों की केवल मानी है मनुहार।  
 बोलने निराहार अन्न रहना दूकृतम मेरा हुआ विषार।  
 प्यारम दारम को कर बेला, बेला में फिर आजीवन।  
 विधिवत् अनशन ग्रहण किया है चमकाया समय-जीवन।  
 फैली उस उत्कृष्ट त्याग की सौरभ चारों कानी है ॥३२३॥  
 दर्शन हित जन आने अति ही त्याग विराग बढ़ाते हैं।  
 महामना की चरण-धूलि में जीवन सफल बनाते हैं।  
 तेरम के दिन अवधि-ज्ञान का चित्र सामने लाते हैं।  
 सम्मुख जाओ साबू आ रहे फिर सतिमा, गूँह गाते हैं।  
 दोनों दातें मितों अचानक अद्भुत हुई कहानी है ॥३२४॥  
 चार तीर्थ का मेल मिला है भिक्षुराज के अनशन पर।  
 धन्य-धन्य सब कहते कैसा कन्दश चढ़ाया जीवन पर।  
 बैठे-बैठे ध्यानासन में ध्यान तीन प्रभुवर अपलक।  
 चले गये गुरुमोंक ओक में रहे देखते मुनि धावक।  
 अन्न तो रही हृदय में स्मृति की एक मात्र महनाणी है ॥३२५॥

### दोहा

तेरम-मगनवार था, डेढ़ प्रहर दिन शेष।  
 मान माम का आ गया, अनशन अन्न मुविशेष ॥३२६॥  
 मटो नेरह पट की, मानों देव-विमान।  
 बनने हो श्री भिक्षु ने, छोड़े झटपट प्राण ॥३२७॥

## उपसंहार

### मनोहर-छन्द

तेरस के दिवस ही भिक्षु का महान् जन्म,  
 तेरह ही साधु शुद्ध पथ के प्रस्थान में।  
 तेरह श्रद्धालू मिले सामायिक पापघ में,  
 तेरापथ नाम अर्प अनोखा विधान में।  
 तेरह नियम मूल साधु के यत्नाएँ मुख्य,  
 रचे हैं तेरहद्वार गूढ़ तत्त्वज्ञान में।  
 से के 'नवरत्न' तिय आधिर मे तेरस की,  
 तेरापथ नाम किया अमर जहान में ॥३२८॥

### दोहा

मंगल को गुरु भिक्षु का, जन्म हुआ साकार।  
 मंगल को गुरु भिक्षु का, स्वर्गगमन अवधार ॥३२९॥

### रामायण-छन्द

धर्मवीर ! निर्भीक ! सहिष्णु ! जग-उद्धारक ! ज्योतिर्मय !  
 प्राण-पत्र अभिनदन का है अर्पित तुमको तू स्मृतिमय।  
 भक्ति भाव की जल-तहरों से हृदय भरा है ओन. प्रांत।  
 तेरे पद चिह्नों पर चलने से होता आत्मिक उद्योत।  
 अमर कीर्ति क्या कृतिया तेरी गण में गण-नेनानों ! है ॥३३०॥

### दोहा

समाचार मुरवात के, मुन जन मन में गेद।  
 हीरविजय मति ने कहा, टूटी दिल उम्मेद ॥३३१॥  
 भरत क्षत्र में एक थे, प्रज्ञोत्तर दानार।  
 भिक्षु गए मुरघाम मे, बरष्ट हुआ अनपार ॥३३२॥

## शतक-समूह

गुरुमणि परे दिन छाटकर उठार परमी का आगा।  
 चौरहाउ इराम किया अति गुना वगीरत मह पागा।  
 किया वाग्गता अन्त रुठ को हिन अन्त मे गुना वमन।  
 त्याग किया उम दिन फिर दो दिन नाम मान हो गिया अन्त।  
 प्रमग निम्नन कर भोजन के बनते प्रयागनामी है ॥३२२॥  
 नवमी दममी को मित्रों को नेत्र मानो है मनहार।  
 योंन निराहार भर रत्ना दुहरम मेरा दुखा विचार।  
 ग्यारम वाग्ग को कर येना, यो मे फिर आजीवन।  
 विधियन् अनगन बहग किया है वमकाया मतम-जोवन।  
 फैली उम उगूट्ट रगाग को गौरम चारों कानी है ॥३२३॥  
 दमन हिन जन जाने अति हो राग रिगम बगाने है।  
 महामना की वग्ग-धुनि मे जीवन मकन बनाने है।  
 नेरम के दिन अवधि-ज्ञान का निष गामने लाने है।  
 मम्मुर जात्रा माधु आ रहे फिर गनिषा, गुरु माने है।  
 दोनों बातें मियों अगानक अरुमन हृई कहानी है ॥३२४॥  
 चार तीर्थ का मेन मिना है मिशुरात्र के अनगन पर।  
 धन्य-धन्य सब कहते कैगा वनग बड़ाया जीवन पर।  
 बंटे-बंटे ध्यानामन मे ध्यान लोन प्रभुवर अगनक।  
 चले गये गुरुनाक ओक में रहे देखने मुनि श्रावक।  
 अब तो रही हृदय मे स्मृति की एक मात्र महनामी है ॥३२५॥

## दोहा

तेरम-मगनवार था, टेढ़ प्रहर दिन दीप।  
 मान याम का आ गया, अनगन न्न मुखिदीप ॥३२६॥  
 मडी तेरह गड की, मानो देव-विमान।  
 बनने ही थी मिशु ने, छोड़े शटपट प्राण ॥३२७॥

## उपसंहार

### मनोहर-छन्द

तेरम के दियत ही भिक्षु का महान् जन्म,  
 तेरह ही साधु जुड़ पथ के प्रस्थान में।  
 तेरह थढ़ालू मिले मामाधिक पौषध में,  
 तेरापथ नाम अर्थ अनोग्य विधान में।  
 तेरह नियम मूल साधु के वनाए मुख्य,  
 रचे हैं तेरह्दार गूढ तत्त्वज्ञान में।  
 ले के 'नवरत्न' तिथि आग्रि में तेरग की,  
 तेरापथ नाम किमा अमर जहान में ॥३२८॥

### दोहा

मंगल को गुरु भिक्षु का, जन्म हुआ गावार।  
 मंगल को गुरु भिक्षु का, स्वर्गगमन अवधार ॥३२९॥

### रामायण-छन्द

धर्मवीर ! निर्भीक ! सहिष्णु ! जग-उद्धारक ! उद्योतिमय !  
 प्राण-मय अभिनंदन का है अरि तूमको तू मृन्निमय।  
 भक्ति भाव की जल-महरो मे हृदय भरा है ओन-प्रोन।  
 तेरे पद चिह्नो पर चमने मे होना आत्मिक उद्योत।  
 अमर कीर्ति क्या कृतियां तेरी रस में गज-जेनानी ! है ॥३३०॥

### दोहा

गमागार गुरुवाग के, गुन जन मन मे गेद।  
 हीरविजय यति मे बहा, टूटी दिन उम्मेद ॥३३१॥  
 भरन धन मे एव से, अनोग्य दातार।  
 भिक्षु गए भुरघाम मे, बन्ट हुआ अन्तार ॥३३२॥

द्वेषी मुख से कह रहे, बोली के घर पुत्र।  
पैदा हो वह रो रहा, पाया फल उत्तम ॥३३३॥  
यतिवर ने निज यश की, स्मृति कर पूछा भेद।  
हाल कहा गव देव ने, हुआ सशयोच्छेद ॥३३४॥  
ग्रहकल्प में 'हरि' हुए, नृत्य कर रहे आप।  
सीमधर प्रभु ने कहा, न करो मिथ्यालाप ॥३३५॥

### सोरठा

मुनिवर बुल्ल उनचास, पूज्य भिक्षु के समय में।  
छपन था अवकाश, साध्वियां दीक्षित हुई ॥३३६॥  
एक बीश अणगार, श्रमणी सत्तावीश कुल।  
गण में तज गणघार, गये स्वर्ग की गोद में ॥३३७॥

### बोहा

पचवीश गृहवास में, साधु बेध में आठ।  
वर्ष तीन चालीस तक, धर्माचार्य विराट् ॥३३८॥

### चातुर्मास-प्रवास

#### रामायण-छंद

सात प्रमुख पानी नगरी में पुर सिरियारी में भी सात।  
घाम केलवा में छह पावन पाच घेरवा में विख्यात।  
नापदारा तीन और फिर मुधरी में भी तीन उदार।  
जन्म-भूमि पीपाड़ शहर 'पुर' माधोपुर में दो दो वार ॥३३९॥  
बड़तू राजनगर अम्बापुर सोजत पादू को मुखर।  
एक एक ही चतुर्मास का दे पाये सुंदर अवसर।  
चतुराधिक चालीस किये कुल पन्द्रह क्षेत्रों में पास।  
महामनस्वी भिक्षुराज ने भरगामा अध्यात्मिक रस ॥३४०॥

#### गीतक-छंद

हेम बेगीराम मुनि वृत्त भिक्षु चरित्र महान है।  
रिये उनमें विविध उपमा युक्ति युक्त गुणगान है।  
और त्रयगि रचिन मधु-मुख जीवनी अभिराम है।  
विनि भिक्षुशरमायण सार्थ उनके नाम है ॥३४१॥

## आरती

सय—ओम् जय कासू भुवरेव...

ओम् जय दीपानंदन ! चरण कमल में तेरे, करता अभिनंदन ।

ओम् जय दीपानंदन ॥ध्रुव०॥

भविजन भाग्य योग से, कलियुग मे आये ।

सतयुग की सर्वोत्तम, सस्कृति को लाये ॥ओम्...३४२॥

जिनवाणी पर डटकर, कष्ट सहे भारी ।

सत्य साधना से ही, कर भी इकतारी ॥३४३॥

जंनागम मे नाम तुम्हारा, पद-पद पर आया ।

'से भिक्षू वा' सार्थक, करके दिखलाया" ॥३४४॥

महा-अणुव्रत बोधि ज्ञान दे, जन-जन को तारे ।

लौकिक - लोकोत्तर पथ बतलाये न्यारे ॥३४५॥

मुनि उनचास व छप्पन, सतियों की दीक्षा ।

मर्यादाएं बांधी, दी सुन्दर शिक्षा ॥३४६॥

युग-युग तक तुम जीवित, साहित्यिक कृति से ।

शासन - सिन्धु तुम्हारा, लहराता धृति से ॥३४७॥

मन्त्राक्षर सम नाम तुम्हारा, पल-पल मे ध्याते ।

जन विश्राम मानकर, दिल में बिठलाते ॥३४८॥

१ स्वामीजी का जन्म राजस्थान के जोधपुर राज्य मे कटालिदा नामक ग्राम में श्रावणादि क्रम से सवत् १७८२ आषाढ सुदि १३ (विक्रम संवत् १७८३ आषाढ शुक्ला १३) मंगलवार को हुआ । उस समय कटालिदा (मारवाड़) के

१. आचार्य भिक्षु तेरापय के प्रथम आचार्य हुए थे । वे स्वामी भीखणजी, आचार्य भिक्षु के नाम से भी प्रसिद्ध थे । भक्तजन उन्हें केवल स्वामीजी ही कहा करते थे ।

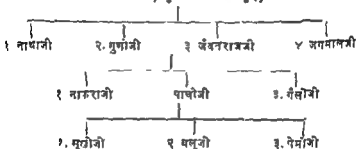
२. विक्रम सवत् चैत्र शुक्ला १ से बदलता है परन्तु जैन तथा कुछ जैनतर परम्परा मे वह श्रावण कृष्णा १ को बदलता है । इसलिए मुनि हेमराजजी विरचित 'भिक्षु चरित' डा० १ गा० २ मे, मुनि वेणीरामजी विरचित 'भिक्षु चरित' डा० १ गा० ५ मे तथा जयाचार्य विरचित लघु भिक्षु यश रसायन' मे स्वामीजी का जन्म स० १७८२ लिखा गया है वह जैन गणना क्रम (श्रावणादि) से और जयाचार्य विरचित 'भिक्षु यश रसायन' डा० १ गा० ६ मे स० १७८३ लिखा गया है, वह विक्रम सवत् (चैत्रादि क्रम से) समझना चाहिए ।

तेरापय मे प्रायः श्रावणादि क्रम से सवत् का उल्लेख करने की परम्परा रही है । यही-यही विक्रम संवत् भी मिसलता है ।

कमधन (राठीड वशी दानिय) वणनमिहजी अधिकारी थे। स्वामीजी के पिता का नाम शाह बल्लूजी और माता का दीया बाई था। वे जहाँ में जीवदान (बड़े साजन) और गोत्र में सकनेवा थे। आनार्थ भिक्षु जब गर्भ में आये तब उनकी माता ने तेजस्वी गिह का स्थान देखा था।

(देवी मुनिवृत्त भिक्षु चरित्त का० १ भा० १ मे ५ के आधार में) बयोवृद्ध महारमा जेपमलजी हैं। उनके पास वशावलि की जो हस्त-लिखित पुस्तक है उसमें स्वामीजी की वशावलि इस प्रकार उल्लिखित है।

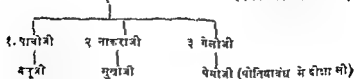
### धीरदासजी (बहुत प्रभावशाली हुए)



राजनगर के महात्मा दाम्भालजी के पास वशावलि की एक पुस्तक है, उसमें स्वामीजी की वशावलि का जम अवधि अनुसर से इस प्रकार है :—

वर्णाशाहजी (धीरदासजी के स्थान पर)

गुणोमाह—कनूरजी (बुढ़िया में दीया सीधी, ४३ दिन की तपस्या में १३ दिन को सपारो आयो)



1. जेहदपदजी 2. रामोजी 3. टीरमजी।

८. पैट के ऊपर तीन पैगा बराबर की ।

९. पैट ऊपर सूरी पागे माविवा को आकार ।

१०. पैट ऊपर घडा की आकार ।

बिना रो कल दोय हज्जार बरख लोई नाम रहै ।

इन शारीरिक कुमनशर्कों से स्वामीजी के विराट् व्यक्तित्व का महत्त्व बिना-  
पन होता है ।

उक्त शुभ लक्षणों का उत्तम श्रासन प्रभाकर डा० २ के अन्तर्गत दोहा १-२  
बल्लभ १ से ३ में भी मिलता है ।

४. स्वामीजी से हो बडे निपुण और कुत्ताब बुद्धि के धनी थे । महाजनी हिमाच  
में बहुत दस थे । पंचायत आदि के कार्य इनने चामुर्ष में करने कि जितका पुर  
जन पर अच्छा प्रभाव पड़ता ।

५. स्वामीजी के गृहस्थ काल की घटना है कि एक बार बटालिया में किसी  
ध्वज के गहनों की खोरी हो गई । तब उसने शास के शीर्ष 'खोरनदी' से एक अघे  
कुम्हार को बुलाया । वह कुम्हार कहा करता था कि मेरे शरीर में देवता आते हैं ।  
अतः उसे गहना चुराने वाले का नाम बनाने के लिए बुलाया गया । कुम्हार दिन में  
स्वामीजी के पास आया और दृष्टर उधर की बातें कर खोरी के प्रसंग को छेड़ते  
हुए पूछने लगा—'यहाँ बिना पर मदेह किया जाता है ?' स्वामीजी उसकी टंग  
बिया की समझ गये और बोले—'मदेह तो मजने पर किया जाता है ।'

रात की खोरी जाने के पार लोग एवन्तित हुए । वह कुम्हार भी आया । उसे  
पूछा गया कि गहने बिगने चुराए हैं ? तब अपने पूरे निश्चय के अनुसार शरीर  
की अचाना टूटा बोला—'हाल दे रे हाल दे, गहने हाल दे' परन्तु इस तरह बहने  
से गहने बौन डालना । लोगो ने खोर का नाम बनाने के लिए कहा तब वह लड़कना  
टूटा बोला—'खोर मजना हूँ उमी मे गहने चुराये हैं ।' घर के मातित्व में कहा—  
'मजना तो मेरे बहने का नाम है जब पर झूठा आरोप करी लगाने हो ? यह सुन-  
कर भी उसने प्रसन्न की समझ दए ।

१. अम विन्यास गया पछे रे जान, बात भाव सुबाउ ।

उत्पति बुद्धि अति घनी रे जाल, विविध मेमबै ग्याव ॥

(भिरत्रु अल० समापन डा० १ पा० ६)

शाफ कय म्हाजन लनी रे, पड़िया बिद्या लेह ।

'महाजना चामुर ग्या रे मान, उत्पति बुद्धि अलेह ॥

१. आता लनी रे, सब काम हुमिआर ।

१. ५ हने रे मान, अलेहरी अतिवार ॥

(सामन प्रकाश डा० २ डा० १९, १७)

मृत्यु के बाद होतोजी आनन रहने और भोगनजी माना दीपाजी के साथ रहने थे।

गिरियाजी के उपाधय के महान्मा (मंथरण) स्वामीजी के परिवार में कुल-गुट्ट माने जाते थे, वे वज्रावनिया रहते थे। स्वामीजी के समय उस उपाधय में महारमा रूपचन्दजी थे।

३ स्वामीजी का शरीर दीर्घ, वर्ण श्याम, आँखें सात और गति धैर्य हाथों के समान थी। अनेक सामुद्रिक शुभ लक्षण थे।

स० १८८८ में आचार्य मिश्र जयपुर पधारे। उन समय वहाँ के समुद्र-शास्त्र वेत्ता पंडित देवकीनन्दनजी कोहरा (ब्राह्मण) ने स्वामीजी के विलक्षण शारीरिक लक्षणों को देखा और उन्हें निश्चय लिया। उनके पास से जयपुर के व्याक माती-रामजी मुनिया ने उनकी नकल कर ली। उस पत्र की प्रतिलिपि इस प्रकार है—

१. जीवना पत्र में उल्लेख देखा।
२. जीवना हाथ में मच्छ के आकारे देखा।
३. पोंदवा ऊपर तीन रेखा मणिवय की जीवना हाथ में।
४. हाथ की दस अंगुलियों में दस अक्षर।
५. गुद्दी नाड री निण में तीन रेखा लम्बी।
६. लिताड में तीन रेखा लम्बी।
७. काना ऊपर बाल।

१ भीषणजी स्वामी रा पिता माह बल्सूजी दोय परण्या (देहली रा होतोजी, फेरदूजी बार परण्या) का दीपाजी रा भीषणजी। तिन स्थ होतोजी ग्यारा जुदा रहता।

[मुनि काशुजी [१६३] बडा द्वारा लिखित प्राचीन पत्र बोल सव्या १७)

२. मायली मूरत दीर्घ देह मुखिणास, सास नमन गज हस्तो नी बान।

(भिवन्नु जल० डा० ॥ गा० २७)

३. अषिराम मुजल डा ६ दो० ३ में लिखा है कि स्वामीजी अनुमानन स० १८४७ में जयपुर पधारे और वहाँ लगभग बार्स राति रहे।

जय छोय मुन्नन विनाम डा० १ दोहा २ में भी स्वामीजी का स० १८४७ में जयपुर पधारने का उल्लेख है।

परन्तु स० १८४८ फागुन शुक्ला १५ गुरवार को मुनि भारमलजी ने गवाई जयपुर में 'साधु-अणाचारी' की एक दाल (साधवाचार की चउई डा० २३ 'तीन बाना बरे जीव रे...') की प्रतिलिपि की थी और वे स्वामीजी के साथ थे। इसमें प्रमाणित होता है कि स्वामीजी स० १८४८ के माघीपुर धानुमांग के वशवा फान्नु महीने में जयपुर पधारे।

८. पेट के ऊपर तीन रेखा बराबर की ।

९. पेट ऊपर सूँधी पागे माथिया की आकार ।

१०. पेट ऊपर घड़ा की आकार ।

जिन से पन दोय हजार बरस लाई नाम रहे ।'

इन शारीरिक गुणलक्षणों से स्वामीजी के विराट् व्यक्तित्व का सहज विज्ञापन होता है ।

उक्त शुभ लक्षणों का उल्लेख भागन प्रभाकर डा० २ में अन्तर्गम बोद्धा १-२ शतक १ से ३ में भी मिलता है ।

४. स्वामीजी से ही बड़े निपुण और कुतापबुद्धि के धनी थे । महाजनी हिमाय में बहुत दश थे । पचास आदि के कार्य करने आनुर्व से करने कि जितना पुर ज्ञान पर अच्छा प्रभाव पड़ता ।'

५. स्वामीजी के गृहस्थ भास की घटना है कि एक बार कश्मिरिया में किसी व्यक्ति के गहनों की खोरी हो गई । तब उसने भास के गांव 'बोरनदी' से एक अंधे कुम्हार को बुलाया । वह कुम्हार कहा करता था कि मेरे शरीर में देवता माने हैं । अतः उन्हें गहना चुराने माने का नाम बनाने के लिए बुलाया गया । कुम्हार दिन में स्वामीजी के पाम आया और इधर उधर की बातें कर खोरी के प्रसंग को छेड़ते हुए पूछने लगा—'यहाँ किस घर मरेह किया जाता है ?' स्वामीजी उसकी टंग बिद्या की समझ गये और बोले—'सदेह तो मरने पर किया जाता है ।'

रात को खोरी जाने के घर लोग एकत्रित हुए । वह कुम्हार भी आया । उसे पूछा गया कि गहने किसने चुराए हैं ? तब अपने पूर्वे निश्चय के अनुसार शरीर की अकड़ना हुआ बोला—'हास दे रे हास दे, गहने हाल दे' परन्तु इस तरह कहने से गहने कौन हालता । लोगों ने खोर का नाम बताने के लिए कहा तब वह सहजता हुआ बोला—'खोर मरना है उमी में गहने चुराये हैं ।' घर के मालिक ने कहा—'मरना तो मेरे बकरे का नाम है उस पर झूठा आरोप क्यों लगाते हो ? यह सुनकर लोग उसके प्रपच की समझ गए ।

१. जन्म कल्याण गया पछे रे लाल, बाल भाव भूछाय ।

उत्पत्तिया बुद्धि अति धनी रे सास, विविध भेनवै न्याय ॥

(मिक्खु जस० रसायन डा० १ गा० ६)

बालक यथ महाजन लणी रे, पढ़िया विद्या सेह ।

चाक्य बना चानुर गया रे लाल, उत्पत्तिया बुद्धि अछेह ॥

समारिक बाता लणा रे, सर्व काम हृसियार ।

पच पंचायन माहि ने रे लाल, अश्वेशरी अधिकार ॥

मास्केडो ने कहा = कुम्हार में हुई बात को सुनाते हुए कहा—'तुम लोगों को दुःख क्यों पड़े है जो आठों बानों में खुशाल गये मछनों का पालन और कपड़ों में लपके रहे जब वे कौन मिल सकते हैं।'

इस जगह गन्तव्यी ने हुम्नार की पीठ खींचकर मारे गाँव को उगले दम में धाँसा।

(भिरु दुःशास्त्र १०९)

[illegible]

(1947-48 1948-49 1949-50)

[illegible]
$$\left( \frac{1}{2}, \frac{1}{2}, \frac{1}{2}, \frac{1}{2} \right)$$
[illegible]

स्वामीजी संयम ग्रहण करने के लिए उद्यत हुए तब माता की मुख्यवस्था के लिए उन्होंने जमीन जायदाद के अतिरिक्त एक हजार नगद रुपया अपनी माता को दिया। उस समय के भावों को देखते हुए वह रुकम एक अच्छी खासी बही आ सकती थी।

वि० सं० १८०८ में मारवाड़ में वस्तुओं के जो भाव थे, उसका पता तो नहीं लगा। पर वि० सं० १८४३ की पुरानी बही में कच्चे मन (२० सेर = ४१ पौंड लगभग) के आधार पर वस्तुओं के भाव यो दिये गये हैं —

वस्तु	तोला	मूल्य
गेहूँ	१ मन	१२ आना
भूग	"	"
तिल	"	६ "
चना	"	२॥ आना
जुरा	"	४ "
कपाम	"	१ रुपया (१६ आने = ६४ पैसे)
दाल	"	"
बाजरा	"	"

गुह	२॥ आना
घी	१ सेर
सूत	३ छटोक

सं० १८६६ की बही में भाव प्राप्त हुए, उससे पता लगता है कि वस्तुएं प्रमशः मंहयी होती गईं।

गेहूँ	१ मन	१ रुपया
भूग	"	१ रुपया
मोठ	"	१४ आना
चना	"	१३॥ आना
घी	१ सेर	८ आना

१. दिला नै त्पारी चया रे साल, अनुमति न दिई माय।  
रुपनाचजी नै दम कसो रे साल, भूँ सिह गुपन देषाय।  
तब बोल्या रुपनाचजी रे साल, सांभल जाई बाय।  
सिह तणी परि भूजनी रे साल, ए गुपनों छै चबदा माय।  
अनुमति भा आपी लदा रे साल, सहस रोकड उन्मान।  
भिक्षु दिया जननी यणी रे साल, चारित सेवा ध्यान।

(भिक्षु जश० २० का० १ गा० १६, १७, १८)

तक समय ग्रहण नही करवा तब तक स्थान्तर लगाना था।

कुछ समय पश्चात स्त्री का विधोय हो गया तब स्वामीजी ने शीघ्रानिशीय दीक्षा लेने की तैयारी कर ली।

११ स्वामीजी का जब दीक्षा लेने का विचार हुआ तब उन्होंने अपनी आज्ञा माइश के लिए कर का ओगाया हुआ (कर उवात कर जो जल गिराया जाता है) जल एक तावे के लोटे में डाल कर हड्डियों की जेट में रख दिया। बहुत देर बाद उसे निकालकर दिया तो बड़ा बड़ा और बेरवाद लगा। मन में सोचने लगे—'साधु जीवन इतना कठिन है तब ही तो उसमें मुक्ति मिलती है।'

नई दीक्षा लेने के पश्चात म० १८५१ में हेमराजजी स्वामी (उस समय गुरुदेव) ने इस घटना का उल्लेख करते हुए स्वामीजी ने कहा था—'साधु बनने के बाद आज तक बीमा नीरज जल पीने का काम नहीं पड़ा।'

इस प्रकार उन्होंने परीक्षण के रूप में अनेक प्रयोग किये और अपनी आज्ञा को तोलकर देखा। (भिवन्धु दृष्टांत १०७)

१२ स्वामीजी दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए तब उनकी मुभा में भय दिखाते हुए कहा कि यदि तुम दीक्षा लोगे तो मैं पेट में बटारी खाकर मर जाऊंगी। तब उन्होंने निर्भयतापूर्वक अपनी मुभा में कहा— बटारी क्या कोई पूछी है कि कोउ मे (कातने के लिए बनाई गई रुई की लकड़ी) पेट में मार ले। ऐसी व्यर्थ की बातों से मुझे अटकाने का प्रयत्न करना निरर्थक है। (भिवन्धु दृष्टांत २४०)

१३ स्वामीजी ने अपनी जननी से दीक्षा की अनुमति मांगी तब वे इन्कार ही गई। इसके लिए स्वयं आचार्य रुपनाथजी दीपावाई को समझाने लगे। दीपावाई ने कहा—'मैंने सिद्ध का स्वप्न देखा है, अब यह बीमवशाली पुत्र होगा। अपने होतहार पुत्र को दीक्षा की अनुमति कैसे दे सकती हूँ?' आचार्य रुपनाथजी बोले—'यहूँ ! तुम्हारा स्वप्न मिथ्या नहीं होगा। यहाँ साधु बनकर जैन शासन की प्रभावना करता हुआ सिद्ध की तरह गुंजेगा।'

इस प्रकार समझाने से माता ने सहर्ष आज्ञा प्रदान कर दी।

१. काल किन्तीक बीता पछे रे साल सील आदरियो सार।  
भिवन्धु ने तसु भारज्या रे साल चारित्र नी वित्त धार।  
सेवा मजम तथा लर्न रेसाल एकान्तर अवधार।  
मभिग्रह एहवो आदरयो रे साल विरक्तपण सुविचार।।

(भिवन्धु जण० २० डा० १ गा० १३, १४)

२. तडा पछे त्रिया तणो रे पडियो साथ विजोय।  
वर मगण मितना बहु रे साथ भिवन्धु म वध्या भोग।  
दिशा ने तयारी यया रे साल...

(भिवन्धु जण० डा० १ गा० १५, १६)

उस समय आचार्य रघुनाथजी मारवाड़ में थे, उन्हें इस बात का पता लगा तब उन्होंने अपने बुद्धिमान् मित्र्य मोहनजी को उन थावकों की शका मिटाने के लिए राजनगर भेजा। साथ में अन्य साधु-टोकरजी (४) हरनाथजी (५) वीरभाणजी (६) और भारीमानजी (७) थे।

स्वामीजी ने मुद्र आदेश को तिरोधार्य कर श० १=१५ का चानुमांत राजनगर में किया।<sup>१</sup>

स्वामीजी ने वहाँ के प्रमुख भट्टालु चतुरोजी पोरवाल ॥ पुत्र ब्रजलालजी और सानजी तथा पौत्र जेवरचंदजी (ब्रजलालजी के पुत्र), जो धर्म के अष्टो मर्मज्ञ थे, को बाक् चतुर्वे से सम्झाया और मुद्र की विचार धारा के अनुसार जवाब दिया। थावकों ने कहा—‘आप बैरागी हैं, आपका पूर्ण विश्वास है, अब आपको बन्दना करते हैं पर हमारी शराए निरस्त नहीं हुई हैं।’

१. मुरघर में रघुनाथजी, सामलो सहू बात।  
भिक्षु नै तिहा भेजिया, सवा भेटण साकरात।  
बुद्धिबन विण भ्रम ना मिटै, तिण सू ये बुद्धिबान्।  
आप सवा भेटो जेहूनीं, हम कहि भेट्या के स्थान।  
टोकरजी हरनाथजी, वीरभाणजी साथ।  
भिक्षु शिष भारीमानजी, दिक्षा दी निज हाथ।  
ऐ साथ तेई भिक्षु आविया, राजनगर मसार।  
सबन् अटारी पनरी नवै, खोमागी गुणकार॥  
(भिक्षु जश० २० दा० २ गा० ३ से ६)

२. कला विविध केजजी करी, त्यान पगा लगाया।  
ते कहूँ सक मिटी नही, विण निमुणो मुद्र बाया।  
आप बैरागी बुद्धिबत छो, आप री परतीत।  
तिण कारण बन्दना करा, आप जगत में बदीन॥  
(भिक्षु० जश० २० दा० २ गा० ११, १२)

उक्त थावकों के सत्रय में ‘पानेराव’ के महात्मा मागीलालजी के पोपे में लिखी गई पोरवाल बनावलि के अनुसार चतुरोजी के चार पुत्र—  
डिलोकजी, मूरजमलजी, ब्रजलालजी और सानुजी थे। ब्रजलालजी के दो पुत्र—  
जेवरचंदजी और लिखमीचंदजी थे।

वहाँ ऐसा भी लिखा है कि राजनगर में ओसवालों की अपेक्षा पोरवालों का अधिक्य था। कालान्तर में वे सब व्यापारार्थ उदयपुर, गोमुदा, सायरा में चले गये।

इस समय राजनगर में प्रायः ओसवालों के ही घर हैं, पोरवालों का केवल एक घर है।

१४ ग्वालमी भीष्मपर्वी दि० म० १८०८ सुमसर यदि १२ को ग्वालमी मे  
ग्वालमी ग्वालपर्वी के पास दीर्घ [११ हा०]

इसका विचार करीब तब से किया हुआ है।

११. आन्धी की बुद्धि सीधे और सत्य-शक्ति प्रवण थी। आन्धी  
सत्य-शक्ति के मार्ग-प्रद में उन्हें ने छोड़े दिनों में ही अनेक मूर्खों का बाधा कर  
उत्पन्न कर आन्धी आनन्द कर दिया। अन्धी, आन्धी एवं दास दास आदि मूर्खमूर्ख  
आन्धी के हस्तगत कर । आन्धी-प्राप्त कर गये। उनके मन में विचार आग कि  
अन्धी-प्राप्त के प्रकाशमान हूँ आन्धी-प्राप्त कर पाया नहीं दिया जा रहा है।

9.3 सानु मने कर्माणि चैव आचारकर्मणि स्थानक मे रतुते है ।

१. बच्चा के निर्दिष्ट मंच पर गढ़ बना का उपयोग करो ।

१. जिस विचारों के लिए, जिस में है।

१ इन्द्रोक्तः सः हि विदुः सुप्रसिद्धः वन्द्यः ।

१. काल-विच्छिन्न को रज्जा विना विना ही अयोग्य व्यक्ति को शीघ्र  
१३१.

१. जलवायु का प्रभाव जल संचयन के माध्यम से कम हो सकता है।

[illegible][illegible][illegible]

१. "अ. अ. ३. २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००." (अ. अ.)

( २४२४ )

401 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100 101 102 103 104 105 106 107 108 109 110 111 112 113 114 115 116 117 118 119 120 121 122 123 124 125 126 127 128 129 130 131 132 133 134 135 136 137 138 139 140 141 142 143 144 145 146 147 148 149 150 151 152 153 154 155 156 157 158 159 160 161 162 163 164 165 166 167 168 169 170 171 172 173 174 175 176 177 178 179 180 181 182 183 184 185 186 187 188 189 190 191 192 193 194 195 196 197 198 199 200 201 202 203 204 205 206 207 208 209 210 211 212 213 214 215 216 217 218 219 220 221 222 223 224 225 226 227 228 229 230 231 232 233 234 235 236 237 238 239 240 241 242 243 244 245 246 247 248 249 250 251 252 253 254 255 256 257 258 259 260 261 262 263 264 265 266 267 268 269 270 271 272 273 274 275 276 277 278 279 280 281 282 283 284 285 286 287 288 289 290 291 292 293 294 295 296 297 298 299 300 301 302 303 304 305 306 307 308 309 310 311 312 313 314 315 316 317 318 319 320 321 322 323 324 325 326 327 328 329 330 331 332 333 334 335 336 337 338 339 340 341 342 343 344 345 346 347 348 349 350 351 352 353 354 355 356 357 358 359 360 361 362 363 364 365 366 367 368 369 370 371 372 373 374 375 376 377 378 379 380 381 382 383 384 385 386 387 388 389 390 391 392 393 394 395 396 397 398 399 400 401 402 403 404 405 406 407 408 409 410 411 412 413 414 415 416 417 418 419 420 421 422 423 424 425 426 427 428 429 430 431 432 433 434 435 436 437 438 439 440 441 442 443 444 445 446 447 448 449 450 451 452 453 454 455 456 457 458 459 460 461 462 463 464 465 466 467 468 469 470 471 472 473 474 475 476 477 478 479 480 481 482 483 484 485 486 487 488 489 490 491 492 493 494 495 496 497 498 499 500 501 502 503 504 505 506 507 508 509 510 511 512 513 514 515 516 517 518 519 520 521 522 523 524 525 526 527 528 529 530 531 532 533 534 535 536 537 538 539 540 541 542 543 544 545 546 547 548 549 550 551 552 553 554 555 556 557 558 559 560 561 562 563 564 565 566 567 568 569 570 571 572 573 574 575 576 577 578 579 580 581 582 583 584 585 586 587 588 589 590 591 592 593 594 595 596 597 598 599 600 601 602 603 604 605 606 607 608 609 610 611 612 613 614 615 616 617 618 619 620 621 622 623 624 625 626 627 628 629 630 631 632 633 634 635 636 637 638 639 640 641 642 643 644 645 646 647 648 649 650 651 652 653 654 655 656 657 658 659 660 661 662 663 664 665 666 667 668 669 670 671 672 673 674 675 676 677 678 679 680 681 682 683 684 685 686 687 688 689 690 691 692 693 694 695 696 697 698 699 700 701 702 703 704 705 706 707 708 709 710 711 712 713 714 715 716 717 718 719 720 721 722 723 724 725 726 727 728 729 730 731 732 733 734 735 736 737 738 739 740 741 742 743 744 745 746 747 748 749 750 751 752 753 754 755 756 757 758 759 760 761 762 763 764 765 766 767 768 769 770 771 772 773 774 775 776 777 778 779 780 781 782 783 784 785 786 787 788 789 790 791 792 793 794 795 796 797 798 799 800 801 802 803 804 805 806 807 808 809 810 811 812 813 814 815 816 817 818 819 820 821 822 823 824 825 826 827 828 829 830 831 832 833 834 835 836 837 838 839 840 841 842 843 844 845 846 847 848 849 850 851 852 853 854 855 856 857 858 859 860 861 862 863 864 865 866 867 868 869 870 871 872 873 874 875 876 877 878 879 880 881 882 883 884 885 886 887 888 889 890 891 892 893 894 895 896 897 898 899 900 901 902 903 904 905 906 907 908 909 910 911 912 913 914 915 916 917 918 919 920 921 922 923 924 925 926 927 928 929 930 931 932 933 934 935 936 937 938 939 940 941 942 943 944 945 946 947 948 949 950 951 952 953 954 955 956 957 958 959 960 961 962 963 964 965 966 967 968 969 970 971 972 973 974 975 976 977 978 979 980 981 982 983 984 985 986 987 988 989 990 991 992 993 994 995 996 997 998 999 1000 1001 1002 1003 1004 1005 1006 1007 1008 1009 1010 1011 1012 1013 1014 1015 1016 1017 1018 1019 1020 1021 1022 1023 1024 1025 1026 1027 1028 1029 1030 1031 1032 1033 1034 1035 1036 1037 1038 1039 1040

“... 故 亦 不 能 不 考 其 理 也 。”

1946-1947 年 7 月 20 日 星期日





३. स० १८११ वलुन्दा ।

४. " १८१२ जेतारण ।

५. " १८१३ बागौर ।

६. " १८१४ सादडी ।

७. " १८१५ राजनगर ।

८. " १८१६ जोधपुर ।

स० १८१६ के जोधपुर चातुर्मास के पश्चात् स्वामीजी का आचार्य रघनाथ जो से बगडी (भारवाड) में दूसरी बार मिलन हुआ । उन्होंने अपनी विचारधारा प्रस्तुत करते हुए गुरु थड्डा व आचार को स्वीकार करने के लिए कहा तथा भरसक प्रयास भी किया । पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया तब स्वामीजी ने आचार्य रघनाथजी में आहार-पानी का सम्बन्ध बिच्छेद कर लिया ।

(भिक्षु जश० २० डा० ४ भा० २२ से २५ के आधार से)

२१. स० १८१६ (वि० स० १८१७) चैत्र शुक्ला ६ को बगडी में स्वामीजी आदि पाँच साधुओं (स्वामीजी, टोकरजी, हरनाथजी, बीरमाणजी और भारीमाणजी) ने स्थानक का परिचय किया ।

स्वामीजी के अभिनित्यमण के समय रामनवमी का भग्न दिन भंगल-सूचना लेकर आ गया और सत्य धर्म की नई दुकान का शुभारम्भ स्वतः हो गया ।

उक्त तिथि चैत्र शुक्ला ६ का भिक्षु चरित्र, भिक्षु यश रमायण आदि मूल भूत ग्रंथों में उल्लेख नहीं मिलता पर परम्पर-श्रुति के अनुसार पुष्ट एवं प्रमाणित है । स० १८१५ को राजनगर चातुर्मास के प्रारम्भ से स० १८१५ अषाढ़ पूर्णिमा तक स्वामीजी को द्रव्य गुरु आदि की समझाने में दो वर्ष करीब लग गए ।

क्यात तथा शामनप्रभाकर में दो वर्ष से अधिक (दो वर्ष जाआ) कहा है ।<sup>१</sup>

स्वामीजी स्थानक को छोड़कर रवाना हुए पर तेजग द्वारा विप्रेष करवाने से शहर में ठहरने के लिए जगह नहीं मिली तब स्वामीजी ने वहाँ से बिहार किया । यहाँ ही गांव के बाहर पहुँचे कि जोर से आधी आने लग गई । तेज आधी में बिहार करना उचित न समझकर वे श्मशान स्थल पर जेतसिंहजी की छतरी में ठहर गए ।

(भिक्षु जश० २० डा० ५ दो० १ से ८ के आधार से)

२२. स्वामीजी के पृथक होने से आचार्य रघनाथजी बहुत चिंतित हुए और श्रावक लोगों को साथ लेकर छतरियों में पहुँचे । उन्होंने स्वामीजी से कहा... 'तुम दोनों को छोड़कर मत जाओ इस पंचम कलिवाल में इस प्रकार निम्न नहीं सकते, मृत मेरी बात को मानो ।'

१. दोष वर्ष के आसरे किया अनेक उपाय ।

केतलायक ने समझाया, द्रव्य गुरु ने पिण ताय ।।

(सधु भिक्षु ज० २० डा० २ भा० ३१)

स्वामीजी बोले— 'हो ना हो तुम्हारे विचार का विचार है कि यदि प्रकृत प्रभु 'भी' इस दुष्ट के अन्तर्गत रहेगा तो मैं तुम्हें मान की मज्जा दूँगा।'

यह सुनते ही उसकी 'ताना' टूट गई और मोह-मग्न भाँसे भर आई। उस समय सामग्री के भोज के साथ उद्भाग्यही (उत्तरे भाग में से) ने कहा— 'आज टोने के नाटक बजाते हैं तो फिर प्रभुजी भाँसे में आँगुनी आ रहे हैं?' वे बोले— 'हिन्दी का एक भी भागू बना जाता है तो उसे दुष्ट होता है। मेरे तो एक भागू ३ भागू आ रहे हैं, जिसमें गण म धन धन, रहा है, इसलिए मुझे अधिक वेद हो रहा है।'

दुष्ट की मोहमग्न भाँसे में स्वामीजी अपने मन्त्र से विचित्र नहीं हुए। उन्होंने सोचा— 'मैंने दीक्षा भी नष्ट से ही माँने बहुत धन दिया था तो इसी धन में गण म धन छोड़कर गण धन के सामर्थ्य हो जाऊँ तो मुझे परबोध में विविध मुनीयों उठानी पड़ेंगी।'

(भिक्षु जग० द० डा० ५ दो० १ पा० १ मे १० के आधार से)

जब उनके सामग्यमय वस्त्रों का स्वामीजी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तब उन्होंने भय दिग्भ्रमों से हुए स्वामीजी से कहा— 'देखो! तुम जिन-जिन संश्लेषों में आगे-आगे जाओगे, मैं तुम्हारे पीछे-पीछे भाऊँगा और लोगों के द्वारा भरतक विरोध छाड़ा करवाऊँगा तब तुम्हारी स्थिति विषम और दयनीय बन जावेगी।' स्वामीजी बोले— 'मैं इस प्रकार की बातों से डरने वाला नहीं हूँ। मेरे मे सभी प्रकार के परिपक्व सहने की क्षमता है अतः मेरा मार्ग स्वतः प्रकट होता जावेगा।'

१. ए वचन सुनी द्रव्य गुण भगी रे, तूटी आग निवार।

मोह बायो निग अवर रे, चिन्ता हुई अवार ॥

सामग्री छप मो साथ धो रे, उद्भाग्य बहे एम।

टोना तणा धनी वाज न रे, आसुष करो केम ॥

किण रो एक जाँव तर रे, आवे छिहर अवार।

हारा पाव जाँव तर रे, गण में पड़े बवार ॥

(भिक्षु जग० द० डा० ५ पा० ५, ६, ७)

२. द्वेय स्यु तुरत नर ना हिम रे, राग दै तुरत चनाय।

द्रव्य गुण मोह बायो सही पिण कानी न नायो काय।

फेर बोन्पा रचनायजी रे, जामी किनियक दूर।

आगो पारो नै पूटी माहुरों रे, लोक सगावमू पूर।

परोपह धमन री मुझ मन मर्त रे, भिक्षु भाव्ये विशाल।

हम तो डरायो नहीं डर रे, जीवण जितो एक बाल।

(भिक्षु जग० द० ५ पा० ११, १२, १३)

२३. स्वामीजी बगड़ी से बिहार कर बङ्गलू पधारे । आचार्य रघनाथजी भी उनके पीछे-पीछे बङ्गलू आये । वहाँ फिर बटकर चर्चा हुई । रघनाथजी ने कहा— 'अभी दु पम बाल में बल, सहनन आदि हीन हो रहे हैं अतः शुद्ध समय नहीं पाता जा सकता ।'

स्वामीजी— जो शिषिनाचारी एवं पुरुषार्थ होन होंगे वे ही ऐसा कहेगे कि हम कात में बल, सहनन आदि हीन हो रहे हैं अतः शुद्ध समय नहीं पाता जा सकता ।' ऐसा जिन भगवान् ने आचारांग सूत्र में कहा है ।'

रघनाथजी— 'इत समय यदि कोई साधु केवल दो घड़ी एकाग्र चित्त से शुद्ध चारित्र्य का पालन कर लेता है, उसे केवल ज्ञान प्राप्त हो सकता है ।'

स्वामीजी— 'अगर ऐसा है तो मैं दो घड़ी तक इवात रोष्टकर भी शुद्ध ध्यान कर सकता हूँ । भगवान् महावीर के दूतरे पट्टघर जम्बू स्वामी (केवली) के बाद प्रभव स्वामी और ज्ञानप्रिय स्वामी आदि को तथा सान सौ केवलज्ञानी साधुओं के अतिरिक्त शेष साधुओं को एवं स्वयं वर्द्धमान को छप्पस्यावस्था में केवलज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ था, तो क्या उन्होंने दो घड़ी के लिए भी शुद्ध समय का पालन नहीं किया ?'

इस प्रकार परस्पर में विविध चर्चाएँ अभी पर कोई निष्कर्ष नहीं निकला ।

(भिक्षु जश डा० ५ पा० १४ से २६ के आधार से)

२४ स्वामीजी मृत्यु की परवाह न करते हुए दुःख आम्षा, दुःख सत्त्व व अपूर्व साहम से प्रभु के पद चिह्नों पर चलने के लिए बटिबद्ध हो गए । उनके इस शीर्ष के लिए अयाचार्य लिखते हैं :—

भारी गुण भिक्षु तणा, कहा कटा लग जाय ।

मरण धार शुद्ध मन लियो, कुमिय न राखी काय ॥

(भिक्षु जश० डा० १० दो० १)

२५. बङ्गलू से बिहार कर स्वामीजी जोधपुर पधारे ।<sup>१</sup> बीच के किसी ग्राम में स्वामीजी का जयमलजी से मिलन हुआ । सारी स्थिति उनके सम्मुख रख दी गई ।<sup>२</sup> परस्वरूप आचार्य जयमलजी के शिष्य मुनि गिरपालजी आदि छह साधु

१. आचारांग प्रथम श्रुत अध्ययन ६ उद्देशक ४ ।

२. बरलू सू कीछो बिहार, आया जोघाणा सँहर मझार ।

उठे तेरे भाया पोमा किया ए ॥

(नाडोल निवासी थावक गिरधरजी कुत पूजगुणी की डा० २ पा० ३०)

३. जयमलजी से मिलन कहाँ हुआ इसका प्रमाण तो नहीं मिलता पर जयमलजी का बिहार क्षेत्र, नाथौर, जोधपुर, भीलाडा तथा उनके चोतरफ के क्षेत्र ही प्रमुख रूप से रहे हैं, अतः यह मिलन उन्हीं में से किसी एक क्षेत्र में हुआ था, ऐसा प्रतीत होता है ।

स्वामीजी के साथ नई दीक्षा लेने के लिए कटिबद्ध हुए। जयमलजी का स्वामीजी के विचारों के साथ सामंजस्य होने पर भी आचार्य रुपनाथजी के दबाव से वे वैसा नहीं कर सके।

मिश्र यश रत्नायण दा० ६ भा० १ से ६ में 'दृष्टान्त १३' की तथा बाद की घटना का वर्णन साथ में ही किया गया मालूम देता है।

स्वामीजी आदि ५ रुपनाथजी के टोले के, बिरपालजी आदि ६ जयमलजी के टोले के तथा अन्य टोले (संभवतः सामदासजी) के दो साधु और मिलने से कुल तेरह की संख्या हो गई।

तेरह साधुओं के नाम इस प्रकार हैं—

रुपनाथजी के टोले के—

१. स्वामी भीखणजी
२. वीरमाणजी
६. टोकरजी
४. हरनाथजी
५. भारमलजी

जयमलजी के टोले के —

१. बिरपालजी
२. फतेहचन्दजी
३. लिखीमचन्दजी
४. वज्रतरामजी
५. गुलाबजी
६. भारमलजी (दूमरे)

अन्य टोले के —

१. रुपचन्दजी
२. पैमराजजी

(मिश्र यश० दा० ८ भा० १ से ७)

२६. स्वामी भीखणजी आदि तेरह साधु जोधपुर पधारकर बाजार के बीच एक दुकान में ठहरे। वहाँ उन्होंने गेहमासजी स्वाम आदि अनेक व्यक्तियों को

१ स्वामीजी जोधपुर पधारे उम समय तेरह साधु थे, ऐसा मिश्र यश रत्नायण दा० ७ भा० १ के तथा स्वाम के उन्नेछ से तो स्पष्ट स्वनिर्दिष्ट नहीं होता, पर नागन-प्रभाव में स्पष्ट है।

जिन जोधपुर नगरे आय नै रे, बाजार में दुकाना में उतरया स्वाम।

बाद मर्हिन हुआ निर्मै रे माय, तेरा मन अभिराम॥

(नागन-प्रभाव २ दा० २ भा० ७१)

समझाया।<sup>१</sup> गेरुनालजी स्वामीजी के प्रथम श्रावक बने। स्वामीजी ने कुछ ही दिनों में वहाँ नई जालि बा सुनपान कर दिया।

२७. स्वामीजी जोधपुर से विहार कर विलाडा पधारे।<sup>२</sup> वहाँ भारीमालजी स्वामीजी के पिता बिसनोजी आये। उन्होंने अपने पुत्र भारीमालजी के साथ ही स्वानकवामी सम्प्रदाय में स्वामीजी के पास दीक्षा ली थी और उस समय वे अन्य साधुओं के साथ विचरते थे। उन्होंने स्वामीजी से सम्मिलित करने के लिए कहा पर कठोर प्रवृत्ति होने के कारण स्वामीजी ने उन्हें शामिल नहीं किया। तब वे अपने पुत्र भारीमालजी को उठाकर ले गये। किन्तु उनके हाथ से भारीमालजी ने दो दिन तक आहार-पानी नहीं लिया। आश्विन तीसरे दिन बिसनोजी ने भारीमालजी को सुपुर्न करने हुए स्वामीजी से कहा—‘मेरा भी कुछ ठिकाना कर दीजिए।’ बिलक्षण-बुद्धि स्वामीजी ने उन्हें जममसजी को सौंप कर तीनों घरों में ‘बधावा’ (आनंद) कर दिया।<sup>३</sup>

(भिवरु जग० ६ तथा मितु दृष्टान्त २०२ के आधार से)

स्वामीजी वहाँ से काठे के क्षेत्रों का स्वर्ण करते हुए मेवाड की तरफ आगे बढ़े। चातुर्मास का समय निकट समझकर सहयोगी साधुओं को अमुक-अमुक स्थानों में चातुर्मास करने का तथा आपादी पूणिमा को नई दीक्षा ग्रहण करने का निर्देश दे दिया। साथ में यह भी सूचित कर दिया कि कई बोलों की पर्चा तो कर ली है और कुछ बाकी है, अब चातुर्मास के बाद मिलने पर थडा व आचार का

१. निहा गेरुनालजी व्याम आदि दे रे, अन्य भाया पिण जाण।

तेरे जणा नै समझाय नै रे, श्रावक करी नै अन्यत्र विहराण ॥

(भासनप्रभाकर डा० २ गा० ७२)

२. भारीमाल चरित डा० १ गा० ६ में तथा मितु दृष्टान्त २०२ में ‘बीलाडा’ की जगह ‘भीलोडा’ लिखा है—विचरत-विचरत आबिया, शहर भीलोडा मत्तार। ‘भीलोडा’ में मारमलजी स्वामी ने कहा।<sup>४</sup>

इससे मेवाड के प्रसिद्ध नगर भीलवाडा का भ्रम हो सकता है पर स्वामीजी उस समय मारवाड में विहार कर रहे थे अतः उपर्युक्त नाम ‘बीलाडा’ (मारवाड) ही समझना चाहिए जो जोधपुर के लगभग ४२ मील दूर दक्षिण पूर्व में है।

३. जैमलजी बोल्या पिण बारी, देखो भीखणजी री बुद्धि भारी।

सूप्यो किमनोजी म्हाने सोष, तीना घर बधावणा होय। मु०॥

किमनो हरप्यो ठिकाने ॥ आयो, म्है पिण हरप्या चेनो एरु परयो।

भिवरु हरप्या टलिनो ओणालो, तीना घरा बधावणा न्हालो। मु०॥

(भिवरु जग० डा० ६ गा० १६, १७)

मिलान होगा तो हम शामिन रहेंगे, अन्यथा हमारा सम्बन्ध नहीं रह सकेगा।'

(विष्णु जग ६० ८ दो० ८, ९ पा० १, २ के आधार में)

पुर (मेवाड़) के महात्मा सोहनलालजी के पास में प्राप्त प्राचीन पत्रों में इस मन्दमं में निम्नोक्त उल्लेख मिलता है —

'तेरह ही साधु राजनगर (मेवाड़) में सम्मिलित हुए। सबने नई दीक्षा लेने का निर्णय किया। पहले हमारे में न तो मक्खी श्रद्धा थी न चारित्र। छोटे-बड़ों का प्रेम पहले की तरह ही रहा। सबमें बड़े रूपचन्दजी रहे। आचार्य पद पर स्वामीजी को नियुक्त किया। जहां चानुर्माण करें वहां आपाड़ शुक्ला १५ को पुन पंच महाश्रन स्वीकार करने के लिए कहा गया। फिर इन स्थानों में चानुर्माण किये।

स्वामी भीष्णजी ने ५ ठाणों से वेलवा।

रूपचन्दजी वल्लतमलजी ने ४ ठाणों में वूदी।

विरपालजी फनेहचन्दजी (ठाणों तथा स्थान का पत्र में उल्लेख नहीं है पर चार उद्धरते हैं।)

उन पत्रों में एक विशेष बात यह लिखी है कि जयमलजी के शिष्य विरपाल जी, यशमनजी, फनेहचन्दजी, भारमलजी इन चार साधुओं ने स० १८१४ का राजनगर चानुर्माण किया। वहां उन्होंने मक्खी श्रद्धा अभिष्यन्त की — 'नौ तत्वों के ज्ञान के बिना सम्पन्न नहीं, सम्पन्न के बिना साधुत्व और श्रावकत्व नहीं। केवलज्ञानी की आज्ञा के बाहर धर्म नहीं। धर्म में धर्म, अन्न में पाप। मोह-अनु-बन्धा में पाप।' जयमलजी ने जब यह सुना तो उनको उत्त प्रवृत्ता के लिए उलाहना दिया।

स्वामीजी ने स० १८१५ में राजनगर चानुर्माण किया। वहां आगमों का साधन करना प्रारम्भ किया। कई भाई भी सुनने लगे। एक दिन एक मन्दिर वाली भाई धरयात्री ग्राटेड तथा लालजी पोरवाल ने स्वामीजी से कहा — 'विशेष ध्यान पूर्ण गुरु का पटन करवाए।' जब स्वामीजी ने पूर्ण उपयोग एवं मनन पूर्ण गुरु पड़े तब उनके भी कभी श्रद्धा हृदयगत हो गई। स्वामीजी ने मोषा — हमारे में साधुत्व नहीं है, केवल साधु का वेग है। अर मुझे जीवन को सर्व नहीं होता है। श्रीप्रतिगीत गुरु के गभीर जाकर कहना है कि मिढान्तानुसार गुरु श्रद्धा व

१ विष्णु मुद्र मृ इम भर्ष, मुनिन्ध मोरा चोमामो उतरया जाण हो।

गरया आचार मोटया पठै, मु० भेचो करस्या आहार पाण हो।

जो गरया आचार मिनी नहीं, मु० तो भेचो न करा आहार हो।

इम पैट्या समजाविया, मु० आया देम मेवाड हो॥

(विष्णु जग ६० ८ पा० १, २)

आचार का पालन करें।

ऐसा विचारकर चानुमांस के बाद राजनगर में बिहार किया और गोजत में आचार्य रपनायत्री से मिलकर अपनी भावना रखी। आखिर विचारों की सगति न होने से बगरी में पृथक् हो गए। इत्यादि...

सं० १८१६ में रघुचन्दजी आदि साधुओं ने राजनगर चानुमांस किया। उनके हृदय में भी उपर्युक्त श्रद्धा जन्म गई।

इस प्रकार राजनगर में सं० १८१४ में धिरपालजी आदि, सं० १८१५ में स्वामीजी आदि एवं १८१६ में रघुचन्दजी आदि ने चानुमांस किया।

सयोग ऐसा मिला कि नई दीक्षा स्वीकार करने वाले १३ साधु प्रायशः घुणा-क्षर न्याय की तरह राजनगर चानुमांस करने वाले ही मिले।

२८. स्वामीजी जब जोधपुर में चले तब यह निर्णय करके ही चले थे कि मुझे जिन-भाषित पथ पर चलना है। कोई साथी बने या न बने, इसकी उम्हें चिंता नहीं थी। इसलिए उन्होंने अपने समूह का कोई नया नाम भी नहीं दिया।

एक दिन जोधपुर के तेरह श्रावक बाजार के मध्य एक दुकान में बैठकर सामायिक (एक मुहूर्त के लिए सावध प्रवृत्ति का त्याग) वीपध (एक दिन रात के लिए सावध प्रवृत्ति का त्याग) आदि धार्मिक अनुष्ठान कर रहे थे। उस दिन दीवान फर्नमलजी का उधर से निकलना हुआ। उन्होंने बाजार के चौहाटे पर श्रावकों को सामायिक आदि करते हुए देखा तो उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ। वे नजदीक आकर पूछने लगे—'आप लोगो ने आज स्थानक में सामायिक न करके दुकान में कैसे की है?'

श्रावकों ने आचार्य रघुनाथजी से स्वामी भीष्मजी के पृथक् होने की गारी बात सुनाई तथा अनेक मतभेदों के साथ स्थानक के विषय में भी स्वामीजी के विचार बतलाये।

दीवानजी श्रावकों के मुख से सब वृत्तान्त को सुनकर बहुत सतुष्ट हुए और भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। दीवानजी ने जिज्ञासा की मुद्रा में पूछा—आप

१. सिंघीजी सं० १७६३ से सं० १८३३ तक जोधपुर राज्य के दीवान थे। उनका नाम मर्यापि फज्जुल्लाहजी लिखा मिलता है पर वस्तुतः वह फतहमलजी ही होना चाहिए। जोधपुर में समानान्त नाम देने की पद्धति चालू रही है। अब तक भी वहाँ काफ़ी रूप में चालू है। मानमलजी सिंघी आदि उनके वरधर 'मल्लोन' ही रहे हैं।

२ तब यानक मन विर किजो, मुझ गुरु महिमावन !

भोक्तृ श्रुप भारी घषा, परहर दियो कुपय ॥

(मिनम्बु जल० दा० ७ दो० ५)

कितने थावक है ? थावको ने उत्तर दिया—तेरह । दीवानजी यह सुनकर बोले—  
यह अच्छा सयोग मिला कि तेरह ही थावक और तेरह ही पाधु ।

उम समय पास में खड़े हुए एक मेवरु जानि के कवि ने इस प्रसंग को मुतकर  
एक दोहा जोड़ दिया ।

साध-साध रो गिनो करै, ते तो आप आपरो मत ।

गुणग्यो रे सैहर रा लोका, ए तेरापयी तन ॥

इस प्रकार स्वामीजी का सच स्वतः ही तेरापयी नाम से प्रतिष्ठ हो गया ।

स्वामीजी ने जोधपुर से 'बीनाडा' की सरफ बिहार किया था । नामकरण के  
समय वे सभवन बीनाडा आदि मारवाड़ के किमी क्षेत्र में थे । उन्होंने जब यह  
नामकरण की उक्त मारी घटना को सुना तो तत्काल आपन से भीचे उतर कर  
भरिहत देव की घटना करते हुए अपनी प्रत्युत्पन्न बुद्धि में तेरापय का अर्थ  
बिया—'हे प्रभो ! तेरापय, अर्थात् हे प्रभो ! यह तुम्हारा (आपका) पय है, हम  
तब उम पर खपने वाले तेरापयी है ।'

दूसरा अर्थ यह भी किया कि पांच महाजन, पच समिति और तीन गुप्ति—  
इन तेरह नियमों का पालन करने वाला तेरापयी कहलाता है ।

(मिन्तू जग० का० ७ दो० २ से ६ तथा गा० १ मे ७)

स्वामीजी ने उम समय निम्नोक्त दो छन्द रचकर फरमाये ।

### मिन्तू कृत ध्वन

एग बिा भेग कू मूल न मानत जीव अजीव का रिया निरेरा ।  
पुण्य पाप कू बिन्न बिन्न जाणत आयर कर्मा कू तेन उरेरा ।  
अवता कर्मा नै गहर रोहत निबंरा कर्मा कू देन दिरेरा ।  
बध ता जीव कू बडिआ रागन मागता गुण तो मोय मे डेरा ।  
इसी पद प्रकाश किया भव जीव का भेट्या विधाय अपेरा ।  
नियन जान उचोत रिया जे तो है पव प्रभु तेरा ही तेरा ॥  
नैन सी नमद वागड जगन मे थी बिन धर्म सून सर्व अनेरा ।  
इहलनबी केद गात्र कटावन त्या पित पकड्या तारा इव केरा ।  
नरि कू दूर तरे ने मन रिय सून उदय देया दरेरा ।  
रिय बरख बोर प्रमाण रिया उद वागड पव मे वडिआ दिरेरा ।  
पव अउन दन दगा कटावन मावड निरवद करन निरेरा ।  
ओ बिन अमनर माई धर्म बनवन जे तो है पव प्रभु तेरा ही तेरा ॥  
२६ २६ दो० १ न मावगाड मे मेरा इमे पदांय कर जगात मागुमान 'देव'।



थी।' उसी आधार पर ज्योतिषियों ने तेरापंग की जन्म-कुण्डली तैयार की, वह निम्न प्रकार है —

विक्रम सं० १८१७ आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा इष्ट ३१३६ समय ७।२५ साय-  
काल तदनुसार सन् १७६०, १ जुलाई शनिवार, केसवा नगर।

ग्रहस्थिति —

१०	८ के०
११ वृ०	६ चं०
१२ श०	६ मं०
१	३ सू० शु० बु०
२ रा०	४
	७
	५

३० प्रसर चातुर्मास केसवा में स्वामीजी की ठहरने के लिए विपक्षी लोगो ने 'अंधेरी ओरी' वाले (जहां न हवा और न प्रकाश) एक जैन मंदिर का स्थान बताया। वह इतना भयानक था कि रात्रि में कोई मनुष्य वहां रह जाए तो सुबह बचकर बाहर नहीं आ सकता। संभवतः उन्होंने 'साय भी मर जाय और लकड़ी भी न टूटे' वाली कहावत को धरितार्थ करने के लिए वह स्थान बताया था।

स्वामीजी सानंद वहां पर ठहरे। दिन निर्विघ्नता से व्यतीत हुआ। रात्रि के समय देव-वृत्त उपसर्ग हुआ। बाल साधु भारीमासजी जब परिष्ठापन के लिए बाहर गए तब एक सर्प उनके पैर में लिपट गया। वे निर्भय होकर छड़े हो गए।

१. कश्चिद् ऐसा भी कहा जाता है कि पूर्णिमा के प्रातःकाल उपवास का पारणा करने में पूर्व स्वामीजी ने भाव-दीक्षा ग्रहण की थी।
२. यह मंदिर भगवान् चंद्रप्रभ का है। इसमें एक शिलालेख भी है जिसके अनुसार हमका निर्माण काम सं० १०२३ आषाढ़ शुक्ला तृतीया है। अब उस अंधेरी ओरी को सुधार कर ठीक कर दिया है अब वहां अंधेरा नहीं रहा।

कुछ समय तक बापस नहीं आये तब स्वामीजी दरवाजे पर आकर बोले—  
'भारीमान ! बाहर क्यों खड़ा है ?' वे बोले—'स्वामिन् ! पैर में सर्प लिपट रहा है।' स्वामीजी ने नजदोक्त आकर मंगल मंत्र सुनाया कि सर्प उतर कर चला गया। भारीमानजी स्वामी को अन्दर लाकर गुला दिया। स्वयं ध्यान-स्वाध्याय में मग्न होकर विराजे रहे। अकस्मात् एक दिव्य पुरष (यक्ष) प्रकट हुआ। स्वामीजी ने उसे देखा पर मोन रहे। उसने कहा—'महाराज ! मैं मनुष्य नहीं हूँ।' स्वामीजी—  
'हां मैं जान गया क्योंकि मनुष्य सो यहा दिन में भी आता हुआ सकुचाता है रात में तो आये ही कौन ? पर मेरा कहना है कि यह आपका स्थान है, आपकी अनुमति हो तो हम यहा निवास करें, बरना बिहार करके अन्यत्र चले जाएं। लेकिन इस प्रकार उपद्रव होने में कोई साधु भयभीत हो सकता है, अब जैसी इच्छा हो बीसा स्पष्ट कहने में कोई आपत्ति नहीं है।'

यक्ष ने कहा—'आप अच्छी तरह पावसवात सम्पन्न करें। स्थान के बाहर एक सर्प लकीर खींचेगा, उस जगह मल मूत्रादिक के परिष्ठापन का कार्य न करें एव मकान में दो छोटी चौकिया हैं, उनमें एक पर आप बैठ सकते हैं, अन्य साधु न बैठें।' ऐसा निवेदन कर थड़ा भावो से झुकता हुआ वह यक्ष अदृश्य हो गया। स्वामीजी के पुण्य प्रभाव से उपसर्ग उत्पन्न के रूप में परिवर्तित हो गया।

स्वामीजी ने वह रात्रि विशेष धर्म-जागरण में व्यतीत की। प्रतिक्लमण के समय सत उठे तब स्वामीजी ने रात्रिकालीन समय घटना सुनाई। माधुजी ने मंदिर के बाहर आकर गिन्ची हुई रेखा देखी तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ।

प्रातः काल जब ग्राम के लोगों ने स्वामीजी आदि सत्तों को सकुशल देखा तो बहुत चकित हुए। धीरे-धीरे लोग समझने लगे। चातुर्मास के अन्त तक बेसवा के अनेक परिवार श्रद्धालु बन गए। वहा के कोठारी, चौरहिया परिवार के व्यक्तिपों ने स्वामीजी के पाम सर्वप्रथम तत्त्व समझा। उनमें मुख्य व्यक्ति 'भूगदासजी' जो बेसवा ठिकाने के प्रधान थे, 'भैरोजी' जो कि थावरक शोभजी के दादा के छोटे भाई थे और भी 'केसोजी' आदि थे।

थावरक शोभजी उस समय गर्भ में थे। उस वर्ष देश में वर्षा अच्छी होने से सर्वत्र मुकाल था।

१. ये नाम उनके वंशजों को वही से प्राप्त हुए हैं।

२. सोमो गरभ माहे वरस सतरे, जब बादल ज्यादा झरिया जो।

जनम कल्याण थी पूज बेसवे, साध कई सचरिया जो॥

(पूज गुणो डा० १४ पा० १७)

समन अठारो सतरो जो, बाद मुघरो गमो आपो तिरा।

सबसो हवो गुमान।

(हेममुनिहृद-भक्तगुचरित डा० १ पा० १२)

केनवा के ठाकुर भोग्यमहित्री अनेक बार स्वामीजी के मण्डप में आये। तत्त्व-चर्चा, व्याख्यानदिक ये बहुत मन्तुष्ट हुए। स्वामीजी के प्रति अगाध प्रेम रखने लगे। उस भक्ति के प्रभाव में उनका मारा परिवार श्रदानु बन गया।

उन पटना का महेन मिश्र, यश रमावण तथा क्वात्र में इस प्रकार मिलता है।

सन्तोसरे केनवा मने, प्रथम चोमाओं वेष्ट।

देवन अघारो ओगी तिहो कष्ट सह्यो मुविगेश ॥

(मिक्कू जग रमावण डा० ८ गा० १)

'अघारी ओगी में उपमर्ग गह्यो, देव दर्शन गया, केनवा में उगार धर्मा धरो, पना मरा थावक रागी हुय गया, ठाकुर भोग्यमहित्री मुनभवीधि गया।' (क्वात्र)

बता जाता है कि स्वामी श्रीगुरुजी आषाढ़ शुक्ला १३ को केनवा पधारे उस दिन उनके उदवास, चोदग का चेना और पूर्णिमा के दिन तेजा था। सावन बर्हि १ को र रात में ठाकुर भोग्यमहित्री के हाथ में प्रिया लेकर उन्होंने पारणा किया।

१. चातुर्मास के पन्थाय मर मायु एकत्रित हुए। कुछ बोन बरित हो बुदे थे, जो मरालिः के उन पर चर्चा पत्नी। पर एक माय्या न होने में बग्नरासजी और दुगदजी कावकारी हो गए तथा द्वितीय भारमसजी, स्वचदजी और देवजी भी शामिल नहीं रहे।

दुसरे दिवसी मरमा मोहनसायजी द्वारा प्राप्त पन्नों में लिखा है—'मुझे मरमा का पान न कर मरमा में स्वचदजी को चातुर्मास में ही पूज्य हो गए। चातुर्मास के दिवसीय नमिस्स मरमासायजी कावकारी हो गए।'।

उक्त लिखित मरमा डा० ८ गा० ७ के अनुसार चातुर्मास के बाद १३ ही मरमा दसदस हुए और मरमासायजी के पन्नों के अनुसार चातुर्मास में स्वचदजी ॥ अर्थात् मरमासायजी में मरमा प्राप्त हुआ है।

कुछ और मरमा मरमा निश्चय हो है कि १३ मरमाओं में से १ मरमा प्राप्त हो ही मरमासायजी में हुए।

मिक्कू जग रमावण डा० ७७ गामन विभाग द्वारा १ कानन तथा गामन

१. मिक्कू जग रमावण, मु० मेरा हुआ मरमा प्राप्त हुआ।

२. मिक्कू जग रमावण, मु० कानन मरमा प्राप्त हुआ ॥

(मिक्कू जग डा० ८ गा० ७)

३. मिक्कू जग रमावण, मु० मेरा हुआ मरमा प्राप्त हुआ।

४. मिक्कू जग रमावण, मु० मेरा हुआ मरमा प्राप्त हुआ।

प्रभाकर दा० २ गा० ६५, ६६, ६७ में सभी दीक्षित साधुओं के तथा बाद में ब्रह्म होने वालों के नाम विनाये हैं, वहा किन्हीं में भी उन पाचों के नाम नहीं हैं। हमने यह स्पष्ट हो जाता है कि ५ साधु पहले से ही अलग रहे और ८ सम्मिलित रहे।

शासन रहने वाले = साधु —

१. मुनिश्री विरपालजी
२. " फतेहन्दजी
३. आबादंघी मोखणजी
४. मुनिश्री बीरभाणजी
५. " टोकरजी
६. " हरनाथजी
७. " भारीमालजी
८. " लिखमोजी

प्रारम्भ से अलग रहने वाले साधु —

१. बखतरामजी
२. गुलाबचन्दजी
३. भारमलजी (दुमरे)
४. रूपचन्दजी
५. पैमजी

सम्मिलित रहने वाले = साधुओं में से बीरभाणजी और लिखमोजी बाद में ब्रह्म हो गए। शेष ६ साधु जीवन पर्यन्त शासन में दृढ़ रहे।

मुनिश्री विरपालजी और फतेहचन्दजी पहले दीक्षा पर्याय में स्वामीजी से बड़े थे। नई दीक्षा के समय में भी स्वामीजी ने उनको बड़ा रखा। जिससे भिन्न

१. विरपालजी कौचन्दजी, मु० भीकनू अपि जयभाण हो।

टोकरजी हरनाथजी, मु० भारीमाल बहू जाण हो॥

आदिन भोला रहूया, मु० पर पट सत बदीन हो।

बाबखोब मग बाणजी, मु० परम माहो माहि प्रीत हो॥

काठ बना भेता ना रहूया, मु० केवक धुर हो बी न्यार हो।

बोरक पावे ग्यारो धयो, मु० बेट न पीहवा पार हो॥

(भिक्षु जन्म० दा० ८ गा० ६, १०, ११)

२. टोका में छडा बडा श्याम भीकनू पकी, त्या नै बडा राकश भीकनू स्वाम हो।

रारी छोट कर नै हू बड़ो होनू, इण में स्यू परमारण ताम हो॥

(भिक्षु जन्म० दा० १० गा० २)

## ६० शासन समुद्र

केलवा के ठाकुर मोक्षमणिहरी अनेक बार स्वामीजी के सम्पर्क में आये। तत्त्व चर्चा, व्याख्यानादिक में बहुत सन्तुष्ट हुए। स्वामीजी के प्रति अगाध श्रद्धा रखने लगे। उस भक्ति के प्रभाव में उनका सारा परिवार श्रद्धालु बन गया।

उक्त घटना का स्रोत भिक्षु यश रत्नायण तथा कानन में इस प्रकार मिलता है।

सतरोत्तरे केलवा भजे, प्रथम चोमासो पेश।

देवल अघारी ओरी तिहुं कष्ट सह्यो मुविशेख ॥

(भिक्षु यश रत्नायण का० ८ गा० १)

‘अघारी ओरी में उपसर्ग सह्यो, देव दर्शन यथा, केलवा में उपहार पणो यथो, पणा परा श्रावक रागो हुय गया, ठाकुर मोक्षमणिहरी मुम्भबोधि यथा।’

(क्यात)

कहा जाता है कि स्वामी भीष्मजी आगाढ़ शुक्ला १३ को केलवा पधारे उस दिन उनके उपवास, चौदग का मेला और पूर्णिमा के दिन मेला था। सावन मदि १ को रायता से ठाकुर मोक्षमणिहरी के हाथ से भिक्षा लेकर उन्होंने पारणा किया।

३ चातुर्मास के पश्चात् सब साधु एकत्रित हुए। कुछ योल चर्चित हो चुके थे, जो अवशिष्ट थे उन पर चर्चा चली। पर एक मास्यता न होने से बखतरामजी और गुलाबजी कालवादी हो गए तथा द्वितीय भारमलजी, रूपचंदजी और पेमजी भी शामिल नहीं रहे।

पुर निवासी महात्मा सोहनलालजी द्वारा प्राप्त पत्रों में लिखा है—‘शुद्ध आधार या पासन न कर सकने से रूपचंदजी तो चातुर्मास में ही गृह्य हो गए। चातुर्मास के बाद विचार न मिलने से बखतरामजी कालवादी हो गए।’

उक्त भिक्षु यश रत्नायण का० ८ गा० ७ के अनुसार चातुर्मास के बाद १३ ही साधु इकट्ठे हुए और महात्मा सोहनलालजी के पत्रों के अनुसार चातुर्मास में रूपचंदजी के अतिरिक्त शेष साधु मिले, ऐसा शान्त होता है।

कुछ भी हो, पर यह तो निश्चित ही है कि १३ साधुओं में से ५ साधु प्रारम्भ से ही सम्मिलित नहीं हुए।

भिक्षु यश रत्नायण का० ५२ शासन विलास काल १ क्यात तथा शासन

१. द्विर् चोमासो उत्तयो, मु० भेला हुआ गहु आण हो।

बखतराम ने गुलाबजी, मु० कालवादी हुआ जाण हो ॥

(भिक्षु यश का० ८ गा० ७)

बाबरगियों की मास्यता के सम्बन्ध में आचार्य भिक्षु कृत ‘कालवादी की चोर्द’ पन्नीर है।

प्रभाकर दा० २ या० ६५, ६६, ६७ में सभी दीक्षित साधुओं के तथा बाद में बलग होने वालों के नाम गिनाये हैं, वहाँ किन्हीं में भी उन पाचों के नाम नहीं हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ५ साधु पहले से ही अलग रहे और ८ सम्मिलित रहे।

शामिल रहने वाले ८ साधु —

१. मुनिधी विरपालजी
२. „ फतेहचन्दजी
३. आपार्यधी भीखणजी
४. मुनिधी वीरभाणजी
५. „ टोकरजी
६. „ हरनाथजी
७. „ भारीमालजी
८. „ लिखमोजी

प्रारम्भ से अलग रहने वाले साधु —

१. बख्तरामजी
२. गुलाबचन्दजी
३. भारमलजी (दूसरे)
४. रूपचन्दजी
५. पैमजी

सम्मिलित रहने वाले ८ साधुओं में से वीरभाणजी और लिखमोजी बाद में मरण से पूर्ण हो गए। शेष ६ साधु जीवन पर्यन्त शामन में दृढ़ रहे।

मुनिधी विरपालजी और फतेहचन्दजी पहले दीक्षा पर्याय में स्वामीजी से बड़े थे अतः नई दीक्षा के समय में भी स्वामीजी ने उनको बड़ा रखा। जिससे भिक्षु

१. विरपालजी फतेहचन्दजी, मु० भीखू ऋषि जगमाण हो।  
टोकरजी हरनाथजी, मु० भारीमाल बड़ जाण हो॥  
बड़े चित्त भोना रह्या, मु० वर पट सत बदीत हो।  
जावजीव सग जाणज्यो, मु० परम माहो माहि प्रीत हो॥  
सात जणा भेला ना रह्या, मु० केयक घुर ही यी न्वार हो।  
बोपक पाछे न्यारो ययो, मु० घेट न पौहता पार हो॥  
(भिक्षु जग० दा० ८ या० ६, १०, ११)
२. टोना में छना बड़ा स्वाम भीखू यकी, त्या यी बटा राछा भीखू स्वाम हो।  
याने छोटा वर न हू बडो होवू, हण में रूप परमारय ताम हो॥  
(भिक्षु जग० दा० १० या० २)

केतवा के ठाकुर मोहनसिंहजी अनेक बार म्यामीजी के मन्दिर में आकर चर्चा-वार्ता आदरानादि में बहुत मग्न हुए। म्यामीजी के प्रति आदर में रखते लगे। उस स्थिति के प्रभाव में उनका नारा परिवार बदलाने का मन पड़ा।

उक्त घटना का महीन मित्र दंग रमाया तथा स्थान में इन प्रभावितों को

मजबूत करने के लिये, प्रथम चोम-मो देण्ड।

देवन अघारी ओगी निहा कष्ट मरु-मो मुक्तिगै।

(मित्र दंग रमाया दा० ८ दा०)

अघारी ओगी में उपर्युक्त मरु-मो, देव दर्शन देना, केतवा में उतरना पारी, म्यामीजी आदि सभी हुए म्यामीजी, ठाकुर मोहनसिंहजी मुनमवोधि म्यामीजी

कहा जाता है कि म्यामीजी अघारी मुक्ता १३ को केतवा में उस दिन उनके दरबार, चौदन का वेंच और पूरिमा के दिन देना था। यदि १ को रचना में ठाकुर मोहनसिंहजी के रूप में मित्र लेकर उन्हीं के किया।

२. चानुमांस के पक्षान् सब माधु एकत्रित हुए। कुछ लोग चर्चित में, जो अग्रिम में उन पर चर्चा नहीं। पर एक मान्यता न होने में चर्चित और मुनमवोधि कानवारी हो पर तथा द्वितीय भारमनवी, रूपचंद में पेशवी भी शामिल नहीं रहे।

पूर निहाली मरुमा मोहनसिंहजी द्वारा प्राप्त पत्तों में लिखा है-आधार का पालन न कर मरु-मो के सदस्यों को चानुमांस में ही पूर्युक्त चानुमांस के दंड विचार न मिलने में इच्छा रखती कानवारी हो पर।

उक्त मित्र दंग रमाया दा० ८ दा० ७ के अनुसार चानुमांस के ही माधु दंड्युक्त हुए और मरुमा मोहनसिंहजी के पत्तों के अनुसार चानुमांस के अग्रिम में माधु मिले, ऐसा जान होता है।

कुछ भी हो, पर यह तो निश्चित हो है कि १३ माधुओं में से १ माधु में ही सम्मिलित नहीं हुए।

मित्र दंग रमाया दा० १२ शान्ति विनाय दान ? स्थान में

१. दिव चोम-मो उतरने, मु० भेला हुआ मरु आदि हो।

चरुमन में मुनमवोधि, मु० कानवारी हुआ जान हो।

(मित्र दंग दा० ८)

कानवारी की मान्यता के सम्बन्ध में आचार्य मित्र दंग की चर्चा पेश की है।

प्रभाकर दा० २ भा० ६५, ६६, ६७ में सभी दीक्षित साधुओं के तथा बाद में अलग होने वालों के नाम गिनाये हैं, वहाँ किन्हीं में भी उन पात्रों के नाम नहीं हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ५ साधु पहले से ही अलग रहे और = सम्मिलित रहे।

शामिल रहने वाले = साधु —

१. मुनिथी धिरपालजी
२. „ फत्तचन्दजी
३. आचार्यश्री भीषणजी
४. मुनिथी बीरभाणजी
५. „ टोकरजी
६. „ हरनाथजी
७. „ भारीमालजी
८. „ लिखमोजी

प्रारम्भ से अलग रहने वाले साधु —

१. बखतरामजी
२. गुलाबचन्दजी
३. भारमलजी (हूसे)
४. रूपचन्दजी
५. पेमजी

सम्मिलित रहने वाले ८ साधुओं में से बीरभाणजी और लिखमोजी बाद में गण से वृत्त हो गए। गेष ६ साधु जीवन पर्यन्त शासन में दृढ़ रहे।<sup>१</sup>

मुनिथी धिरपालजी और फतेहचन्दजी पहले दीक्षा पर्याय में स्वामीजी से बड़े थे अतः नई दीक्षा के समय में भी स्वामीजी ने उनको बड़ा रखा।<sup>१</sup> जिसने भिक्षु

१. धिरपालजी फत्तचन्दजी, मु० भीषण श्रुति जगभाण हो।  
 टोकरजी हरनाथजी, मु० भारीमाल बहू जान हो॥  
 बड़े चित्त भीला रहूया, मु० वर पट सत बदीव हो।  
 जानजीव लग जाणज्यो, मु० परम माहो माहि प्रीत हो॥  
 सात जण भेला ना रहूया, मु० केयक धुर ही थी न्यार हो।  
 कोयक पाछे न्यारो बयो, मु० घेट न पाँटवा पार हो॥

(भिक्षु जण० दा० = भा० ६, १०, ११)

२. टोला में छना बडा स्वाम भीखू बकी, त्या नै बडा राकष भीखू स्वाम हो।  
 यान छोटा कर नै हू बडो होयू, दण में रयू परमारय ताय हो॥  
 (भिक्षु जण० दा० १० भा० २)

यश रसायण दा० ॥ दो० ३ में उनका नाम पहने (जम संज्ञा १, २) और स्वामीजी का बाद में (जम मर्यादा ३) में लिखा गया है।

३२ गृहस्थावस्था में स्वामीजी के एक बान-मित्र रामकृष्णजी थे। उनका जन्म स० १८७६ माघ शुक्ला १४ शनिश्चरवार को हुआ। वे विजय वर्गीय वैश्य एवं मोवा ग्राम में रहते थे। सोडा में स्वामीजी की कुशा का घर था, इनलिए स्वामीजी वहाँ समय समय पर जाया करते थे। कई बार कुछ दिनों तक ठहरते भी थे। एक बार रामकृष्णजी ने उनका गणकं हुआ और दोनों में मित्रता हो गई। स्वामीजी की तरह वे भी विरक्त प्रकृति के थे, मग उनकी मित्रता धीरे-धीरे प्रगाढ़ बनती गई। स्वामीजी के संपर्क से वे जैन धर्म से परिचित हुए और उसके प्रति श्रद्धा रखने लगे। कहा जाता है कि वे दोनों माध-साध दीक्षा ग्रहण करने के लिए भी परस्पर बचनबद्ध हो गए थे।

कालान्तर से रामकृष्णजी का संपर्क मन कृपारामजी से हुआ। जिसमें उनका झुकाव धीरे-धीरे उधर हो गया। वे स्वामीजी की दीक्षा से लगभग तीन महीने पहले स० १८८८ भाद्रप शुक्ला सप्तमी को 'दातडा' में मन कृपारामजी के पास दीक्षित हो गए। दीक्षा के बाद उनका नाम 'रामचरणजी' दे दिया गया।

स्वामी भीषणजी के माध किया हुआ बचन ममबन, उन्हें विस्मृत तो नहीं हुआ होगा पर विचार परिवर्तन की स्थिति में उसका पालन सम्भव नहीं रह गया।

वि० स० १८९५ में गलते के मेले में उन्हें तत्कालीन साधुओं की छद्मब्रह्म के बड़े कटु अनुभव हुए। जिससे उनका मन उस ओर से हट गया। उन्हें तब निर्गुण भक्ति की अन्त प्रेरणा हुई और वे मेवाड़ में आकर उसके प्रचार में लग गए। फलस्वरूप रामस्नेही परम्परा में शाहपुरा-शाखा का प्रवर्तन हुआ।

यद्यपि स्वामीजी और रामचरणजी दो विभिन्न परंपरा में दीक्षित हुए थे, फिर भी उनका पारस्परिक संबंध थालू रहा, ऐसा प्रतीत होता है। वे सम्भवतः यदा कदा कहीं एक दूसरे में मिलते भी रहे हों। रामचरणजी ने अपनी कृति में 'तेरापय' शब्द को काम में लिया है। कहा उन्होंने अपनी ओर से तेरापय की ओ व्याख्या की है यह स्वामीजी द्वारा की गई भावनात्मक परिभाषा के समान ही है, उनके पद इस प्रकार हैं—

मोही तेरापय का, मेरा कहे न कोय।  
मैं मेरी से लय रह्यो, तो जगत पय है सोय।  
काम ओष तुणा तत्रे, दुविद्या देय उठाव।  
रामचरण समता विदे, तेरापय वह पाय ॥<sup>१</sup>

(तेरापय इतिहास स० १ पृ० ३८, ३९)

१ वि० म० १९८१ म 'रामनिवास ग्राम' शाहपुरा से प्रकाशित स्वामी रामचरणजी की 'अणमेवाणी' (अनुभव की वाणी) पृष्ठ ७१ पर अन्तिम 'पद तेरापय वह पाय' के स्थान पर 'तब पिय के पय जाय' लिखा है।

३३. स्वामीजी के भाव दीक्षा ग्रहण करने के बाद आचार्य रघनाथ ने स्वामीजी की माता दीपाबाई को कहा—‘तुम्हारा पुत्र स्वप्न के अनुरूप न होकर अविनीत हो गया है’ उस समय दीपाबाई ने उन्हें ऐसा उत्तर दिया कि उनकी निदर होना पड़ा। उन्होंने कहा—‘पहले तो आपने निष्पक्ष दृष्टि से कहा था कि तुम्हारा पुत्र मिठ की तरह मूजेगा। अब आप दूसरे दृष्टिकोण से कह रहे हैं कि वह अविनीत हो गया। इसमें तो आप आपके पूर्व कथित वचन को ही असत्य मिट कर रहे हैं।’

३४. भाव दीक्षा लेने के पश्चात् स्वामीजी को अनेक तरह की मुसीबतों का सामना करना पड़ा। विरोध के बड़े-बड़े सूफान खड़े हुए। पर घोर भिक्षु चट्टान की तरह धड़ग रहकर अपूर्व उत्साह एवं साहस से आगे बढ़ते रहे। स्थान, वस्त्र, भोजन आदि की कठिनाईयों को उन्होंने हमने-हसने सहन किया एवं प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति का डटकर मुकाबला करते रहे। उनके जीवन सपनों की बड़ी पुस्तक के कुछ पृष्ठ इस प्रकरण में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

३५. मुनिधी नानजी ने हेमराजजी (३६) स्वामी को कहा—हेमराजजी। सिरकारी में प्रीत्यकाल तथा चातुर्मास के समय स्वामीजी जब पक्की दुकान में बैठकर ध्यायमान होते तब स्वयं स्वामीजी तथा भारीमातजी आगे बराबर बैठते। पास में कठ (राग) मिलाते बाते भाई बैठते। हम दूसरे साधु उनके पीछे बैठते। गर्मी का आर्याधिक कष्ट रहता। शरीर से बहुत पसीना बसता। इस तरह छोटी-छोटी जगह में टहरकर स्वामीजी धर्म प्रचार करते। स्वामीजी फरमाते—‘अरवार के लिए बंष्ट सहने में कोई आपत्ति नहीं।’

(भिक्षु दृष्टान्त १८७)

३६. वि० स० १८ के वैष्णवकाल में स्वामीजी उदयपुर पधारे। वहाँ विरोधी लोगो ने सादनालीन महाराणा (अमरसिंहजी ‘द्वितीय’) को सुलगा दिया। महाराणा ने आगे पीछे चिन्तन किये बिना ही आचार्य भिक्षु को उदयपुर में न रहने का आदेश दे दिया।

लेरापची धावकों को यह बहुत बुरा लगा, पर महाराणा के पास कौन जाये और कौन कुछ बहे? मानजी पोरवाल (भारवाही) ने बड़ी हिम्मत की। बमर

१. माता मुनना में सीढ़ देखियो, जब माना कीधी रघनाथजी ने भूत।

तब रघनाथजी बहे सुन तुम तणों, ओ न्हमी बेसरी जिय पूज ॥

पूज सुप हवा बहे रघनाथजी, भुमनी हथो गुम बान।

जब माना बहे बेसरी जिय भूजनी, ये भादरो से बधन ममान ॥

(धावक शोभजीकृत पुत्रमुनी की डा० ६ पा० १, ७)



मुसाईजी ने कहा—वे तो दयाशन में पार मानते हैं तथा उन्होंने वर्षा रोक रखी है। तलेमराजी ने तत्त्व विवनेपण करते हुए बतलाया कि जो माधू चीटी को भी बच्य नहीं देते, वे हजारों लाखों प्राणियों को बच्य पहुँचे ऐसा वर्षा रोकने का कार्य बंने कर सकते हैं? प्रत्यक्ष तलेमराजी ने जैन-मुनियों की आचार-विचार विधि भी बतलाई तो मुनकर मुसाईजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने दरबारे को कोठारिया भेजकर आचार्य भिक्षु को पुनः नाथद्वारा पधारने की विनती करवाई, पर आचार्य भिक्षु ने कहा—‘अब चातुर्मास में वीन इधर-उधर फिरे, वे वापस नहीं पधारे।’ शेष चातुर्मास उन्होंने कोठारिया में ही बिताया।

स्वामीजी आसोज महीने में विहार कर नाथद्वारा में कोठारिया पधारे थे। इसका प्रमाण यह है कि स्वामीजी ने स० १८४६ आसोज यदि १० रविवार को ‘विरत इविरत धौपाई’ की ४थी डाल नाथद्वारा में और ६वीं डाल आसोज सुदि १४ शनिवार को कोठारिया में बनाई थी।

३८. स्वामीजी ने पाली की एक दूकान में चातुर्मास बिया। स्थानीय बावेष्वा परिवार के कुछ व्यक्तियों ने दूकान के मालिक से किराये पर दूकान देने के लिए कहा। वह बोला—‘अभी तो स्वामी भीखणजी ठहरे हुए हैं अतः कोई व्यक्ति समूची दूकान की दपदी में मड भी दे तो दूकान नहीं दे सकता। स्वामीजी के विहार करने के पश्चात् कोई ले सकता है।’

(भिक्षु दृष्टान्त ६५)

३९. बावेष्वा परिवार के लोग जेठमलजी हाकिम के पास पहुँचे और बाबियों की बालते हुए बोले—‘यहाँ पर या तो भीखणजी रहेये या हम रहेये।’ हाकिमजी ने कहा—‘ऐसा अन्याय तो हम नहीं कर सकते। ग्राम में वेश्या, बसाई भी तो रहते हैं, उन्हें भी हम नहीं निकाल सकते तो भीखणजी को कैसे निकाल सकते हैं?’ हाकिम साहब ने एक हवासा भी उपस्थित किया—‘जोधपुर में विजयसिंहजी राज्य कर रहे थे। ‘मीमी यासदिया’ जो साख बैल होने से ‘सक्की बालदिया’ (लनखी बिगजारा) कहलाता था। वह नमक लेने के लिए भारवाड में आता। रास्ते में जाटों के सैन्य आते उन्हें उजाड़ा चला जाता। जाट लोगों ने जब इसके लिए दरबार विजयसिंहजी से पुनः की तब उन्होंने सक्की बालदिये को कहा—‘जाट लोगों के सेतो को मत उजाड़ा करो।’ वह बोला—‘मैं अऊरा तब तो ऐसा ही होगा।’ राजाजी ने कहा—‘अगर ऐसा ही हो तो मेरे देश में आना ही नहीं। नमक को लेने वाले अन्य अनेक बालदिये आ जायेंगे। इस प्रकार अन्याय कभी नहीं करने दोगे।’

हाकिम जेठमलजी ने उन लोगों को कहा—‘ठीक उसी तरह तुम लोग चले जाओगे तो हम दूसरे व्यापारियों को यहाँ से आयेगे पर साधुओं को निकालें ऐसा अन्याय तो नहीं करेंगे।’



सोप उमके पति को जिड़ाने के लिए कहने लगे—‘बाह माहव बाह ! दूकान पर तो तूम बमाई करते हो और घर पर तुम्हारी औरत !’ वह बेचारा इस व्यंग्योक्ति से बहुत शर्मिन्दा होता पर वह कर ही क्या सकता था ।

इस घटना के कुछ ही दिन पश्चात् राखी के त्यौहार पर ‘कीकी’ का एकाएक मझका गुब्बर गया । उमका शोक मिट ही नहीं पाया कि उसका पति भी मृत्यु को प्राप्त हो गया ।

स्वामीजी के परम भक्त श्रावक सोमबी ने जब यह घटना सुनी तब उन्होंने एक दोहा जोड़ दिया—

बाहर साहू री दीकरी, कीकी पारो नाम ।

घाट सहित घी से लियो, ठाली कर दियो ठाम ॥

उन दोनों मौतों में कीकी के मन को बड़ा आघात लगा और उसने साध्वियों के प्रति किए गए दुष्प्रवहार पर बहुत पश्चात्ताप किया ।

कितने वर्षों के बाद कोई अपरिचित साधु उमके घर पोखरी के लिए गया । कीकी बड़ी भावना से आहार बहराने लगी । साधु ने उस अनात घर में इतनी भावना और भक्ति देखकर पूछा—‘बहन तुम्हारा नाम क्या है ?’ तब वह अत्यंत दीन स्वर से उच्छ्वास झालती हुई बोली—‘महाराज ! मैं वही पापिनी कीकी हू जिसने साध्वियों के पात्र से घाट वापस ले ली थी । कोई तो इस भद्र के कर्मों का फल भगले जन्म में भोगता है, पर मैंने तो अपने किए गए पाप का फल हाथोंहाथ देख लिया है ।’ इस तरह वह पश्चात्ताप करने लगी ।

इस घटना के पूर्वान से स्पष्ट पता लग जाता है कि स्वामीजी को आहार के लिए कितने कष्ट महन करने पड़े ।

(भिक्षु दृष्टान्त २६१)

४२. प्रारम्भिक वर्षों में स्वामीजीको वस्त्र भी बड़ी कठिनता से मिल पाता था । इस बात की भर्षा करते हुए एक बार स्वामीजी ने कहा था—‘कभी सवा सपना मूख की वासती (रेजी) मिल जाती तब भारमन कहना कि आप इसकी पछेवड़ी बना लीजिए, मैं कहता कि इसके दो भोलपट्टे बनाओ । एक तुम्हारे काम आ जाएगा और एक मेरे ।’

(भिक्षु दृष्टान्त २७६)

४३. कई वर्षों तक स्वामीजी को मयवती आदि सूत्र पढ़ने को नहीं मिले थे । बाद में भोगुदा के भाइयों ने स्वामीजी को १८२९ वर्षों वाला भववती तथा दूसरा पन्वचना सूत्र बहराया ।

(भिक्षु दृष्टान्त ६०)

४४. पढ़ने वर्षों में स्वामीजी के पास व्याख्यान सुनने के लिए सोप बहुत कम आते थे । कभी कभी व्याख्यान का समय हो जाता और एक भी भाई

नहीं आया। फिर भी स्वामीजी वाकान्त प्रारम्भ कर देते और साधुओं को गुलाने।

इस तरह धीरे-धीरे दुकान पर साधुओं की तरह भोग गीर्ण आने लगे।

(मुत्तानुपुन)

४५ स्वामीजी एक बार 'बी-पाडा' पधारे। वहाँ के भाई-बहिन बहुत द्वेष करते थे। नाना प्रकार की घानियों से भरे लोग उन्हें रोटी-पानी देने में भी आना-कानी करते थे। स्वामीजी के आने का पता लगते ही उन्होंने बशीरग किया—'जो भीखणजी को रोटी देगा, उसे प्रत्येक रोटी पर ग्यारह सामायिक दंड की आएगी।' जिससे पूरा आहार-पानी नहीं मिलता। स्वामीजी ने साधुओं से कहा—'यहाँ पर एक महीना रहने का विचार है।' साधुओं ने निरेशन किया—'मोक्ष पानी की यहाँ पर बहुत कमी है।' स्वामीजी बोले—'अधिक पलों में गोचरी कर लेंगे।' ऐसा निर्णय कर स्वामीजी वहाँ पर ही ठहरे। साधुओं को तीन मुहूर्तों में गोचरी करने के लिए भेजते। एक गोचरी गाव के बाहर रहने वाले शाही, कुम्भार जाट आदि की दूसरी राममा की ओर तीसरी महाजन की करवाई जाने लगी। स्वयं स्वामीजी भी गोचरी जाते। एक दिन एक घर में गोचरी पधारे तो एक बाई ने कहा—'तुम्हें रोटी दे दू तो स्थानक में सामायिक करती हुई मेरी ननद की सामायिक गल जाए।' इस प्रकार अनेक धम कैलाकर विरोधियों ने उन्हें पराजित करना चाहा परन्तु वे सदा अपराजित ही रहे।

(भिवन्तु दृष्टान्त ४२)

४६ उदयपुर में एक अन्य संप्रदाय का साधु स्वामीजी के पास आया और बोला—'भीखणजी! कोई खर्चा पूछो।' स्वामीजी ने पहले तो उसे टापने का प्रयास किया पर जब वह आप्रह करने लगा तो कहा—'अच्छा बताओ तुम सती हो या अमती?'

वह व्यक्ति—सती।

स्वामीजी—किस न्याय से?

वह व्यक्ति—मिच्छामि दुक्कड़ में असती हूँ।

स्वामीजी—किस न्याय से?

वह व्यक्ति—नहीं नहीं। मिच्छामि दुक्कड़ में तो सती या असती दोनों ही नहीं हूँ।

स्वामीजी—वह भी किस न्याय से?

तब वह व्यक्ति कुड़ होकर बोला—तुमने न्याय-न्याय की रट लगाकर हमारे सारे मत को ही बिगड़ दिया और स्वामीजी की छाती पर मुक्का मारकर चलता बना।

(भिवन्तु दृष्टान्त ४३)

४७. स्वामी भीखजी सपनों की कसौटी पर भटने गये और खरे उतरते गए वे किसी भी परिस्थिति में घबराये नहीं। विरोधी व्यक्तियों द्वारा उत्पन्न की गई विषम स्थितियों को उन्होंने बड़े साहस और धैर्य के साथ सहन किया।

स्वामीजी का सर्वाधिक विरोध आचार्य रघनाथजी तथा उनके अनुयायियों ने किया। पर स्वामीजी को उनमें सफलता ही मिली।

आचार्य रघनाथजी ने उस विरोध में जयमलजी को भी अपने साथ मिलाने का प्रयास किया। उन्होंने जयमलजी से कहा—‘हम बहुत साधु हैं, वे तेरह ही हैं यदि सब मिलकर साहस करें तो उन्हें तूतड़ों की तरह बिखेर दें।’

आचार्य जयमलजी ने उन्हें एक उदाहरण द्वारा समझाने हुए कहा—‘एक बार शाहपुरा के राजा पर राजाजी की फौजें आईं और उन्होंने शाहपुरा को अपने कब्जे में करने के लिए युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु उसका कोई वल नहीं बचा, इसका कारण था कि पहले तो शाहपुरा का कोट विमान और सुदृढ़ था, दूसरे में कोट के बाहर पानी से भरी हुई खाई थी, तीसरे में किले में तोप आदि हथियारों की विपुल सामग्री थी चौथे में राजाजी के सैनिक शाहपुरा के सुभटों के समकक्ष नहीं थे। राजाजी की फौजें छह महीनों तक प्रयास करती रही एवं लाखों रुपये भी खर्च कर दिए, तो भी शाहपुरा को प्राप्त नहीं कर सकी। आखिर मिरास होकर फौज को वापस झौटना पड़ा।’

ठीक इसी प्रकार हम लोग भीखजी का सामना नहीं कर सकेंगे, क्योंकि वे शास्त्रों के विशेषज्ञ हैं। तर्क शक्ति भी उनकी प्रबल है। वे स्वयं साध्याचार का दृढ़ता पूर्वक पालन करते हैं। हमारे साथ वर्षों तक रहे हुए हैं और हमारी आंतरिक कमजोरियों को भी जानते हैं। इसलिए विरोध न करके उनके प्रति उपेक्षित रहना चाहिए। वे आचार-क्रिया का सम्यग पालन करेंगे तो हमारा ही पक्ष होगा। लोग कहेंगे कि रघनाथजी के शिष्य कठोरता से साधुत्व का पालन कर रहे हैं।

लेकिन आचार्य रघनाथजी ने उक्त परामर्श पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने सबेरे समय तक स्वामीजी का पीछा किया और गाव-गाव में लोगों को बहकाते रहे। उसका फल यह हुआ कि उनके ही धावक स्वामीजी से अधिक गमावित हुए और तेरापदी बने।

(दृष्टान्त ११)

४८. बीजाहा में आचार्य रघनाथजी ने ब्राह्मणों को बहकाते हुए कहा—‘मेरा शिष्य भीखजी अविनीत हो गया है। वह ब्राह्मणों को देने में भी पाप मन्त्राना है। इस पर ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होकर स्वामीजी के पास आये और शगडा करने लगे।’

स्वामीजी उन्हें शान्तिपूर्वक समझाने के लिए कुछ कह ही रहे थे कि वहाँ उपस्थित धावक रामचन्द्रजी बरारिया ने ब्राह्मणों से कहा—‘रघनाथजी यदि ब्राह्मणों

को देने में धर्म कहते हैं तो मैं आपको अभी पच्चीस मन गेहूँ देने के लिए तैयार हूँ।  
ब्राह्मण बोले—‘वे तो धर्म ही कहते हैं, हमारे साथ चलो, यह तो अभी कहलवा सकते हैं।’

ब्राह्मण और रामचन्द्रजी आचार्य दयनाथजी के पास आए। रामचन्द्रजी ने कहा—‘आप धर्म कहे तो मैं ब्राह्मणों को पच्चीस मन गेहूँ दूँगा। आप आज्ञा दें तो उनकी ‘घूसरी’ बनाकर खिला दूँगा। उनका आटा गिनवाकर माघ में दो मन चने की कढ़ी बनवाकर खिला दूँ। जिसमें अधिक धर्म हो वही बतला दें।’

आचार्य दयनाथजी बोले—‘हम साधु हैं, हम ऐसा कहना कल्पता नहीं।’

रामचन्द्रजी—जब आप स्वयं इस दान में धर्म नहीं कह सकते तो स्वामी भीखण जी का नाम लेकर इन लोगों को भ्रान्त क्यों करते हैं। वे तो आपसे कहीं कठोर आचार का पालन करते हैं।

रामचन्द्रजी के उक्त कथन का आचार्य दयनाथजी ने कोई जवाब नहीं दिया। उनके मौन से ब्राह्मण समझ गए कि केवल हम लोगों को बहकाने के लिए ही ऐसा कहा गया है।

(भिक्षु दृष्टान्त ४२)

४६. एक बार स्वामीजी बहिर्भूमि की ओर जा रहे थे। एक अन्य संप्रदाय के साधु भी उधर आ गये और स्वामीजी के साथ-साथ चलने लगे। वे संप्रदाय स्वामीजी के साथ-साथ चलना चाहते थे पर रास्ता चौड़ा न होने से उन्हें हरियाली पर चलना पड़ रहा था। स्वामीजी का ध्यान जब उधर गया तो उन्होंने कहा—‘साक मार्ग पड़ा है तो फिर हरियाली पर क्यों चल रहे हो।’

स्वामीजी के इतना कहते ही वे अकड़ कर बोले—‘आप मेरे विषय में कुछ कहेंगे तो मैं गाव जाकर कह दूँगा कि भीखणजी हरियाली पर चल रहे थे।’

इस तरह गप्पी बात करने पर भी विपक्षी उल्टा प्रचार करने के लिए उद्यत रहने।

(भिक्षु दृष्टान्त ४१)

५०. सौत्रज के अणदोत्री पट्टा स्वामीजी के प्रति बहुत द्वेष भावना रखने से उन्होंने आवेश में आकर कहा—‘मैं कभी भी स्वामी भीखणजी का मुँह नहीं देखूँगा। सयोगन मान दिनों के पश्चान ही वे अगुम कर्मोदय से अंधे हो गए।

सोगों ने जब मुना तो व्यग्न कमने हुए कहा—‘अणदोत्री ने अपने वचन का पूरा पालन कर दिया है। अब तो वे कभी भी भीखणजी का मुँह नहीं देख सकते। इस तरह सोगों ने अणदोत्री की बहुत निन्दा हुई।

(दृष्टान्त १)

५१. अनेक व्यक्ति ऐसे भी थे जो स्वामीजी के मन्त्रियों को सही मानते हुए भी संप्रदाय मंड के कारण उनका विरोध करने थे।

एक बार स्वामीजी ने मुनि गुमानजी के टोने से बहिर्भूत मुनि दुर्गादासजी से पूछा—‘अब हम स्थानक की सदीय कहते थे तब तुम उमे निर्दोष बतलाने थे। अब उनसे पृथक् होने के पश्चात् उसे अकल्पनीय कैसे कहने लगे ?’

दुर्गादासजी ने कहा—‘रावण के सामंत उसे खोपी मानने हुए भी राम की सेना की तरफ भाग चलते थे। हमारी भी वही स्थिति थी। पहले पशुपान के कारण बंसा कहने थे अब जंसा सयना है बंसा कहते हैं।’

(भिक्षु दृष्टान्त ८)

५२. स० १८५७ में स्वामीजी भीलवाड़ा पधारे। रात्रि के समय व्याख्यान में जनता बहुत एकत्रित हुई। साप्ताचार का निवेदन करते हुए स्वामीजी ने ‘तुम्हें जायजी अघारो इण भेष में’ इस नीतिरा के कुछ पद्य सुनाये और तत्कालीन माधुओं के आचार-व्यवहार की कुछ चोटियों की समीक्षा की। वहाँ के नागोरी बघुओं में उनकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। व्याख्यान समाप्ति के पश्चात् वे लोग स्वामीजी के सम्मुख अटसट बोलते हुए विग्रह करने लगे।

स्वामीजी ने उनके ममसने की भाषना न देखकर कुछ समय के लिए मौन धारण कर लिया। फिर भी कभी समय तक मौन बकबाग करते रहे। धनराज नागोरी ने कहा—‘अब अनिमा की तरह मौन होकर क्यों बैठ बने। उत्तर क्यों नहीं देने।’

स्वामीजी फिर भी नहीं बोले तब वे लोग थक कर चले गये।

उन्हीं दिनों उदयपुर राज्य के प्रधान (मन्त्री) शिवदासजी गांधी किसी सैनिक कार्य के लिए बहा आये हुए थे। उन्होंने अब उल्लभटना वृत्तान्त सुना तो उपासम देते हुए कहलवाया—‘धनराज नागोरी की मन्त पुरुषों के सामने अनुचित बोलने तथा झगड़ने में कौन-सी वीरता है। लड़ना ही चाहते हो तो देश पर हमला करने वाली शत्रु-सेना के साथ क्यों नहीं लड़ते।’

उसके बाद नागौरियों के सड़ने-झगड़ने का साहज समाप्त हो गया।

(धार्मिक दृष्टान्त २५)

५३. स्वामीजी के धर्म और शान्तिमय व्यवहार को देखकर भीलवाड़ा के भैरदामजी बहालिया ने स्वामीजी से निवेदन किया—‘महाराज ! लोग आपको साथ विग्रह करते हैं पर आप धर्म पूर्वक लोगों की गलतियाँ सुनते हैं, अपमान सहते हैं, अन. अन्त में राव रुधनाथ के जवाई की तरह आपकी अवश्य विजय होगी।’ जैसे—

“दिल्ली के बादशाह के सामने राव रुधनाथ अग्रवाल की बड़ी प्रतिष्ठा थी। राज्य में बहुत प्रभाव था। एक बार कोई गरीब अग्रवाल अपने इकलौते प्यारे पुत्र को मुन्दर काटे पहनाकर मोद में लिए जा रहा था कि अन्य जाति वालों ने ताना कसा—‘बया आप राव रुधनाथ की सड़की से अपने पुत्र की शादी करने

जले हो ?' यह बात उसके हृदय में चुभ गई, और वह बोला—'ऐसी क्या है, वह भी अग्रवास है और मैं भी अग्रवास हूँ, अतः हो सकती है।'

अच्छा ! कैसे हो सकती है ? लोगों ने मजाक किया—। अग्रवास से राव दधनाथ के सामने कचहरी में आकर सड़के की आगे पड़ा करके बोला 'ओ राव दधनाथ ! मेरा लडका, तेरी लडकी, सम्बन्ध कर लो।' राव के इशारे पर पहरेदारों ने गाली-गलौच कर बाहर धकेल दिया। बाहर आते ही लोगों ने उसे पूछा—'क्या सम्बन्ध कर लिया ?'

उसने कहा—'आज पहला ही दिन है, कम से कम 'धुवरम धुक्का' तो हुआ।' दूसरे दिन जैसे ही पुत्र को कचहरी में ले जाकर जोर से आवाज लगाई—'ओ राव दधनाथ ! मेरा लडका तेरी लडकी सम्बन्ध कर लो।' मिपाहियों ने बाट लगाते हुए उसे धक्के देकर वहाँ से निकाल दिया। रास्ते में लोगों ने फिर पूछा—'क्या सबध हो गया ?' उसने कहा—'आज दूसरा ही दिन है। कल 'धुवरम धुक्का' हुआ और आज 'धक्कम धक्का' हुआ है।'

उधर राव दधनाथ जब महसी में गए तो पत्नी ने इस दो दिन से होने वाली गड़बड़ी का कारण पूछा। राव दधनाथ ने उस अग्रवाल की बात कही। पत्नी—'लडका कैसा है ?' लडका तो अच्छा ही है पर गरीब है। पत्नी—'गरीब है तो क्या ! घन तो हमारे पास बहुत है, लडका अच्छा हो तो सबध कर लेना चाहिए, बाधिर अपनी बिरादरी का ही तो है।'

तीसरे दिन जब अग्रवाल ने आकर आवाज लगाई तो रोठानी से उसे ऊपर बुला लिया। लडका देखते ही पसन्द आ गया तब तत्काल सगाई का निश्चय कर गहने कपड़े पहनाकर एक पालकी में बिठसा कर उसे सिपाहियों के साथ निरा किया। रहते के लिए महल बनवा कर दिया तथा साखी दपयो की सर्ति सौंप दी।

बाजार के मध्य से जब वह गुजरने लगा तो लोगों ने देखा कि सबभुच उसने राव दधनाथ की पुत्री से आने पुत्र का सम्बन्ध कर दिया है। 'धुवरम धुक्का' 'धक्कम धक्का' होने वाली के आज 'छक्कम छक्का' भी हो गया। इस प्रकार जानि भाई होने से तथा अपमान सहने से उसका बड़े घर में सबध हो गया।

भंडारगजी ने अपना तात्पर्य प्रकट करने हुए कहा—'महाराज ! आप

१ भंडारगजी पञ्चाजिया आदि चार भाइयों ने सं० १८५९ के नायडारा चानुषोम में स्वागीत्री में तत्काल समग्ररुद गुरु-धारणा स्वीकार की। उनकी भावृ भी बिजनी पर हो आचार्य भिन्न नायडारा से विहार कर सं० १८५७ में भी नवाङ्ग पधारे थे।

शुद्ध समय पालते हैं और अपमान में भी धैर्यता रखते हैं इसलिए हमें दृढ़ विश्वास है कि आज आपका विरहकार करने वाले कल समयान् मानकर अपने चरणों में धुकेंगे।'

(थावक दृष्टान्त २५)

५४. विरोधी भोगी का बड़ता हुआ विरोध देखकर एक बार आचार्य भिक्षु की आशा टूट गई थी। उन्होंने अन्य सहयोगी साधुओं के साथ चौविहार एकान्तर तप प्रारम्भ किया और जंगल में जाकर नदी की धूलि पर सूर्य की आतापना लेने लगे। पारने के दिन भी वे गाव से यथाप्राप्त आहार-पानी लेकर जंगल में चले जाते। वृद्ध की छाया में प्रासुक स्थान देखकर आहार-पानी रख देते और आतापना लेने के लिए धूप में अत्युष्ण रेतीली धरती पर बैठ जाते। आतापना के ताप-माप ध्यान और स्वाध्याय भी करते। उस कार्य से निवृत्त होने के पश्चात् आहार-पानी करते और सायंकाल वापस गाव में आ जाया करते।'

इस प्रकार आत्म-वित्याग की भावना से उस समय के रोमाञ्चकारी उद्गार सफलता मिलने के पश्चात् उन्होंने मुनि हेमराजजी के सम्मुख ध्येय किये थे। वे इस प्रकार हैं—

'आहार पाणी जाच नें उत्राड में सर्व साध परहा जावता। कण्डा री छाया आहार पाणी मेल नें आतापना लेता, आपण रा पाछा गाव में आवता। इण रीने कण्ट भोगवता। कर्म काटता। म्हे या न जानता म्हारो भारण जमती ने म्हा में मू दीशा लेती ने मू थावक थाविका हुनी। आप्पो आत्मा राकरज सारता, मर पूरा देसा, हम जाण में लपस्या करता।'

(भिक्षु दृष्टान्त २७६)

उपरोक्त कथन से यह अच्छी तरह जाना जा सकता है कि स्वामीजी की सफलता की कोई सम्भावना नहीं रही थी।

१. जब भीखू मन जानियो, कर तप कलं भित्थोण।  
मग नही दीसै चालतो, धति धन सोम अमान।  
पर छोड़ी भुत्त धन मत्ते, सज्जम कुण ले सोप।  
थावक नें बलि थाविता, हुता न दीसै कोप।  
एहवी करे आतोपना, एकांतर अवधार।  
आतापन बलि थादरी, सज्ज गाये सार।  
चौविहार उरवास बिस, उगधि पटो सहु तप।  
आतापन में बज मत्ते, तप कर तन तावन।

(भिक्षु जम० रमानण द्वा० १० दो० ६ ने ६)

५५. स्वामीजी का श्रीविहार एरान्तर तर तथा आनापना का नम सगण दो वर्ष तक चलना रहा। इस प्रकार की उरलट साधना को देखकर जनता के सहज गुहाव होने लगा। वे सोचने लगे कि उच्चकोटि के आत्मावी साधक हैं ऐसा कर सकते हैं। धीरे-धीरे लोगों का आवागमन होने लगा।

उस समय बड़े संन विरपालजी और फनेहचन्दजी ने स्वामीजी में निवेदन किया—'आप तपस्या करके शरीर को क्यों गुहा रहे हैं। उमके लिए तो हम हैं ही। आप बुद्धिमान हैं, अन धर्म का उद्योग करें एवं लोगों को समझाएं क्योंकि अब उनके समझने की पूर्ण सभावना है।'

स्वामीजी ने बड़े साधुओं के गुहाध को मान कर विशेष प्रयत्न करना शुरू किया।<sup>१</sup>

(भिक्षु दुष्टान्त २७६)

५६. स्वामीजी धर्म प्रचार के लिए उद्यत हुए। ग्राम-ग्राम में जाकर लोगों को समझाने लगे। व्याख्यान व आत्मनिर्वाण के माध्यम से थड़ा-आचार दयावान आदि तत्वों का विहनेषण कर अनेक व्यक्तिओं को थड़ानू, देशपती और महापती बनाया। इस प्रकार धीरे-धीरे धर्म-साध की बुद्धि होने लगी—

दान दया हृद न्याय दीपावता, ओलथावता आचार हो।

जिन वच करि प्रभु माग जमावता, समझा बहु नर नार हो॥

(भिक्षु जहा० रसावण का० १० पा० ६)

स्वामीजी की व्याख्या-शीली आकर्षक व रस-परक थी। वे प्रवचन करते समय हेतु दुष्टान्त तथा युक्ति द्वारा उसमें इतनी सरमता भर देते कि श्रोतागण मुग्ध हुए बिना नहीं रहते।

एक बार स्वामीजी ने रोयट में शातिभद्र का व्याख्यान सुनाया। भाई लोग सुनकर बहुत प्रमन्न हुए। उन्होंने स्वामीजी से कहा—'शातिभद्र का व्याख्यान

१. विरपालजी फनेचन्दजी इस वही, स्वाम भोक्खू ने सोय हो।
- बपू तन सोहो ये सगता करी, समझता दीसै बहु सोय हो।
- ये बुद्धिवान् पारी विरबुद्धि भली, उत्पत्तिया अधिकय हो।
- समझावो बहु जीव सैणों भणी, निर्मल बतावी न्याय हो।
- तपस्या करां ह्मे आत्म तारणी, अधिक पोह्य नहीं और हो।
- आप सरो ये तारो अवर नै, जातो बुद्धि नो जोर हो।
- मत बड़ा रो वचन भोक्खू गुणी, धारपो धर चित्त धीर हो।
- न्याय विशेष बतावा निनमा, हरप्यो हिवरो हीर हो।

(भिक्षु जहा० का० १० पा० २, ६, ७, ८)

तो अनेक बार गुना है, पर इस बार जो आनंद आया वंसा पहले कभी नहीं आया ।'

स्वामीजी ने कहा—'वक्त की प्रतिपादन शैली भिन्न-भिन्न होने से एक ही व्याख्यान में यह भिन्नता आ जाती है। इससे इतने आश्चर्य की क्या बात है। वक्त के सम्मुख रक्तिक व यद्वात् श्रोता होता है तो वह व्याख्यान अधिकतम सरस बन जाता है।'

(भिक्षु दृष्टान्त २२६)

१७ स्वामीजी पारबाइ के एक गांव में पधारें। वहां अनेक लोग सम्पर्क में आये और समझे। परन्तु एक प्रमुख व्यक्ति कभी नहीं आया। एक दिन रास्ते में मिला तो स्वामीजी ने सत्संग और धर्म-वर्षा करने की प्रेरणा दी। उसने कहा—'किसी दिन समय मिलने पर आऊंगा। इसके पश्चात् कई दिनों तक वह नहीं आया। एक दिन फिर वह स्वामीजी को मार्ग में मिल गया। इस बार उसे कहा गया तो वह बोला—'माना तो चाहता था पर अवकाश नहीं मिला।'

स्वामीजी ने कहा—'मुबह या शाम को कुछ न कुछ अवकाश तो मिलता ही होगा।'

उसने कहा—'प्रातः दतौन (कुस्ता) करता हूँ बस उस समय थोड़ा-सा अवकाश मिलता है।' यह कहकर वह अपनी दुकान की ओर चला गया। मन ही मन सोचने लगा कि अब मैंने सदा के लिए चला टाक दी है।

दूसरे दिन वह दतौन (कुस्ता) करने बैठा तो अकस्मात् स्वामीजी पधार गए। वह खड़ा हुआ और कुछ लज्जित-सा होकर बोला—'आपने इस समय पधारने की कैसे हुपा की?'

स्वामीजी ने कहा—'कल तुमने यही अवकाश का समय बतलाया था।'

स्वामीजी की उन उदारता से वह गद्गद् हो गया। उसने क्षमा मागते हुए कहा—'स्वामीजी! आज मैं अवश्य आपके चरणों में उपस्थित होनाऊंगा।'

वह व्यक्ति उसी दिन से सम्पर्क में आने लगा। बानधीत व तत्त्वचर्चा करने समझा और कालान्तर में एक दृढ़ श्रावक बन गया।

इस प्रकार स्वामीजी एक-एक व्यक्ति को समझाने के लिए प्रयत्न करते थे। किसीको कैसे धर्म के प्रति प्रेरित किया जा सकता है, वे इसके पूरे मर्मज्ञ थे।

(अनुद्युति के आधार से)

१८. स्वामीजी की भाव-दीक्षा लेने के पश्चात् लगभग १५ वर्ष सचर्यों से लोहा लेना पड़ा। उसके बाद धीरे-धीरे गणनता के द्वार खुलने लगे। पर स० १८५३ तक साधुओं की सख्या में विशेष अभिवृद्धि नहीं हुई। भाव-दीक्षा के प्रारम्भ में स्वामीजी आदि १३ साधु थे। तत्पश्चात् कितने वर्षों तक १३ की सख्या नहीं हुई।

साध ८ और १२ के बीच में रखी। सं० १८४४ में वेणीरामजी (२८) की दीक्षा के बाद एक साध १३ या १४ की मर्यादा हुई थी, पर बाद कुछ समय तक रही। परिधि में इसका स्वरूपीकरण—

सं० १८४४ में मुनि श्री वेणीरामजी की दीक्षा के समय १० साधु नियमाधारे, ११ में मुनि श्री वेणीरामजी हुए।

- १ स्वामी भीष्मजी (स्वर्ग सं० १८६०)
- २ मुनिश्री हरनाथजी (६) (स्वर्ग सं० १८६६-१८६८ के बीच)
- ३ आचार्य भार्गवराजजी (७) (स्वर्ग सं० १८७८)
- ४ मुनिश्री गुरुनाथजी (८) (स्वर्ग सं० १८९२)
- ५ = भार्गवराजजी (१०) (स्वर्ग सं० १८९१)
- ६ = रामजी (२१) (स्वर्ग सं० १८९९)
- ७ = मेरुजी (२२) (स्वर्ग सं० १८८०)
- ८ = रामजी (२३) (स्वर्ग सं० १८७०)
- ९ = मानजी (२६) (स्वर्ग सं० १८७१)
- १० = नेमजी (२७) (स्वर्ग हरनाथजी के बाद सं० १८५३ से पूर्व)
- ११ = वेणीरामजी (२८) (स्वर्ग सं० १८७०)

सं० १८४४ से १८८७ के बीच दीक्षित होने वाले साधु—

- १ मुनिश्री रूपचन्दजी (२६)
- २ = गुरुजी (३०)
- ३ = बर्धमानजी (३१) (स्वर्ग सं० १८५५)
- ४ = रूपचन्दजी (६२)
- ५ = मयारामजी (३३) (स्वर्ग सं० १८५५ तक विद्यमान रहे)
- ६ = बभ्रुजी (३४)
- ७ = गुरुनाथजी (३५) (स्वर्ग सं० १८६४)

सं० १८५३ साध भुक्ता १३ की मुनि श्री हेमराजजी की दीक्षा के पूर्व निम्नोक्त साधु दिवंगत या गण बाहर हो गये—

१. मुनिश्री हरनाथजी दिवंगत
२. " नेमजी "
३. " रूपचन्दजी गणबाहर।
४. " गुरुजी गणबाहर।
५. " रूपचन्दजी "
६. " बभ्रुजी "

सं० १८५३ साध भुक्ता १३ की मुनिश्री हेमराजजी की दीक्षा हुई तब सन में १२ साधु थे। मुनि हेमराजजी तेरहवें गत हुए। उनके बाद कभी भी १३ से

कम सध्या नहीं हुई। उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।

भयवान् महावीर के पाचवें उत्तराधिकारी यशोभद्र स्वामी ने बकचूल (४५ आयमों के अन्तर्गत) सूत्र में यमण सध की वृद्धि के विषय में जो उल्लेख किया है वह यथार्थ हो गया।

बकचूल का विधान इस प्रकार है—

अहं अग्निदत्त साह, पुणोवि पुच्छई मुक्कहणणमाणो।

अज्जो कया होई, सुयहीला अवि कया उदओ ॥१॥

अहं अग्निदत्त साधु गुरु के आदेश पूर्वक पुन प्रश्न करते हैं कि हे आर्य! सूत्र की हेलना और उदय कब होगा?

भणई जसोबद्ध-मूरि, सुय-उवओणेण अग्निदत्त-धुणि।

सुणेमु महाभाग, जहा सुयहीला अहा तहा उदओ ॥२॥

तब यशोभद्र स्वामी निर्मल ज्ञान द्वारा अग्निदत्त मुनि को बहते हैं—हे महाभाग! सुन, यथा मूत्र-होमना और उदय।

मोक्खाउ बीरपट्टणो, दुमएदिय-एकनवद्ध-आहिएहि।

बरिसाई सपई निण्वो, दिण-वडिमा-गवओ होई ॥३॥

बीर प्रभु के निर्वाण से २६१ वर्षों तक श्रुद्ध प्रख्याता रहेगी, फिर सप्रति नामक राजा जिन प्रतिमा का निर्माण एवं प्रचार करने वाला होगा।

तनो य सोलस्सएहि, नवनवद्ध-मंजुएहि बरिसेहि।

ते दुट्ठा धाणियग्गा, अवमन्नइमति सुयमेय ॥४॥

उसके बाद १६६६ वर्षों तक अधिकांश अनुद परम्परा होगी और जो दुष्ट लोग हैं वे हिंसा धर्म को स्थापित करके सूत्र की अवहेलना करेंगे।

तम्मि समए अग्निदत्ता, सधमुयराशिनिकखते।

अइतीममो हट्ठो, सगिस्सइ धूमकेउ गहो ॥५॥

उस समय (वीर० नि० १६६० में) अग्निदत्त। सध और मूत्र की जन्म-राशि पर दुष्ट, सूत्र-मार्ग-विध्वंसक धूमकेतु नामक ग्रह लगेंगा।

तस्स ठिइ तिन्निस्सया, सेतीसा एगरासि बरिमाण।

तम्मि भीणपइठो, सधस्स सुवस्स उदओ अस्सि ॥६॥

१. यारं सत आगे हुआ, स्वाम भीनू रं सोय कं।

हेम यथा सनतेरपा, मां पाछे न घटियो कोउ कं ॥

(हेम नवरमा द्वा० ३ पा० २३)

२. बकचूलिया में बारता, भनुरविध सध नी सोय कं।

समत अग्ररं तेयना पटै, उद-उद पूषा अति होय कं ॥

(हेम नवरमा द्वा० ३ पा० २४)

[illegible]

सातवां मह है कि भीर विनिंग मे २६१ वर्षों तक मजदूर परगना गयी, तब मे १६६६ वर्षों तक अविनाशित मजदूर परगना गयी। पी० वि० १६६० एच वि० स० १६२० मे ३३३ वर्षों का मजदूर नामक बंद मना। उनसे १० वर्ष का सम्मपह के उत्तर मे मजदूर के मजदूर की गानतन होने मे पी० वि० २००१ एच वि० स० १६३१ मे मजदूर मजदूर ने बंद होकर मजदूर परगना गानू की। लेकिन मजदूर की मजदूर के बानत बोरे वर्षों के बाद मजदूर मजदूर हो गई। फिर मजदूर के मजदूर होने पर पी० वि० स० २२८७ एच वि० स० १८१७ (पंचांगानुसार) मजदूर मजदूर १५ की मजदूर मजदूर ने मजदूर मजदूर मजदूर मे मजदूर मजदूर की विशेष मजदूर नहीं हुई। पी० वि० २३२३ एच वि० स० १८५३ मे मजदूर के उत्तर मे मे मजदूर मजदूर मजदूर की मजदूर हुई और मजदूर मजदूर मजदूर की उत्तरोत्तर मजदूर होने लगी।

५६ आचार्य मिश्र ने जैन-आगमों के आधार पर राजस्थानी भाषा में सुन्दर सरल और हृदय-स्पर्शी पद्य-गद्यात्मक साहित्य का निर्माण किया। जिनकी खोज सद्यः लगभग ३००० है। वे समस्त रचनावें 'मिश्र ग्रन्थ रत्नाकर' नामक पुस्तक में लिखित हैं।

साहित्य का शुभ्यक दिग्-दर्शन परिशिष्ट १ (क) पृ० ३२५ तथा साहित्य की  
तालिका परिशिष्ट १ (ख) पृ० ३२६ में देखें।

६० आगरिया में प्रतापजी कोटारी ने पुष्टा.—

‘आप कविता कैसे करते हैं?’ स्वामीजी के पास उस समय एक सफेद की टोपसी खुली पड़ी थी और तेज हवा चल रही थी। इस प्रसंग को देखकर उन्होंने तत्काल एक गायन रचकर गूनाई—

नान्ही सी एक टोपसी, मांहे घाल्यो सफेदो ।

जलन घणा कर राधज्यो, नही तो पड़ ज्यावेला रेतो ॥१॥

(मिन्सु दृष्टान्त २४)

६१ प्रतिपक्षी के प्रतिकूल व्यवहार से शत्रुत्व न होना और उससे कुछ न कुछ गुण का ग्रहण करना उत्तम पुरुषों का सन्निध है। स्वामीजी के प्रेरक प्रत्यक्ष प्रमाणित करते हैं कि वे कितने गुण-आहक एवं आत्म-द्रष्टा थे।

६२ एक बार स्वामीजी बिहार करते हुए 'देसूरी जा रहे थे। मार्ग में धाने-  
राव के महाजन मिले। उन्होंने पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है?' स्वामीजी ने कहा  
'मेरा नाम भीष्मण है।' तब वे बोले—'क्या भीष्मणजी सेरापधी तुम ही हो?'  
स्वामीजी—'हां, मैं यही हूँ।' तब जनम में एक व्यक्ति ने आवेश में आकर कहा  
'तुम्हारा मुह देखने वाला नरक में जाता है।' स्वामीजी ने तत्काल उत्तर कर पूछा

‘तुम्हारा मुह देखने मे?’ उसने सिर ऊंचा उठाने हुए गर्वनि स्वर में कहा—‘मेरा मुह देखने वाला स्वर्ग में या मोक्ष में जाता है।’

स्वामीजी बोले—‘किसी का मुह देखने मात्र से स्वर्ग या नरक भिन्नता हो यह बात तो नहीं मानते। पर तुम्हारे ही कथनानुसार हमने तो तुम्हारा मुह देखा है अतः हम तो स्वर्ग या मोक्ष में जायेंगे और तुमने हमारा मुह देखा है इसलिए नरक के अधिकारी तुम ही बनोगे।’ यह सुनकर वे सब चुपचाप आगे चले गये।

(भिवखु दृष्टान्त १५)

६३ किसी ने आकर स्वामीजी से कहा—‘अमुक जगह भोग एकत्रित होकर आपके अवगुण निकाल रहे हैं?’ स्वामीजी बोले ‘निकाल ही रहे हैं, बाल तो नहीं रहे हैं। मुझे अवगुण निकालने ही हैं। कुछ मैं निकालूंगा, कुछ वे निकालेंगे। जिससे अवगुण शीघ्र ही निकल जायेंगे।’

(भिवखु दृष्टान्त १६)

६४ एक बार एक व्यक्ति प्रश्न का जवाब न आने से झझलाकर स्वामीजी के सिर पर ‘ढोला’ लगाकर चलता बना। देखने वाले लोगों के दिल में यह बात काटे की तरह चुभ गई और उनका चेहरा क्रोध से लाल हो गया। स्वामीजी ने उनको कहा—‘ढोला तो मेरे सिर पर लगा है, जब मुझे ही क्रोध नहीं आया तो तुम्हें क्यों आया? तुम जानने ही हो जब कोई व्यक्ति बाजार में एक टके की (हडिया) हाथी लेने आता है तो टकोरा लगाकर देखा है उसकी परीक्षा करता है। तो क्या पता उमने भी गुरु बनाने के लिए मेरी परीक्षा की हो।’

स्वामीजी के गुणग्राही वक्ता से सबका आदेश शान्त हो गया।

(भुतानुभूत)

६५ म० १९१० में दो साधु अन्नैरामजी (१०) और रूपचन्दजी (२६) तेरा पत्र से अलग हो गए। उन्होंने ईर्ष्यावश भिक्षु स्वामी पर अनेक दोषों का आरोप लगाना शुरू किया। आरंभ-द्रष्टा स्वामीजी ने ज्यो-ज्यो सुने त्यो-त्यो लिख लिये। कुल १५६ दोष लिखे गये। भिक्षु स्वामी के हाथ का यह पत्र आज भी सुरक्षित है।

६६ एक बार पासी में चातुर्मास करने के लिए स्वामीजी गये वहां एक दूकान में ठहरे। किसी ने दूकान वाले के घर जाकर उसकी औरत को ऐसा कहकर बड़का दिया कि ये वातिक सुदी १५ तक यहां से नहीं जायेंगे। तब उमने स्वामीजी को स्थान खानो करने के लिए कहा और बोनी—‘यहां ठहरने की मेरी आज्ञा नहीं है।’

स्वामीजी ने कहा—‘बहिन! चातुर्मास में भी जब तू कहेगी तब हम दूसरी जगह चले जायेंगे।’ बहिन ने कहा—‘मुझे आप जैसे साधु कह गए कि ये चातुर्मास

१. अन्नैरामजी वापस प्रायश्चित्त लेकर गण में आ गये।

प्रारंभ होने से बाद स्थान को छोड़ने लगी, इसलिए मेरी दूकान अभी ही खोली कर दो।'

बादिर स्वामीजी उस दूकान को छोड़कर उदियापुर बाजार की एक दूकान की मेजों पर बने गये। दिन में ऊपर रहने और रात को नीचे दूकान में व्याख्यान देते। पहले की अपेक्षा वह स्थान मौके पर होने से व्याख्यान में लोग बढ़ी जाने लगे। अच्छा उपकार हुआ। उस दूकान को छुड़ाने का भी काफी प्रयत्न किया गया। पर उसके भाविक ने कहा—'वास्तव पूर्णिमा तक तो मैं किसी भी हाल में मना नहीं कहूँगा।'

उस चातुर्मास में वर्षा बहुत हुई। जिस दूकान में स्वामीजी पहले ठहरे थे, वह गिर गई। स्वामीजी को जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने गरमाया—दूकान छुड़वाने वालों पर उग्रस्वता (असहिष्णुता) के कारण कुछ उसी जना आसक्ति है पर वास्तव में उन्होंने हमारे साथ उपकार ही किया।'

(भिक्षु वृष्टान्त २)

६७ स्वामीजी पानी में पधारे जब बावेधा परिवार के लोगो ने दियो फैलाना प्रारंभ किया। उन्होंने ब्राह्मणों को भिड़वाने हुए कहा—'भीषण जो तुम देते में पाप कहते हैं अतः हम तुम्हें दान नहीं देंगे। ब्राह्मणों ने स्वामीजी से उक्त बात कही तब उन्होंने कहा वे लोग आपको पाच रुपये दें तो भी मेरे इन्कार का त्याग है। ब्राह्मणों ने बावेचों से कहा—'पाच रुपयों का हुक्म दिया है। अतः पाच रुपये दीजिए।' सुनते ही सबकी जवान बंद हो गई।

रात को व्याख्यान के समय वे लोग दोल बजाकर विघ्न डालने लगे। कथावकों ने स्वामीजी से दूसरी जगह पधारने के लिए कहा। स्वामीजी बोले—'संतमीजी नये साधु हैं अतः इसी स्थान में रहकर देखते हैं कि ये परिग्रह सहते कितने मजबूत हैं।'

पर्युषण पर्व पर उन लोगो ने इन्द्र-ध्वज महोत्सव मनाते हुए जुलूस निकाल स्वामीजी जिस दूकान में ठहरे हुए थे उसके सामने से जुलूस लाये और बड़े बहुरं देर तक रुक कर नाचने व गाने बजाने लगे। व्याख्यान में व्यापार पड़ने। कुछ भावकों को गुस्सा आ गया। वे उत्तेजित होकर जुलूस वालों का निषेध करने लगे। स्वामीजी ने उन्हें टोकने हुए कहा—'ये लोग भगवान को प्रतिमा मानते अतः या तो भगवान के सामने नाचते हैं या भगवान की प्रतिमा अर्थात् साधुओं के सामने। तुम लोग इन्हें क्यों रोक रहे हो।'

१ इस घटना के समय का उत्प्रेष नहीं मिलता पर स्वामीजी ने सं० १८२३५ पानी में सर्वप्रथम चातुर्मास किया था। अनुमानतः उस वर्ष की घटना ही।

स्वामीजी के इस कथन ने गारक को भाँप हुआ ही पर मूकधिवि करने वाले भी यह बर्तन हुए आगे चलते बने कि हमारे उनटे पुनटे बरतों के बीच भी ये तो मुनटा-मुनटा ही विचार बगते है।

(भिक्षु दृष्टान्त ६५)

१८ स्वामीजी के मई दीक्षा लेने के बाद कई वर्षों तक मण में साधु धारक और धारिका तो बने पर साधिवियाँ नहीं हुई। इनके लिए एक धारिका ने स्वामी जी से कहा — आपके मण में तीर्थ तीर है, जग बह तीर्थ मण सट्ट, गडित मणुन है।

स्वामीजी ने उनके ध्यान का उत्तर देने हुए कहा—‘मोक्ष गडित मने ही हो पर वह धोनुनी चार-गुनी धोनी मिसाने में धोनुनी का सट्ट बहमाना है इसलिए मिसना है उनका बाद में परिपूर्ण है।’

(भिक्षु दृष्टान्त २३)

इस घटना के कुछ समय पश्चात् ही तीन बहनें दीक्षा के लिए तैयार हुई। स्वामीजी ने उनमें कहा—‘अभी तक हथारे मण में कोई साधिवी नहीं है, इसलिए तीनों में से एक का विवोग हो गया तो जेव दो की मनेशना करनी होगी क्योंकि दो साधिवी को विपरना नहीं बहाना मुहँ यह गर्त रबीहार हो तो दीक्षा लेना।’

इस प्रकार स्वामीजी ने पक्का करार किया। वे भी बीर ब्रुति से उनके लिए स्वीकृत हो गई। तब स० १८७१ में स्वामीजी ने तीनों बहनों को दीक्षा प्रदान की इसके बाद मण में अनेक साधिवियाँ हो गई पर स्वामीजी की नीति प्रारम्भ से ही बहुत स्पष्ट और निर्मल थी।

(भिक्षु दृष्टान्त १४७)

तीन साधिवियों के नाम इस प्रकार हैं

कुशालाजी, अजबूजी और मट्टूजी। ये तेरापन की आदि साधिवियाँ हुई। व्याचार्य ने शासन विज्ञान शास्त्र २ वी० २, ३ में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार है...

इकनीमा रे आसरी, तीन जणों तिहवार।

एक साथ मल आदर्या, पहिला कियो करार ॥

त्रिरह पढ़े जो एक नी, तो दोयाँ ने देख।

रहियो नहीं करवी तदा, सलेखणा सुविमेश ॥

१६ म० १८३२ मृगसर वदि ७ को स्वामीजी ने आने शिष्य भारीमालजी को युवाचार्य पद दिया। साधु समाज के लिए दूरदर्शिता पूर्वक नया विज्ञान बनाया जिसकी मुख्य धाराएं निम्नोक्त हैं

१. सभी साधु-साधिवियों को एक व्याचार्य (भारीमल) की आज्ञा में चलना।

२. जेवनाम गिराव गया चातुर्मास आचार्य के आदेश से करना ।

३. आचार्य अपना गिराव गिराव न करना ।

४. दीक्षा आचार्य के नाम से देना ।

५. नव गुरुओं का शान करना कर दीक्षा देना ।

६. आचार्य का मरना प्रकार से पावन करना ।

७. कोई साधु दीक्षा का सेवन करे तो गम्भीर उसे कहना एवं प्रायश्चित्त देना ।

८. थड़ा आचार्य तथा कल का कोई भोज समझ में न आये तो प्रायश्चित्त

तथा बुद्धिमान साधु से पूछकर निर्णय करना ।

९. कोई साधु गुरु से असंग हो जाए तो उसे साधु मन समझना, चार तीनों में नहीं गिनना ।

१०. साधु साधियों की परंपरा उलटनी (आमोचनात्मक) बाध नकरना ।

११. आचार्य जिसे (गुरु भाई अथवा शिष्य) अपना उत्तराधिकारी बने, उसे महर्षि स्वीकार करना । इत्यादिक ।

सामूहिक संस्करण सं० १८१२ सं० १

उपन तेरावय सविधान के समय राय से ग्यारह साधुओं के होने का प्रमाण मिलता है । मर्यादा पत्र युवाचार्य भारीमाल जी के नाम से लिखा गया था । स्वामी जी स्वयं विद्वान् थे ही । मुनि श्री टोकरजी के हस्ताक्षर किसी भी लेखाव में नहीं मिलते । इसका यही अनुमान लगता है कि उन्हें हस्ताक्षर करना न आता हो ।

लेखाव में हस्ताक्षर करने वाले ८ साधु निम्न प्रकार हैं

१. मुनि श्री विरपालजी (१)

२. " बीरभाजजी (४)

३. " हरनाथजी (६)

४. " गुरु रामजी (६)

५. " तिलोत्तमजी (१२)

६. " बन्धुभाजजी (१५)

७. मर्यादाजी (१०)

८. " अण्णजी (१६)

शिष्यमोत्री (८) अमरोजी (११) मोत्रीरामजी (१३) और पत्रजी (१७) ।

उपन अवधि से पहले गणवाहुर तथा मुनि सिखरामजी (१४) दिवंगत हो गये थे । ऐसा अनुमान से निष्कर्ष निकलता है ।

लेखाव में साधियों के हस्ताक्षर नहीं हैं पर उस समय कम मरना १६ में

१. आचार्य से दीक्षा-पर्याय में जो साधु बड़े होने हैं वे गुरु भाई और जो छोटे होने हैं वे शिष्य कहलाते हैं ।

की कुछ माध्विया विद्यमान थीं।

स्वामीजी आचरणकानुसार समय-समय पर अनेक लेखपत्र बनाते गए उनका अन्तिम लेखपत्र (मर्यादा पत्र) स० १८५८ माघ शुक्ला ७ शनिवार का है।

जयधर्म ने स्वामीजी के हाथ से लिखे गये मूल लेखपत्र की जोड़ ली। उसमें उस दिन (माघ शुक्ला ७ को) हस्ताक्षर करने वाले ११ साधुओं के नाम लिखे हैं पर बाद में हस्ताक्षर करने वालों के नहीं।<sup>१</sup> सम्भवतः मुनिहेमराजजी और रामजी कुछ समय परवान् पहुँचे और उन्होंने उस लेखपत्र पर हस्ताक्षर किये जिसमें मूल लेखपत्र में हस्ताक्षर करने वाले साधुओं की संख्या १३ हो गई।

मुनि राधेश्वरजी ने मूल लेखपत्र की प्रतिनिधि की। उसमें हस्ताक्षर करने वालों के १३ तो मूल लेखपत्र के तथा ६ नाम और हैं। लगता है कि स्वामीजी के स्वर्णशक्त के पश्चात् चानुर्गम के बाद छह साधुओं के नाम उन्हें पूछकर लिख दिये गये हैं। छह साधुओं में मुनि जीवोत्री (४४) सिरियारी चातुर्गम में स्वामीजी के साथ थे। पाँच साधुओं का भग्न चानुर्गम था। दो साधुओं के न मिलने पर उनका स्थान खाली छोड़ दिया गया है।<sup>२</sup>

#### मूलपत्र

#### प्रतिनिधि

१. मुखरामजी	१ मुनि श्री मुखरामजी (६)
२. अन्नैरामजी	२. " अन्नैरामजी (१०)
३.	३. " सामजी (२१)
४. खेतमीजी	४. " खेतमीजी (२२)
५. हेमजी	५. " रामजी (२३)
६. नानजी	६. " नानजी (२६)
७. रामजी	७. " वैगीदासजी (२६)
८. मुखजी	८. " मुखजी (३५)
९.	९. " हेमराजजी (३६)
१०. उदैरामजी	१०. " उदैरामजी (३७)
११. खुशालजी	११. " कुशालजी (३८)
१२. थोटीजी	१२. " ओटीजी (३९)

१. केवल मत स्वामी पास न हुआ, लिख केना अक्षर कीया नाही।

लिख स्पू केयका रा नाम न घाल्या, त्या पछे लिह्या ते नहीं दण माही हो ॥

मिन्न कर ना अक्षर देखी, जोड रची मुखवार।

उपणीती खवई मास वैशाखे, शुक्ल चोथ शनिवार हो ॥

(स० १८५९ लेखपत्र की जोड़ दा० ४ (मूल० १७) पृ० १८, २०)

२. माधुजी (४०), ताराचन्द्रजी (४२)।

१३.	१३. "
१४. रायचन्दजी	१४. " रायचन्दजी (४१)
१५.	१५. "
१६. झुगरमीज	१६. " झुगरमीजी (४३)
१७. भगजी	१७. " जीवोजी (४४)
१८.	१८. " जीवोजी (४६)
१९.	१९. " भगजी (४७)
२०.	२०. " भागचन्दजी (४८)
२१.	२१. " भोजजी (४९)

लेखन में साधियों के हस्ताक्षर नहीं हैं पर उस समय २७ के आसपास साधियाँ थीं।

दोनों लेखनों में स्थान उल्लेख नहीं मिलता पर प्रथम सं० १८३२ (अस्ति-गन लेखन ७) के लेखन में स्वामीजी ने बीरमाणजी द्वारा गण के अवगुणवाद रण नहीं गई बागों का संकलन किया है। उस लेखन की ग्यारहवीं पंक्ति में लिखा है—'मैं 'बीडोरा' में निश्चित में मत्तो धाल्यो से सरमा सरमी पाह्यो छै।'

इसमें प्रमाणित होता है कि सं० १८३२ मृगमर यदि ७ के दिन मुवाचारी निगुनि का लेखन 'बीडोरा' ग्राम में लिखा गया था।

कश्चिन् पामी में मुवाचार्य पद देने का उल्लेख मिलता है पर उपर्युक्त उल्लेख तो बीडोरा ही कथार्य लगता है।

सं० १८५६ में स्वामीजी ने पामी धानुर्मग किया। उसके बाद उनका विहार ग्राम बागोदर की पहाड़ के मध्यवर्ती क्षेत्रों में हुआ था। पर वह निर्णीत नहीं किया जा सकता है कि सं० १८५६ का अन्तिम मर्चाश पत्र कहां लिखा गया है।

७०. कोई व्यक्ति किसी साधु-साध्वी से शोध देने तो उसे क्या करना चाहिए, हम मदर्भ में साधारण विशु निश्चये हैं—

गुरु सेवा में मुदमाई मांही, शोध देय तो देनो बनाई।  
 स्वागु दिन करनो नही टाचो, निग रो बाइयो गुरुभ निहायो।  
 मना दिना रा शोध बनाई, ते तो मानरा में हिम आवै।  
 साधु श्रुत तो केशयो जानै, छद्मस्थ प्रवीण न आनै।  
 हेन मर्दि मो शोधन काजै, हेन दुष्ट बहयो नहि साजै।  
 निग रो हिम आवै वरनीन, निग ने जान सेनो विरौन॥

(माधवाचार की चौ० दा० १५ गा० ३, ८, ९)

३१. गुरु का स्नान स्वामीजी के नाम में आकर पूछने लगा—

क्या कपड़े आच्छरण का अध्ययन किया है?

स्नान की ने कहा—मैं व आच्छरण नहीं बड़ो।

ब्राह्मण—व्याकरण पढ़े बिना तो सिद्धान्तों का अर्थ हो ही नहीं सकता ।

स्वामीजी—आप तो व्याकरण पढ़े हुए हैं ?

ब्राह्मण—हां, मैं व्याकरण पढ़ा हुआ हूँ ।

स्वामीजी—क्या आप शास्त्रों का अर्थ कर सकते हैं ?

ब्राह्मण—हां, मैं उसके लिए समर्थ हूँ ।

स्वामीजी—‘कयरे मग्गे अक्खाया’ का अर्थ बतलाइये ?

यह पद्य सुनते ही पंडितजी की मति चकरा गई और जोश में गढ़न अर्थ करते हुए बोले—कयरे-कंर, मग्गे-भुंग, अक्खाया-आखा, टुकड़े किये बिना न खाना ।

स्वामीजी—आगमों में ऐसा अर्थ तो कहीं नहीं आया ।

ब्राह्मण—(सकुवाता हुआ) तो फिर इसका क्या अर्थ होगा ?

स्वामीजी—कयरे-किन्ने, मग्गे-मार्ग, अक्खाया-अगवान् में बतलाये हैं ।

पंडितजी का अहं चूर-चूर हो गया और वे चुपचाप रवाना हो गये ।

(भिक्षु दृष्टान्त २१८)

७२. काकरला गांव में साधु गोचरी गए । वहां पर एक जाटिणी के घर पर ‘घोवन’ का प्रामुक पानी था, पर वह देना नहीं चाहती थी । उसका कहना था कि जो व्यक्ति जैसा देता है, वैसा ही आगे पाता है । अब यदि मैं आपको घोवन दूंगी तो मुझे भी आगे यही मिलेगा किन्तु मेरे में ऐसा घोवन पीया नहीं जायेगा ।

संतों ने वापस आकर सारी बात स्वामीजी से कही तो वे बोले—‘बसों मैं चलकर समझाता हूँ ।’ स्वामीजी ने वहां आकर जाटिणी को प्रामुक पानी देने के लिए कहा तो उसने अपनी वही बात दुहराई ।

स्वामीजी ने कहा—तुम अपनी गाय को क्या खिलाती हो ?

जाटिणी—घास-फूस आदि ।

स्वामीजी—तो क्या गाय तुम्हें वापस घास-फूस ही देती है ?

जाटिणी—नहीं वह तो दूध देती है ।

स्वामीजी—तो तुम फिर यह कैसे कहती हो कि जैसा देता है वैसा ही पाता है ? देखो बहिन ! जिस प्रकार गाय घास के बदले में दूध देती है उसी तरह साधु को घोवन देने से महान् लाभ होता है ।

जाटिणी के दिमाग में यह बात झट से बैठ गई और वह प्रामुक पानी देने के लिए तैयार हो गई । स्वामीजी उसे लेकर साधुओं सहित स्थान पर आ गए ।

(भिक्षु दृष्टान्त १४)

७३ किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—‘संसार में दत्तने सम्प्रदाय हैं, उनमें साधु कौन और असाधु कौन है ?’ स्वामीजी ने कहा—‘किसी अग्ने भ्रादमी ने वैद्य से पूछा—इस शहर में नंगे कितने और वस्त्र सहित कितने ?’ वैद्य बोला—‘इनकी सङ्ख्या करना मेरा काम नहीं है । मैं औषध के द्वारा तुम्हारी आँखें ठीक कर देना

है। फिर तुम स्वयं देख लेना कि नये सिपों और गहने सिपों ?'

इसी तरह मैं साधु-असाधु के गणन करता देता हूँ। फिर तुम ही परीक्षा कर लेना कि साधुकी असाधु की है क्योंकि बाह्य सिपों के लिए नहीं मेरे सिपु गढ़ा हो जाता है।

(भिरगु दृष्टान्त ६६)

एक बार उपर्युक्त प्रश्न एक अन्य भाई ने स्वामीजी से किया तब स्वामीजी ने उसे दूधरे उदाहरण में समझाया। स्वामीजी ने कहा—'जिम प्रकार चाये उधार लेकर वापस दे देना है वह साधुवार और लेकर वापस नहीं देना वह दिवानिया कहलाता है। इस आधार में प्रत्येक व्यक्ति की जाँच की जा सकती है। टीक इसी तरह जो पाँच महाव्रतों को ग्रहण कर उनका सम्पूर्ण पालन करता है वह साधु और नहीं करता वह असाधु होता है। इस लक्षण से तुम स्वयं साधु-असाधु की परीक्षा कर सकते हो।'

(भिरगु दृष्टान्त १००)

७४ पाली में पीताह निवासी चौपड़ी बोहरा की पूजान थी। पाण्डुरास के बाद स्वामीजी वहाँ बगड़ा लेने के लिए गये। उसने दो चामती (रेजी) बगड़ा देकर स्वामीजी से पूछा—'मैं आपको साधु नहीं मानता और मैंने आपको कपड़ा दिया, उसका मुझे क्या लाभ हुआ ?'

स्वामीजी ने कहा—'किसी ने चाई तो मिथी और समझा जहर तो क्या वह मरेगा या नहीं ?'

तब चौपड़ी बोहे —'वह नहीं मरेगा क्योंकि उनका गुण मारने का नहीं है।' स्वामीजी ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—'जैसे हम साधु हैं, हमको तुमने असाधु समझ कर कपड़ा दिया वह तुम्हारे ज्ञान की कमी है, परन्तु साधुओं को देना तो धर्म ही है।'

(भिरगु दृष्टान्त ६२)

७५ एक बार स्वामीजी पारबिया (मादवाड़ जवगन के पास) पधारे। भिक्षा के समय एक बहन ने कहा—'महाराज ! जब हमारी मैस दूध दे तब आप पधारे तो मैं पात्र-दान का लाभ लू क्योंकि भोग बियाने के बाद एक महीने तक दूध-बही की खाने के ही काम में लिया जाता है लेकिन उसका बिलौना नहीं करते। इसलिए आप उस देवी के समय पधारने की वृत्ति करें।'

स्वामीजी ने मुस्कराते हुए कहा—'बहन ! कब तो तुम्हारी भोग बियाए, कब देवी हो, कब हन समाचार मिले और कब हम आये ? अतः हम दूध बिना बिने ही तुम्हारी भावना समझ लेते।'

(भिरगु दृष्टान्त १५)

७६ बूढ़ी में गवार्दरामजी ओरतवाल स्वामीजी से चर्चा कर रहे थे। विविध

विषयों पर काफी देर तक बातचीत कर लेने के पश्चात् भी जब उन्होंने बात का जन समाप्त नहीं किया तो स्वामीजी ने कहा—‘गाय-भैस के आगे जब चारा अधिक डाल दिया जाता है तो वह उसे अधिक चिमेरती है जन आज जितनी बात की है पहले उसे हृदयगम कर सो, आगे की बात फिर करना।’

इस बात पर सवाईरामजी कुछ अप्रमन्न होकर फिर बोले—‘आपने तो मुझे पशु बना दिया तब फिर और बात क्या करनी है?’ स्वामीजी ने उनकी अप्रसन्नता का उन्मूलन करते हुए कहा—‘इस प्रकार उपमा देने माथ में तुम पशु बन गए तो मेरा ज्ञान भी चारा बन गया?’

ऐसा कहने से वे प्रसन्न हो गए। बाद में उन्होंने स्वामीजी को मुक्त रूप में स्वीकार कर लिया।

(भिक्षु दुष्टान्त १)

७७. स्वामीजी के साथ चर्चा करने समय एक भाई अट-सट बोला करता था। इस पर किमी ने स्वामीजी से कहा—‘यह दतता उठता-मीछा बोलता है तो फिर आप इससे चर्चा क्यों करते हैं?’ स्वामीजी ने कहा—‘बालक जब तक नहीं समझता तब तक अपने पिता की मूर्छे भी पकड़ लेता है। पपड़ी पर भी हाथ मारता है, किन्तु कुछ समझ आने पर वही यातक पिता की सेवा करता है। ठीक इसी तरह हमें अभी साधुओं की पूरी पहचान नहीं है जन: उलटा-सीधा बोलता है पर जब समझ आ जाएगी तब वह भक्ति करने लगेगा—’

(भिक्षु दुष्टान्त २८७)

७८. स्वामीजी के साथ चर्चा करते-करते एक व्यक्ति के शब्दों के मुख्य-मुख्य शील समझ में आ गये। फिर भी वह बोला—‘आप कहते हैं वह बात तो ठीक है परन्तु कुछ बोल पूरी तरह समझ में नहीं आ रहे हैं।’ स्वामीजी ने उदाहरण द्वारा समझाते हुए कहा, दस सेर चावलों का चरू (वर्तन) चूल्हे पर पकाने के लिए चढ़ाया गया। कुछ समय बाद हाथ से जांच करने पर ‘ऊपर के चावल सीज गये तो नीचे के चावल भी सीज गये’ ऐसा समझदार व्यक्ति जान लेता है लेकिन मूर्ख ‘ऊपर के चावल तो सीज गये पर नीचे के सीजे या नहीं’ ऐसा सोचकर नीचे हाथ डालता है तो उसका हाथ जल जाता है।’

इसी तरह आदमी खास खास बोल समझ लेने के बाद यह विश्वास कर लेता है कि दूसरे बोल भी सत्य होंगे।

(भिक्षु दुष्टान्त २९८)

७९. एक वंश ने एक व्यक्ति के आश्र की चिकित्सा की। आश्र ठीक होने के बाद वंश ने उसमें बधाई मागी, तब उसने कहा—‘मैं पशु से पूछूँगा, वे कहेगे तुझे दिखाई देने लग गया है तो मैं बधाई दूँगा, नहीं तो नहीं।’

वंश ने कहा—‘तुझे दिखाई देता है या नहीं?’ वह बोला—‘मुझे मने ही

दिखाई दे, पर जब सब कह देंगे कि तुझे दीयता है, तब ही बघाई मिलेगी।' बंध ने सोचा—'इससे बघाई की आशा रखना 'गमन-कुसुम' की तरह है।'

स्वामीजी ने कहा—'किसी के हृदय में श्रद्धा जम गई तब उसे कहा कि तुम गुरुधारणा कर लो।' वह बोला—'दो चार व्यक्तियों को तथा बिछने गुरुजी को पूछूंगा, वे कह देंगे कि तुम्हारे दिन में श्रद्धा जम गई है तब मैं गुरुधारणा करूंगा।'

इस तरह जो व्यक्ति बिना तथ्य की बात करना है तो जान लेना चाहिए कि उसके अगुआ श्रद्धा जमी ही नहीं है।

(भिक्षु दृष्टान्त ८०)

८० एक बार स्वामीजी ने गिरिपारी में धातुमार्ग किया। जोधपुर नरेश विजयसिंहजी नाथडारा (थीनाथजी के दर्शनार्थ) जाने समय बर्षा के कारण बहा ठहरे। उनके मुमही (उमराव) स्वामीजी के दर्शन करने के लिए आये। स्वामीजी से उन्होंने पूछा—'पहले कुकरी (मुर्गी) हुई या अडा, पहले घण (मोटा व भारी हुआ) जिसने गर्म सोहा पीटकर दूसरे रूप में बदला जाता है), हुआ या अहिरण (सोहे वा वह चौकोर टुकड़ा जिस पर सोहार गर्म सोहा रखकर पीटा जाता है।) उससे पहले बाप हुआ या बेटा इत्यादि अनेक प्रश्न।' स्वामीजी ने उनके प्रश्नों का दुःख सहित समाधान किया। वे प्रसन्न होकर बोले—'महाराज ! ये प्रश्न हमने बहुत जगह पूछे, परन्तु इस तरह किसी ने भी जवाब नहीं दिया। आप की बुद्धि तो ऐसी है कि आप किसी राजा के मुमही बनते तो अनेक देशों पर आधिपत्य करते।' स्वामीजी ने कहा—'ऐसा करने वाला कहाँ जाना है ?'

उमराव ने कहा—'जाना तो नरक में पड़ना है।'

स्वामीजी बड़ी निस्पृहता से बोले—

'बुद्धि बिना ही जानिये, जे सेवै जिन-धर्म।

और बुद्धि किम काम की, सो पटिया बाधै बर्म ॥'

बुद्धि बही अगुआ है जो श्रेय की ओर से जाये। जिस बुद्धिमत्ता के कारण आत्मा दुर्गति में जाये वह बुद्धि किम काम की।

स्वामीजी की मार्मिक वाणी की सुनकर वे बहुत गूँस हुए।

(भिक्षु दृष्टान्त ११२)

८१ किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—'बोई साधु रामने में बरक क्या हो, उधर में गहर ही में बोई बैनगाही आ गई हो, उस पर साधु को बिठाकर नाव में साँसे तो उसको क्या हुआ ?' स्वामीजी ने कहा—'गाड़ी के बरने यदि क्या हो और उस पर बिठाकर साया जाय तो ?' उसने शस्त्राकर कहा—'आप बर्ष की बात क्यों करते हो ?' स्वामीजी बोले—'साधु को अहंता की दृष्टि में बर्षी और बर्ष पर चढ़ना समान है अतः साधु के निम्न दोषों ही बर्षीय है।'

(भिक्षु दृष्टान्त ११३)

८२. एक बार स्वामीजी 'पीपाड' में विराज रहे थे। गौचरी के समय जब वे एक मुहल्ले में गये तब एक बहिन ने कहा—'अमुक बहन ने भीखणजी की प्रद्वी स्वीकार की, जिससे वह विधवा हो गई।' स्वामीजी स्मित मुद्रा में बोले—'बहन! तुम तो भीखणजी की निन्दा करती हो फिर इस बाल्यावस्था में विधवा कैसे हो गई?' पाम में खड़ी अन्य बहनो ने स्वामीजी को पहचान कर उममें कहा—'भीखणजी स्वयं ये ही हैं।' यह सुनकर वह इतनी लज्जित हुई कि तत्काल भागकर घर में चूस गई।

(भिक्षु दुष्टान्त ३८)

८३. पीपाड में एक भाई ने स्वामीजी के पास गुरुधारणा की। उसके घर वालों को जब इस खान का पता चला तब उन्होंने उसे बहुत धमकाया, वे बोले—'भीखणजी से जो गुरुधारणा स्वीकार की, वह वापस दे जाओ।' वह स्वामीजी के समीप आकर बोला—'आपने मुझे गुरुधारणा दिलवाई तथा त्याग करवाए वे वापस ले लीजिए, क्योंकि मेरे घरवाले मुझे बहुत परेशान कर रहे हैं।' स्वामीजी ने कहा—'तुम ही बताओ कि दिये हुए 'दाय' क्या वापस लिए जा सकते हैं?'

(भिक्षु दुष्टान्त ११६)

८४. किसी भाई ने स्वामीजी से कहा—'भगवान् ने (ईश्वर ने) हरिपाली तो खाने के लिए ही बनाई है अतः उसका परिस्थान करने की आवश्यकता नहीं है।' स्वामीजी बोले—'तब तो तुम्हारे कथनानुसार भगवान् ने तुम्हें ही नाहर का भय बनाया है। अब वह खाने के लिए आता है तब तू भाग क्यों जाता है?' वह बोला—'मुझे तो तकलीफ होती है।' स्वामीजी ने उसे समझाते हुए कहा—'इसी तरह सभी जीवों को जानना चाहिए। उनका बच करने से उन्हें भी महान दुःख होता है।'

(भिक्षु दुष्टान्त २३६)

८५. किसी ने स्वामीजी से कहा—'आप और बाईंग सम्प्रदाय के साथ एक हो जाइए।' स्वामीजी ने पूछा—'आप महाजन, कुम्हार, जाट, भूजर आदि सब एक हो सकते हैं या नहीं?' वह बोला—'हम तो एक नहीं हो सकते क्योंकि हमारी और उनकी जाति भी अलग है।' स्वामीजी ने कहा—'हमारे और इनमें प्रद्वी का भौतिक अन्तर है वह भिन्न से ही हम एक हो सकते हैं।'

(भिक्षु दुष्टान्त २०६)

१. रोग विशेष को ठीक करने के लिए शरीर के अवयव विशेष को मर्मे की हुई सोह बनाया में दाया जाता है, उसे 'शाम' कहते हैं।



८७. केसवा के ठाकुर मोक्षमहित्री ने स्वामीजी से पूछा—‘आप जो आगमिक तथा भूतकाल की अनेक बातें बताते हैं, उनको किसने देखा है?’ स्वामीजी ने कहा—‘आपके पिता, दादा, परदादा आदि के नाम तथा उनकी पुरानी बातें जानते हैं, वे किसने देखे हैं?’ ठाकुर साहब बोले—‘उनको तो हम भाटों की पुस्तकों से जानते हैं।’ स्वामीजी बोले—‘भाटों के झूठ बोलने का त्याग नहीं होता फिर भी उनके द्वारा लिखी हुई बातों को मन्थी मानते हैं तो जानी पुष्टी के द्वारा कहे गये आगम मिथ्या कैसे हो सकने हैं? हम उन शास्त्रों के आधार से ही कहते हैं।’

युक्ति सगत उत्तर सुनकर ठाकुर बहुत प्रसन्न हुए।

(भिक्षु दृष्टान्त ८८)

८८. किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से कहा—‘ससार में समझने वाले हलुकर्मों प्राणी बहुत हैं, यदि आप प्रवास करें तो वे समझ सकते हैं।’ स्वामीजी ने कहा—‘मकराने के पत्थर में मूर्ति होने का गुण तो है परन्तु इतने शिष्य नहीं कि सभी मकराने के पत्थरों की मूर्तियाँ बना सकें। इसी प्रकार समझने वाले तो अनेक हैं, परन्तु इतने समझने वाले नहीं कि सभी प्राणियों की समझा सकें।’

(भिक्षु दृष्टान्त १५८)

८९. किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—‘आप जिन्हें साधु नहीं मानते उन्हें साधु नाम से कैसे पुकारते हैं?’ अमुक उस सम्प्रदाय का माधु, अमुक उस सम्प्रदाय का माधु।’ स्वामीजी ने कहा—‘जब मृत्यु-भोज आदि के अवसर पर गाव में नीता दिखाते हैं कि अमुक घर वालों को ‘सेमामाह’ के यहाँ भोजन करने का नीता है। अमुक घर वालों को ‘सेमामाह’ के यहाँ भोजन का नीता है। उन्होंने पहले दिखावा निकाल दिया हो तो भी वे साह के नाम से पुकारे जाते हैं, इस प्रकार जो साधु व्रत नहीं पालते पर साधु का नाम धराते हैं, तो वे द्रव्य निशेष की अपेक्षा साधु ही कहलाते हैं।’

(भिक्षु दृष्टान्त ९८)

९०. स० १८५६ में स्वामीजी १४ माघ एव १६ साध्वियों के सहित देवगढ़ (मेरठ) विराज रहे थे। उस समय स्थानकवासी सम्प्रदाय के तीन माधु आये और बोले—‘भो ब्रह्मजी! इनको तो बड़ा नीत साधुओं को भी पूरा आहार नहीं

१. स्वामीजी अनुमानन बिहार के धन के अनुसार जेट मुनि में देवगढ़ पधारे थे, अतः यहाँ भावनादि क्रम से स० १८३८ और चैत्राश्विन से विजय सप्त १८५६ होना चाहिए, क्योंकि स्वामीजी स० १८५६ के पाली चतुर्मास के पञ्चम मासवाक में ही बिहार चरते रहे, मेरठ नहीं पधारे। ऐसा वेणो मुनि का ‘विजु-चरित’ दा० ५ पा० ४ में ११ म उल्लेख मिलता है।

मिलता। आप इतने साधुओं को कैसे मिलता है ?' स्वामीजी मुस्कराते हुए बोले— 'जिस द्वारका नगरी में हजारों साधुओं को भोजन पानी मिलता था वहाँ 'वृद्ध' मुनि कोरे ही रहते थे। यह उनके अन्तराय कर्म का उदय था।'

स्वामीजी ने दार्शनिक दृष्टि से भिक्षा न भिन्नने के वास्तविक कारण को बताया दिया। यह उनके बुद्धि कोशल की विशेषता थी।

(भिक्षु दृष्टान्त ११०)

६१. एक बार स्वामीजी ने श्रावक लोगों को पात्रदान का लाभ लेने के लिए दृष्टान्त द्वारा प्रतिबोध दिया। उन्होंने कहा— 'किसी गाव में साधुओं ने चानुमान किया। एक दिन के अन्तर से भी यदि एक गृहस्थ के घर साधु भिक्षा के लिए जाये और वह पात्र-पाच धी साधुओं को बहराये तो चानुमान में पन्द्रह सैर अन्दाज हुआ जो कि चार-पाच रुपये का हो सकता है। दान देने समय प्रबल भावना हो तो कोई तीर्थंकर गोत्र का उपासक और कोई अनेक भावों का विच्छेद कर सकता है। गृहस्थ के मृत्यु-भोज, विवाह आदि में जहाँ अनेक रुपयों का खर्च होता है वहाँ पाच रुपये तो नगण्य मात्र हैं।' स्वामीजी ने श्रावकों को पात्र-दान का लाभ लेने के लिए यह शिक्षा दी।

(भिक्षु दृष्टान्त २४४)

६२. सूरी के निवासी समान आकृति वाले 'सामजी' 'रामजी' दो धौलिक भाई थे। सामजी ने वि० सम्वत् १८३८ में कंसवा गाव में स्वामीजी के पास दीक्षा ली। कुछ दिनों बाद नाथद्वार में खेउसीजी ने सयम व्रत स्वीकार किया। थोड़े दिन बाद रामजी ने दीक्षा ग्रहण की। जिससे नेतसी स्वामी से सामजी स्वामी तो बड़े और रामजी स्वामी छोटे हुए। कालान्तर में स्वामीजी ने सामजी रामजी का सिपाई बनाया। वे अग्रज विहार करने लगे। जब वे स्वामीजी के दर्शन करने के लिए आते तब नेतसीजी स्वामी ममान चेहरा होने से सामजी स्वामी के बड़े रामजी स्वामी को वन्दना करने लगते। रामजी स्वामी कहते— 'मैं तो रामजी हूँ, सामजी तो मैं हूँ, आप उन्हें वन्दना करिये।' इस तरह कई बार यों पड़ जाता तब स्वामीजी ने अपनी प्रखर बुद्धि से कहा— 'रामजी ! तुम पहले ही खेउसीजी की वन्दना कर लिया करो, जिससे खेउसीजी जान लेगा कि वाकी रहे वे सामजी स्वामी हैं।'।

(भिक्षु दृष्टान्त १६९)

६३. एक भाई ने कहा— 'धीधनजी आप इतनी 'जोड़े' (मादृश्य-रचना) क्यों करने हैं ?' स्वामीजी बोले— 'एक मादृकार के दो बेटे हैं उनमें एक तो धन मंगलित ओढ़ना इच्छा करता है, एक तो श्रुता-वरवाद करता है। अब तुम ही बताओ कि ममार में धन-मंगलित ओढ़ने वाले को भोग अच्छा बनाने हैं या तोड़ने वाले को ?' वह बोला— 'मर ओढ़ने वाले को ही अच्छा करने पर तोड़ने वाले को

नहीं।'

स्वामीजी ने कहा—'इसी प्रकार हम भगवान् के सचनों का प्रसार करने के लिए सरल भाषा में ओढ़ें करते हैं, इसमें क्या आपत्ति है ?'

उत्तर सुनकर उपस्थित व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुए और उसकी गिकायत समाप्त हो गई।

(भिक्षु दृष्टान्त २४३)

१४. पीपाड़ में कई भाइयों ने मनमूढा करते हुए पूछा—'भीषणजी ! लोग कहते हैं—'सात-सात तो देस्य, अने एक-एक गिणस्य' इसका क्या अर्थ हुआ ?' स्वामीजी बोले—'इसका तो बिल्कुल सीधा अर्थ है—'सात सुपारी तो देते हैं और एक साता गिनते हैं।' लोग वास्तविक अर्थ सुनकर बहुत आश्चर्यान्वित हुए।'

(भिक्षु दृष्टान्त १४)

१५. सौजन्य में फतेहचन्दजी मोटावत्त ने स्वामीजी से कहा—'आप मिथ (एक कार्य में पाप-पुण्य दोनों मानते हैं) की श्रद्धा वालों का खडन करते हैं पर पुण्य की श्रद्धा वालों का खडन क्यों नहीं करते ?' स्वामीजी ने उदाहरण देने हुए कहा—'एक जाट ने खेती की। फसल अच्छी हुई। मोटे-मोटे दानेदार ज्वार को देखकर एक बार बार चौर उस खेत में घुस गए। जल्दी-जल्दी ज्वार के भुट्टों को तोड़कर गट्टर बाघने शुरु किये। जाट ने देखा तो अपनी बुद्धि से चिंतन कर उनके पास आया और मोठे स्वर से बोला—'भाई साहब ! आपकी क्या जाति है ?' एक ने कहा—'मैं राजपूत हूँ, दूसरे ने साठूकार (बनिया), तीसरे ने ब्राह्मण तथा चौथे ने अपने को जाट बताया।'

तब जाट ने कुछ सोचकर हसते हुए राजपूत से कहा—'आप तो हमारे मालिक हैं, जो चाहें ले सकते हैं। बनिया बोहरा है, इससे हम सौदा लेते हैं इन-लिए इसने लिया वह भी ठीक है। ब्राह्मण देवता हमारे गुरु हैं, अतः कोई बात नहीं, इसे मैं दक्षिणा ही मान लूँगा पर यह जाट किमलिए लेता है ?' तब मेरी मा के पास, उसने तुझे उलाहना दिलाऊँगा। तीनों चुपचाप देखते रहे, किसान ने उसकी बाह पकड़कर खेत के उस किनारे पर ले आकर उसकी पगड़ी लेकर एक पेड़ ने उसे कसकर बांध दिया।

जाट लौटकर आया और बोला—'मेरी मा ने कहा है—'राजपूत तो हमारा स्वामी है, बनिया सौदा देता है इसलिए इन दोनों का लेना तो अभ्यास नहीं है पर ब्राह्मण तो दिया हुआ ही ले सकता है, बिना दिया हुआ कैसे ले ?' मेरी मा के पास तुझे भी उलाहना दिलाऊँगा। विचारा ब्राह्मण दोनों की सहायता के लिए आर्ध्र फाड़ना रहा पर वे दोनों चुप होकर समाशा देखने रहे। ब्राह्मण को भी उसी

प्रकार एक किनारे पर ले जाकर पेड़ से बंधकर बांध दिया। बागम आकर बोला— 'टाकुर माहव ! मेरी मा कहती है आरका सेना तो न्याय है पर इस साहूकार ने हमें बच मोःः दिया और कब यह बोहरा बना अतः यह जिस नाम से सेवा ?' हमें भी मेरी मा के पास ले जाकर दंड दिलाऊंगा। साहूकार को भी इसी प्रकार एक पेड़ से मशरूम बांध दिया। अतः हमने अने ही राजपूत की घर ली। टाकुर माहव ! मारिय तो यथा के विण होने हैं न कि चोरी के विण, चोरी आज मुम्हारी भी अरन ठिकान लगाऊंगा, यों कहकर उसे भी बांधकर जाने में ले गया और पुलिस को साकर चोरों को पकड़वा दिये।

इस प्रकार आठ ने बुद्धि में काम लेकर अपने मंत्र की रक्षा कर ली। अगर वह एक गाय उनमें भिन्न जाना तो वे चारों उसे हटाकर अनात्र लेकर चले जाते।

श्यामीश्री ने निष्कर्ष की भाषा में कहा—‘हम मित्र तथा पुण्य की भद्रा का प्रमगः ग्रहा वरके धीर-धीरे एक-एक दिन के लोगों का समझाने हैं।’

उक्त मुक्ति पूर्व समाधान में जाना जाता है कि स्वामीजी सितने दुःखन समाधान थे ।

(मिश्र कुटुम्ब ११७)

६६ जो व्यक्ति ग्राह की बात नहीं मानता और प्रत्युत झगडा करने लगता है उस पर हमारी नज़र— एक मातृकार के घर के सामने नाटकियों ने लम्बा दिग्गन्ध प्रारम्भ किया।' मातृकार ने कहा—'मेरा यही मन करो? क्योंकि मुझसे भी तेरा शब्द बड़े दुःख मुझे पगल नहीं है। बटू-बेटियों के सामने तो हम सब लम्बा दिग्गन्ध प्रारम्भ है, जिसे नष्ट नहीं माने और उन्होंने यही मेरा दुःख कर दिया, दलदल की भीड़ जम गई। मातृकार ने बहुत मना दिया, पर उन्होंने कुछ नहीं मानी। उस मातृकार ने एक नगरा मंगाया और मजान की छत पर उस नगरा मंगाया। मनुष्य और म नगरा मिटवाया, छमाछम नगरा बरने मकर, इस छोटी-सी म उनका गाना-बजाना बंद हो गया। मोक्ष विन्दने मग गए। मातृकार नाटक करने की उम्मीद करने लगी।'

मानवी जीव के जीवन का माध्यम है कि व्यापक की बात भी कोई व्यक्ति नहीं जान उन्नत शिक्षा का ना सुन्दर पुस्तक की उस समय क्या मायुर्वे तो जाना क्या कहना चाहिए ।

(विष्णु इन्द्राणि २५१)

[illegible]

पूर्वक आहार बहराया ।

सम्भवत स्वामीजी ने ही यह कत्ता भाइयों को सिखाई हो ।

(भिक्षु दृष्टान्त ३३)

१८. 'मादा' गाव में स्वामीजी रात्रि के समय व्याख्यान दे रहे थे, सामने काफी सट्टा में लोग बैठे हुए थे । पास में बैठे हुए 'आसोजी' नाम के भाई नींद बहुत लेते । स्वामीजी ने उन्हें टोकते हुए कहा—'आसोजी ! नींद ले रहे हो ?' आसोजी बोले—'नहीं महाराज !' थोड़ी देर पश्चात् वे फिर नींद लेने लगे तो स्वामीजी ने फिर टोका । उन्होंने फिर वही नक्का हुआ उत्तर देने हुए कहा—'नहीं महाराज !'

यों जितनी बार उन्हें टोका गया उन्होंने हर बार यही उत्तर दिया । आखिर स्वामीजी ने इसी सहजे में पूछा—'आमोजी ! जीवित तो हो ?' उन्होंने घट से कहा—'नहीं महाराज !' उपस्थित लोग उनका उत्तर सुनकर हस पड़े तब वे कहीं जाकर सावधान हुए ।

(भिक्षु दृष्टान्त ४६)

१९. स्वामीजी ने किसी से पूछा—'एक बालक पत्थर लेकर चोटिया मार रहा है । कोई उसके हाथ का पत्थर छीनकर उसको हिमा करने से रोक दे तो क्या होगा ?' स्वामीजी ने पूछा—'उसके हाथ का पत्थर छीनने वाले के हाथ में क्या आया ?' वह बोला—'पत्थर' । स्वामीजी ने कहा—'अब तुम्हीं विचार कर लो ।'

(भिक्षु दृष्टान्त १२४)

धर्म तो हृदय परिपक्वता में होता है, किन्तु पक्करवस्ती में नहीं । स्वामीजी कहते हैं—

मूला गाजर ने काचो पाणी, कोई चोरी दावे ले खोसी रे ।

जे कोई वस्तु (वस्तु) छोटाब बिना मन, इन विष धर्म न होसी रे ॥

भांगी मा कोई भोगज रुचै, बने पाड़े अतरायो रे ।

महामोहणी कर्मज बाघै, दसाभुत खद्य माहि बतायो रे ॥

(विरत इविरत री चौपाईं दा० १ गा० ३३, ३४)

१००. किमी ने स्वामीजी से कहा—'साधु के हाथ से मुई टूट जाए तो एक सेले का दण्ड आता है ।' स्वामीजी बोले—'तब तो तुम्हारे कदनानुसार बाजोट टूट जाये तो सयारा (अन्धन) करना होगा ।' प्रायश्चित्त तो आगम विधि के अनुसार ही दिया जाता है । लेकिन स्वेच्छा पूर्वक अन्दाज से नहीं ।

(भिक्षु दृष्टान्त २८२)

१०१. भिक्षु स्वामी की अनुमति बिना ही साध्वियों ने 'घमली' नाम के पाव में चातुर्मास कर दिया । संयोग ऐसा बना कि साध्वियों को बहा आहार-पानी आदि की अनेक बठिनाइयों का सामना करना पड़ा ।

किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—'बिना आज्ञा चानुमार्ग करने वाली साधियों को आप क्या प्रायश्चित्त देंगे ?' तब स्वामीजी ने कहा—'बैस तो उन्हें बहुत-सा दण्ड उम माव ने ही दे दिया है, फिर मितने पर मुझे भी कुछ देना है।'  
(भिक्षु दृष्टान्त १७६)

१०२ पाली में एक भाई ने विरोध भरे शब्दों में कहा—'भीषणजी तुम्हारे धावक ऐसे दुष्ट हैं कि किसी के गले में पड़ी हुई फामी भी नहीं निकालते।' स्वामीजी ने कहा—'किसी या अन्विगल नाम मन लो, सामूहिक रूप में बान्धन करो।' तब वह कुछ नजदीक आकर बोला—'सामूहिक बात करिये।' स्वामीजी बोले—'एक व्यक्ति ने एक वृक्ष से गला फमा लिया : उस मार्ग से जाते हुए दो मनुष्यों ने उसे सटकने हुए देखा। दोनों में से गलफमा निकालने वाला कंसा और नहीं निकालने वाला कैसा ?' वह बोला—'निकालने वाला उत्तम पुरुष और दयानु एव मोक्ष में जाने वाला। नहीं निकालने वाला महापापी, महादुष्ट एव नरकगामी।' स्वामीजी ने पूछा 'कदाचित् उस समय उस रास्ते से तुम और तुम्हारे गुरु जा रहे हो तब उग पापी को कौन निकालेगा ?' वह बोला—'मैं निकालूंगा।' स्वामीजी—'तुम्हारे गुरुजी निजानेंगे या नहीं ?' वह व्यक्ति—'नहीं, क्योंकि वे तो साधु हैं।' स्वामीजी ने कहा—'तुम्हारे बधनानुसार तुम तो स्वर्ग एव मोक्ष गामी और तुम्हारे गुरुजी नरकगामी ठहरे।'।

वह व्यक्ति निरन्तर होकर चला गया।

(भिक्षु दृष्टान्त १२)

१०३ गुरु स छात्रजी आभिषा स्वामीजी के पास में आकर 'आबूमड़ तीर्थ' नामक मीनिका का एक पक्ष गाने लगे 'आबूमड़ तीर्थ नहीं जुटारयो, निष बहूष बमारो हारयो।' स्वामीजी ने पूछा—'तुमने अभी आबूमड़ की यात्रा की या नहीं ?' छात्रजी—'मैंने तो अभी तक नहीं की।' स्वामीजी—'तब तो आज तक तुम्हारा जीवन तो निष्फल ही बना गया।' छात्रजी बोले—'स्वामीजी ! जाने मैं कहीं कब से गये मैं ही जान ती।'।

(भिक्षु दृष्टान्त २३८)

१०४ स्वामीजी के समय स्वयंस्वामी भग्यदाय के अनेक टोने थे। उनमें एक एक विविध बधन या हि एक-दुमरे को माधु नहीं मालने थे। एक टोने का दुबले टोने में बधन का नहीं रोसा ही माली थी। इसी बात को लेकर किसी ने एक टोने में कहा—'अमुक-अमुक टोने काटे परम्पर एक-दुमरे को मृदा करने है।'।

स्वामीजी ने बधन लने में कहा—'बधन की दृष्टि में तो दोनों ही बधन समान हैं।'।

(भिक्षु दृष्टान्त २६)

१०५ स्वामीजी एक बार पादू के उपाश्रय में ठहरे हुए थे। एक दिन जब वे गोचरी जाने की तैयारी करने लगे तब सामीदासजी (गामजी) के टोले के दो साधु—'भीखणजी कहा है ? भीखणजी कहा है ?' पूछने हुए वहाँ आये। क्रिती पाव से विहार करते हुए आने से उनके कंधों पर बोझ सदा हुआ था।

स्वामीजी ने कहा—मेरा ही नाम भीखण है।

आगन्तुक साधु बोले—आपका नाम बहुत सुना था, अब देखने के लिए आये हैं।

स्वामीजी—देखिए और कुछ कहने की इच्छा हो तो कहिये।

आगन्तुक—भीखणजी ! आपने सब कार्य तो अच्छे किये हैं पर एक काम अच्छा नहीं किया कि हम बाईस टोलों के साधुओं को असाधु कहते हो।

स्वामीजी—आप किस टोले के साधु हैं ?

आगन्तुक—सामीदासजी के।

स्वामीजी—आपके टोले में एक ऐसी लिखित भर्षादा है कि अग्य इक्कीस टोलों के साधु आपके टोले में आये तो नई दीक्षा देकर शामिल करना। क्या आपको इसकी जानकारी है ?

आगन्तुक—हाँ जानते हैं।

स्वामीजी—इस हिमाव से इक्कीस टोलों के साधुओं को तो आपने ही असाधु मान लिया। अग्यमा नई दीक्षा देने की आवश्यकता क्यों होती ? अब केवल आपका एक टोला रहा। उसके लिए आप इस प्रकार समझिए—'भगवान् ने कहा है कि बेल का प्रायश्चित्त आता हो उसे यदि तेला दिया जाय तो देने वाले को तेले का प्रायश्चित्त आता है। अब इस हिमाव से आप यदि अग्य टोले वाले को साधु मानते हैं और उन्हें नई दीक्षा देते हैं तो आपके हिसाब से ही आप नई दीक्षा के भागी बनते हैं। अब आप ही अपनी लिखित भर्षादा के अनुसार विचार कर लीजिए कि आप साधु सिद्ध होने हैं या असाधु ?'

आगन्तुक दोनों साधुओं ने कहा—'भीखणजी ! आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है। आपने हमारी लिखित भर्षादा से ही हमें असाधु ठहरा दिया।'

(भिक्षु दृष्टान्त १०)

१०६. एक बार दो साधुओं में परस्पर विवाद हो गया। वे स्वामीजी के पास आये। एक ने कहा—'इसने पाव में मे इतनी दूर तक जल की बूँद गिरती गई।' दूसरे ने कहा—'नहीं इसनी दूर तक नहीं गिरी।' तीसरा कोई साथ में था नहीं। दोनों अपनी-अपनी बात पर डटे रहे। विवाद नहीं सुलझा तब आपाये भिक्षु ने कहा—'तुम दोनों ही एक रस्सी लेकर जाओ और उस स्थान को माप जाओ।'

स्वामीजी के इस वचन से वे दोनों बहुत लज्जित हुए और परस्पर समायाचना की।

(भिक्षु दृष्टान्त १६७)

१७ एक बार दो गायुओं ने गम्हार शिवार हो गया। एक ने कहा—'तुम सोनुष हो।' दूसरे ने कहा—'तुम नो तुत हो।' आखिर उम शिवार रोगेकर दोनों स्वामीजी के पास आये। स्वामीजी ने कहा—'तुम दोनों आचार्य की आज्ञा का आगार रख कर शिवार (दूध, दही आदि) खाने का त्याग करो। जो धर्मि पहले आज्ञा मानेगा वह कमजोर समझा जायेगा।' दोनों ने यह बात मान ली। लगभग चार महीने तक शिवार न खाने के वजह से उनमें से एक ने आकर स्वामीजी से आज्ञा मांगी। स्वामीजी ने उसे आज्ञा दी तब दूसरे को भी पूर्व निर्णय के अनुसार आज्ञा हो गई।

स्वामीजी ने मुक्ति से दोनों को समझा दिया।

(बिम्बु दृष्टान्त १५८)

१०८. आचार्य बिम्बु से किमी भाई ने पूछा—'भगवान् महावीर के समय साधु समाज में आचार्य, उपाध्याय, स्वविर, प्रवर्तक, गरी, वगैर तथा गणावच्छेदक ये सात पदवियाँ थीं। अब आपके सभ में ये पदवियाँ किन-किन साधुओं की दी गई हैं ?'

स्वामीजी ने एक वाक्य में ही समाधान करते हुए कहा—'अभी सारी पदवियों का काम मैं ही कर रहा हूँ।'

(धृतिगन)

१०९. किसी ने स्वामीजी पर मिथ्या आरोप लगाते हुए कहा—'गृहस्थाश्रम में भीषणजी अपने भाई से झगड़ हुए तब घर के सब सामान का बटवारा किया गया। एक चाली घाती रही, उसके भी भीषणजी ने ऊखल में डाल कर बराबर दो टुकड़े किये।'

हेमराजजी स्वामी ने स्वामीजी को इस बात की सत्यता के लिए पूछा तब स्वामीजी ने कहा—'हम इनने अनजान नहीं जो कि पहले ही रुपये के बारह आना करें। मैंने तो यह काम नहीं किया। पर ऐसा कहने वाले अपना दोष छिपाने के लिए दूसरों पर झूठे आरोप लगाते हैं। स्वनायजी के गुरु भूधरजी जब गृहस्थ थे तब ऊठों पर कपड़ा लादकर कड़ी जा रहे थे। रास्ते में डाकू लोग आते हुए दिखाई दिये तब उन्होंने कपड़े के भाग ऊठ की भी ले जायेंगे, ऐसा विचार कर ऊठ के पैर काट डाले। अतः गृहस्थाश्रम की क्या बात? उस समय गृहस्थ अनुचित कार्य भी कर लेता है पर मैंने तो गृहस्थावस्था में चाली के दो टुकड़े नहीं किये।'

(बिम्बु दृष्टान्त १०९)

१. सप्रति जगत्कारज सपादक, आचारज अनुभावो।

सात ही पद नो नाम करूँ मैं [ओ] भिम्बु वचन अपनावो।

भरिक उपाध्यायजी ने लिख दिया।

[आचार्य सुवर्मा द्वारा रचित परमेष्ठी पत्रक दा० ४ मा० ४]

११०. सं० १८४१ का चातुर्मास स्वामीजी ने पीपाड़ में किया। वहाँ एक गैरीराम चरण भवन बना। उसके वहाँ प्रतिदिन भजन-कीर्तन होता और वह समागत लोगों को 'सापसी' खिलाता। किसी ने उसको बहकाया कि तुम भक्तों को सापसी खिलाते हो उसमें भीखणजी पाप कहते हैं।

तब गैरीराम हाथ में थोटा लेकर पैरों में बड़े घुघरुओं को घमकाता हुआ स्वामीजी के पास आया और बोला—'भीखण बाबा! मैं भक्तों को सापसी खिलाता हूँ, उसमें क्या होता है?' स्वामीजी ने कहा—'सापसी में जितना गुड़ डाला जाता है उतनी ही मोठी होती है।' यह सुनकर वह बहुत खुश हुआ, उसकी नस-नस नाचने लगी। 'भीखण बाबा धनो जब बीघो-२' बोलता हुआ वापस गया सब लोगो ने कहा—'भीखणजी बड़े अवसरगत हैं, जो प्रश्न का जबाब पहले से ही कहा गया तैयार रखते हैं।'।

(भिक्षु दृष्टान्त २०)

१११. एक बार स्वामीजी किसनगढ़ में 'पांडियों' के मुहल्ले में गोचरी पधारे वहाँ एक घर में नीता (मृत-भोजन) था। अग्न सम्प्रदाय के साधुओं को यह ध्यानका हो गई कि भीखणजी नीने वाले के घर से मिठाई लायेंगे इसलिए वे मुहल्ले के नुबकड़ पर स्वामीजी से चर्चा करने के लिए खड़े हो गए। उन्हें देखकर 'मलत्री' झूठता ने कहा—'इस चर्चा में आरको सफलता नहीं मिलेगी' पर वे माने नहीं।

स्वामीजी गोचरी करके वापस आए तब नुबकड़ पर खड़े हुए साधुओं में से किसी ने कहा—'भीखणजी तुम तो बैरागी कहलाते हो, फिर ओसर वाले के घर से मिठाई कैसे लाये?' स्वामीजी ने कहा—'इसमें क्या रोप?' उसने कहा—'तुम बैरागी कहलाते हुए भी ऐसा कार्य करते हो, यह ठीक नहीं है।' इतने में काफी लोग इकट्ठे हो गए। स्वामीजी बोले—'मैं तो नीते वाले के घर से मिठाई नहीं लाया।' वह बोला—'यदि नहीं लाए तो पात्र खोलकर दिखावाओ।' पर स्वामीजी ने बहुत देर तक पात्र नहीं धोने। फिर उन साधुओं ने अत्याग्रह किया तब सब लोगो के सामने स्वामीजी ने पात्र खोलकर दिखाये। उनमें नाम मात्र मिठाई नहीं थी। आग्रह करने वाले स्वयं तो लज्जित हुए ही पर वहाँ उपस्थित जनता ने भी उनको अच्छी तरह पहचान लिया।

(भिक्षु दृष्टान्त २०)

११२. एक व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—'थोड़े के पैर कितने होते हैं?' स्वामीजी ने कुछ क्षण चिंतन करके कहा—'चार।' वह बोला—'मैंने तो आरको विलक्षण बुद्धि सुनी थी और आप सीधी सी बात में भी इतना सोच-विचार करने लगे।' स्वामीजी ने गंभीर स्वर में कहा—'थोड़े के चार पैर होते हैं, यह तो सब ही जानते हैं पर एकाएक उत्तर देते ही यदि तुम अपना प्रश्न कर लेता कि

‘कनकजुग’ के पैर कितने हैं तो ?’

वह व्यक्ति थड़ा मे स्वामीजी के घरणों में झुक कर बोला—‘महाशय ! आपने धरं मन की बात कैसे जान ली ? मैं तो यही पूछने वाला था ।’

(अनुभूति के आगार में)

११३. एक व्यक्ति स्वामीजी के पास में आकर बोला—‘मुझे अमासी (गुरुद्वय) को दान देने का त्याग करवा दें ।’ स्वामीजी ने उगरी भावना को पकड़ते हुए कहा—‘तुम धर्म के धर्म को समझकर ईश्वर में त्याग करते हो या हमें बदनाम करने के लिए ?’ वह चुपचाप वहां से चला गया । प्रत्यक्ष अनु के त्याग में गुद भावना और विवेक की अपेक्षा रहती है ।

(भिक्षु दृष्टान्त ११५)

११४. आठवां मे शार्दूलजी के पुत्र नगजी ने पूछा—‘प्रतिक्रमण की तस्मिन्तरी की पाटी में ‘ता’ कितने और ‘त’ कितने हैं ?’

स्वामीजी बोले—‘भगवती मंत्र में ‘का’ कितने और ‘क’ कितने हैं ? ‘या’ कितने और ‘व’ कितने हैं ? ‘मा’ कितने और ‘म’ कितने हैं तथा ‘पा’ कितने और ‘प’ कितने हैं ?’

प्रत्यक्षता की जवान बन्द हो गई । निरर्थक प्रश्न में कोई सारांश नहीं निरतना ।

(भिक्षु दृष्टान्त ४०)

११५. एक बार स्वामीजी ने अन्य सम्प्रदाय के शास्त्रियों को उनके स्थान पर पूछा—‘तुम कितनी मूर्खता हो ?’ उन्होंने अपनी सवैया बतला दी । स्वामीजी स्थान पर आ गए । पीछे में एक व्यक्ति ने उन्हें कहा—‘भोग्यजी तुम्हें भगवत (बैंगव शास्त्र) बतला गये ।’ मूर्खजी बहुत गये और उसका बदला लेने के लिए स्वामीजी के पास आकर बोले—‘भोग्यजी तुम कितनी मूर्खता हो ।’ स्वामीजी उनके पूछने के उत्तर को समझकर बोले—‘हम तो दाने शास्त्र हैं । वह बात तो उम समय की थी अब उम समाजशास्त्री का बदला नहीं लिया जा सकता है ।’

(भिक्षु दृष्टान्त १०२)

११६ (क) एक बार स्वामीजी जोधपुर पधारे । वहां लोग खर्चा करने के लिए आये । उनकी सीमा बने करने लगे । वे बोले—‘सरदार विजयसिंह जी ने गांव और दुकी पर बजने (पानी छारने का काम) बनवाये, दीनों पर इतने दिन गये, बुई मा बाओ को सेवा करना, ऐसा पण्डितिराया, इत्यादि का भी मेरा शास्त्री को क्या पूछा ?’

स्वामीजी ने बोले जाओ मे उनसे देखे हुए कहा—‘जिना ज्ञान के वही खर्चा करने में कोई निरर्थक नहीं निरतना । जाने मन्त्रों का क्या आदि ।’

(ग) बाबा ने स्वामीजी ने स्वामीजी में उद्भूत प्रश्न दिया तब स्वामीजी

ने उनसे पूछा—‘आप नरेश को सम्मन्त्रणी मानते हैं या मिथ्यात्वी क्योंकि मेरी मान्यमानुसार तो मिथ्यात्वी व्यक्ति सत्त्रिया करता है उसे धर्म होना है किन्तु आप उसे अधर्म का हेतु मानते हैं।’

आचार्य उपनायजी ने उसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया क्योंकि वे नरेश को सम्मन्त्रणी तो मानते नहीं थे और मिथ्यात्वी कहने पर उनकी हर त्रिया अधर्ममय सिद्ध हो जाती।

(भिक्षु दृष्टान्त ११३, ११४)

११३ अन्य सम्प्रदाय के थावकों ने स्वामीजी से पूछा—‘पंडिताधारी थावक को गुड़ आहार-पानी देने में क्या होना है?’ स्वामीजी ने पूछा—‘किसी को कच्चा जल पिाने में क्या होना है?’ उन्होंने कहा—‘हमको तो पंडिताधारी के लिए बनलाइए, दूधरी बात में हम नहीं समझ सकते।’

स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—‘किसी ने कहा—‘मुझे कीड़ी कुपवा दिखाओ।’ जब उसे पूछा गया कि मुझे हाथी दिखाई देता है या नहीं? वह बोला—‘हाथी तो मुझे नहीं दिखाई देता।’ तब उसको कहा गया कि हाथी भी मुझे नहीं दिखाई देता है तो कीड़ी कुपवा कैसे दिखाई देगा?’

स्वामीजी ने प्रश्नकर्ता से कहा—‘जब जीव खिलाने में पाप होता है, यह बात भी तुम नहीं समझते तब पंडिताधारी को अन्न सेवन करने में पाप होता है, यह बात कैसे समझ सकते हैं? यह चर्चा तो बहुत गहन है।’

(भिक्षु दृष्टान्त २०७)

११६ भीलवाड़ा में अन्य सम्प्रदाय के थावकों ने स्वामीजी से प्रश्न किया—‘स्वामीजी! किसी थावक ने सर्व पाप का परित्याग कर दिया, उसको आहार पानी देने में क्या हुआ?’ स्वामीजी बोले—‘धर्म हुआ।’ वे बोले—‘आपके तो थावक को देने में पाप की भाग्यता है, फिर धर्म कैसे कहते हैं?’ स्वामीजी ने कहा—‘तुमने जो प्रश्न किया उसे याद करो। जिस थावक ने सर्व पाप का त्याग कर दिया तब वह थावक का साधु ही बन गया। साधु को देने में धर्म ही है।’

(भिक्षु दृष्टान्त २०१)

११६. आमेठ में पुर के लोग स्वामीजी के दर्शनार्थ आये। उनमें आपस में चर्चा चली कि ६ पर्वाण और १० प्राण जीव या अजीव? किसी ने कहा—‘जीव है, किसी ने कहा—‘अजीव।’ इन प्रकार आपस में खीचातानी होने लगी। उन्होंने अन्त में स्वामीजी से पूछा—‘गुरुदेव! ६ पर्वाण और १० प्राण जीव हैं या अजीव?’ स्वामीजी ने उनमें चल रही खीचातानी को देखकर कहा—‘जिस चर्चा में सशय पैदा हो उसे छोड़ देना चाहिए, अन्य चर्चा क्या कम है?’ इस तरह समाप्तकर दोनों का तनाव समाप्त कर दिया।

(भिक्षु दृष्टान्त २५६)

१२० पुर में स्वामीजी ने कहा—‘इस प्रकार का भगवत धर्म है’ तब पाप में वीर्य हुआ एक भाई जयचन्दमान बीगगी बोले उठा—‘नहीं, इस प्रकार का धर्म धर्म है।’ आचार्य भिक्षु ने कहा—‘भरे इस प्रकार का महात्मा धर्म नहीं, मुझे क्या आता है ?’

केवल शास्त्रिक उपासन में पढ़ने ने कोई धर्म नहीं निकाला।

(भिक्षु दृष्टान्त २१३)

१२१ स० १८२६ नाथद्वारा में मुनि हेमराजजी ने स्वामीजी ने कहा—‘हम आचर्य लोगो के घरों में ही गोचरी जाते हैं, दूसरे घरों में भिक्षा के लिए नहीं जाते इसका क्या कारण है ?’ स्वामीजी बोले—‘यहां पर भिक्षा लोग ठीक बहुत करते हैं इसलिए उनके घर गोचरी नहीं जाते।’ हेमराजजी स्वामी बोले—‘महाराज ! आपका आदेश हो तो मैं जाऊं।’ स्वामीजी ने कहा—‘कोई बाधा नहीं तुम अच्छी तरह जा सकते हो।’

हेमराजजी स्वामी एक घर में गोचरी गये और पूछा—‘बहिन ! गुड आहार का भोग है ?’ वह बोली—‘रोटी नमक पर पकी हुई है।’ मुनिजी मेड़ी पर दूसरे घर गोचरी गये। उस बहिन ने उनटी-सीधो बातें कहकर रोटी बहराई। कुछ देर लगने से नीचे वाली बहिन ने ‘ये हमारी सम्प्रदाय के ही हैं’ ऐसा सोचकर मुनिजी को नीचे आते समय कहा—‘महाराज ! पधारें, आहार आदि लें’ ऐसा कहते हुए रोटी हाथ में ली। हेमराजजी स्वामीजी ने कहा—‘बहिन ! तू कहती थी कि रोटी नमक पर पकी हुई है।’ बहिन बोली—‘मैंने आपको तेरापची समझा था इसलिए कहा था। मुनि श्री बोले—‘हम हैं तो तेरापची ही, तुम्हारा मन हो तो वो सब बिना मन बोली—‘से जाइये।’

किर वहां से मुनि श्री अगले घर गये। आहार-पानी के लिए पूछा तो बहिन ने कहा—‘मुझे तो तेरापची साधुओं को रोटी देने का त्याग है।’ मुनि श्री ने कहा—‘रोटी देने का त्याग है पर धोवन पानी देने का तो त्याग नहीं है, बही बहराओ।’ बहिन अपनी जवान में बंध गई थी, उसने पानी बहरा दिया। हेम मुनि ने वापस आकर स्वामीजी को सब बातें सुनाई। स्वामीजी मुनकर प्रसन्न हुए।

(भिक्षु दृष्टान्त २१२)

१२२. एक बार स्वामीजी व्याख्यात में भगवती सूत्र बांध रहे थे। एक व्यक्ति ने आकर कहा—‘महाराज ! ‘धम्मो मग्ग’ सुनाओ।’ स्वामीजी बोले—‘क्या यह ‘भगवती सूत्र’ अधम्मो मग्ग है ?’ यह धम्मो मग्ग ही है, जैसे गांव जाने समय गधे, तीतर आदि का जकून सेते हैं उग दृष्टि से सुनना तो उचित नहीं, कम निजैरा के लिए सुनना ही श्रेयस्कर होता है।

(भिक्षु दृष्टान्त १५२)

१२३. पाती में हीरजी यति ने स्वामीजी शौचार्य पधार रहे थे उस समय रास्ते में अपनी मान्यता की विरुद्ध बातें उनके सामने कही—१. हिंसा में धर्म, २. सम्पन्नता को पाप नहीं लगता, ३. सब जीवों को मारने से समय मात्र भी ससार बूझि नहीं, ४. सब जीवों की दया पालने से किंचिद् मात्र ममार घटता नहीं, ५. जैसी भवितव्यता है वैसा होगा, धार्मिक क्रिया करने की अपेक्षा नहीं, केवल-ज्ञानी ने जिस दिन त्रिसंका मोक्ष में जाना देखा है उस दिन वह मोक्ष में जाता जायेगा, इत्यादिक—।

स्वामीजी ने उपयुक्त न समझकर कोई जवाब नहीं दिया। हीरजी बोले—‘मैंने मेरी श्रद्धा की जो बातें कही वे तुम्हारे जच गई भासूम देती है जिसमें वापस कुछ जवाब नहीं दिया।’ स्वामीजी ने कहा—‘गंदगी को खाते हुए भइमूरे को देखकर साहूकार का मन नहीं चलता। उसी तरह तुम्हारी विरुद्ध श्रद्धा की मैं मन से भी बाधा नहीं करता।’

(भिक्षु दृष्टान्त २२२)

१२४. एक दिन हीरजी स्वामीजी को उसटे-सीधे प्रश्न पूछने लगे। बार-बार जवाब देने के लिए व्याग्रह करने लगे। स्वामीजी ने कहा—‘जिस तरह कोई व्यक्ति गंदगी से भरे हुए पात्र में घी खरीदने के लिए दुकानदार के पास गया और बोला—इसमें घुसे घी तोल दो। पर क्या अशुद्ध वर्तन में कोई समझदार व्यक्ति घी उठेल सकता है? उसी तरह विपरीत दृष्टि वाले को यथार्थ जवाब देने में मुझे कोई लाभ दिखाई नहीं देता। इसलिए मैंने वाला पात्र और उचित समय होगा तब ही जवाब दिया जायेगा अभी नहीं।’

(भिक्षु दृष्टान्त २२३)

१२५. तिलोक्तचन्दजी, चन्द्रभाणजी आदि बुद्धिमान साधु गण से अलग हो गये तो भी स्वामीजी ने कोई परवाह न की (स्वामीजी उर्णा री विगत राखी नहीं)।

(भिक्षु दृष्टान्त १६५)

स्वामीजी का यह धोष था कि सब में साध-साध्वी कम पते हो हो पर आचार हीन व अनुशासनहीन नहीं चाहिए।

तिलोक्तचन्दजी (१२) चन्द्रभाणजी (१५) का विस्तृत वर्णन उनके प्रकरण में देखें।

१२६. ब्रह्मवत्स याद में कत्तूजी आदि पांच साध्वियों को स्वामीजी ने कहा ‘तुम्हारे जितना कपड़ा चाहिए वह ले लो। उन्होंने जितनी आवश्यकता बतलाई उतना कपड़ा उन्हें दे दिया। बाद में स्वामीजी के मन में संदेह हुआ कि उन्होंने कल्प से अधिक कपड़ा ले लिया है। स्वामीजी ने तत्काल अर्थरासजी स्वामी को भेजकर साध्वियों से वह कपड़ा वापस भगवाया और उसे माया। पाचों ही साध्वियों

[illegible]

1964-1965 (1965)

[illegible]

५८१३६३७४

५८१३६३७४

५८१३६३७४

ਸਾ-ਜਾਤਾ ਹੁਨੀ ਚਰ ਬੀਰ ਅ ਮੀ ਹੁਨ ਆ-ਏ ਰਾਮੇ ।

[illegible]

नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथर्ववेदः १००० श्लोकः

[illegible]

(मिहिरा दृष्टिः १३८)

१२८ कृष्णमीनो भयन श्वाश्वत्थानि मे शीतल भवे आदि शौचिक देशों का निषेध करते हैं। देवशालग्रो काली ने कृष्णमीनो मे कहा—'नान् पौष्टिक देशों का निषेध करते हैं अतः वह देव शालग्र होकर नहीं उत्पन्न हो गरी कर देते ?' कृष्णमीनो बोले—'यह युग मध्यम् दृष्टि देशों का है, यदि य साधुओं को मष्ट दे तो द्वाद वे यय की ओट गहन करनी पड़े, इगणित साधुओं को मष्ट नहीं देते।'

देवी की आज्ञातना करना टीक नहीं, विष्णु वस्तु-स्थिति यथाने ॥ मोई हर्ष  
महोई ।

(मिथुन, बुधवार २३६)

१२९. एक भार्द ने आकाशं निम्न में कहा—‘आप इतने बड़े दुष्टान्तों को देने हैं ?’ स्वामीजी ने कहा—‘गभीर वायु रोग ग्राह करने में नहीं मिलता उसी लिए तो हमेशा की भाँति ‘राम’ (यादों की नमं जगता) देना पड़ता है। उसी तरह मिथ्यात्व एवं उच्च रोग मिटाने के लिए मुझे बड़े दुष्टान्तों के द्वारा लोगों को

१. बहो माध निगगा भगा भी, तदुके सोई नेह ।

भाषारी सृष्टि मिथै जो, श्रणाचारी तूं छेहू ॥

साप्ताहिक बोनस का. ११ यी०

समागता पटना है।

(भिक्षु दृष्टान्त ६६)

१३०. पादू में एक भार्द ने स्वामीजी को कहा—हेमराजजी स्वामी की गले-बरी बल्ल से बरी है। स्वामीजी बोने—सम्भवत बड़ी नहीं है। उगने अधिक आदर दिया तब स्वामीजी ने पड़ेबड़ी भाप कर दिखलाई तो बराबर निरली। स्वामीजी ने उगे बड़ा उताहना देते हुए कहा—‘जग ह्य पार अंगुम बगडे के लिए अरने गयन को छोड़ने ? तुमको इनका ही विश्वास नहीं तो तुने यह भी सदेह हो गयना है कि हम प्यास लगने पर रास्ते में कच्चा पानी भी पी लेते होंगे। साधुना या पावन अरनी सच्चाई से होना है, दूसरा कहा-नहा देखने आता है ? उस भार्द ने शिष्यवृत्त अरनी गनती स्वीकार करने हुए कहा—‘मुझे झूठा ही भ्रम हो गया था।

(भिक्षु दृष्टान्त ७७)

१३१ (१) विप्रम सवन् १८५७ में स्वामीजी ने पुर में चातुर्मास किया। पौज वाले निराहियों के आने की समाचना होने से स्वामीजी वहाँ से बिहार करने लगे तब भार्दों ने कहा—‘आर बिहार बरी करने है ?’ स्वामीजी बोने—‘हमें यहा अन्न सत्रदाय के साधुओं ने चातुर्मास किया था, उग समय पौज के भय से गाव के कई लोग बाहर चले गए लेकिन उन साधुओं ने कहा—‘हम तो चातुर्मास में बिहार नहीं करेंगे इस तरह हठाबह करके बिहार नहीं किया।’ बाद में पौज वाले अदमी आए तब वे साधु नागौरियों के मकान में रहे। निराहियों ने उन साधुओं को परहकर कहा—‘धन मान बनाओ ?’ निचों की धूर्ई देकर निचों को उनके मुह पर बाघ दिया। इस प्रकार बहुत कष्ट दिया, इसलिये हमारा यहा में बिहार करने का विचार है। भार्दों ने कहा—‘महाराज ! आर बिहार न करे हम आपको अच्छी तरह पट्टवा देंगे। आपको छोड़कर हम नहीं जायेंगे। तब स्वामीजी उनके विश्वास पर बड़ी ठहरे।

कुछ दिन पश्चात् पौज के अर्च की हचल मची तब लोग तो रात्रि में ही बिधर के बिधर चले गये। स्वामीजी भी अपनी सूतवृक्ष से ही प्राण काय होने ही वहा से बिहार कर ‘गुडला’ पधार गये। बाद में कुछ चाइयों ने स्वामीजी के

१. स्वामीजी ने आश्विन शुक्ला १३ मंगलवार को पुर में थड़ा की चउपई मात्रा आदि परटण री विद्य आलोच्यवणी दाल २० की रचना की। कार्तिक यदि ५ मंगलवार की ‘गुडला’ में थड़ा की चउपई कारण पड़िया भोमागा में बिहार करनी नहीं, इस थड़ा रे छहन री द्वा० १० की रचना की। पुनि भारमन जी ने कार्तिक यदि २ (दूसरी) बुधवार को पुर में मात्रा आदि

दर्शन किये। स्वामीजी ने उन्हें उठाहना देते हुए कहा—‘तुम कहने में कि हम आपके साथ में रहकर सेवा करेंगे। रात को ही सोकर वहीं के कहीं बने गये।’ भाइयों ने कहा—‘हम मगरे (पहाड़) पर छड़े-छड़े देख रहे थे—‘वे स्वामीजी प्यार रहे हैं, वे स्वामीजी प्यार रहे हैं।’ पुनः स्वामीजी ने कहा—‘दूर छड़े-छड़े देखने से क्या होता है? साथ में रहने का बहुरस साथ में तो रहे नहीं। इसलिए साधुओं को केवल गृहस्थों के भरोसे नहीं रहना चाहिए।’

(मिक्त्रु दृष्टान्त २९०)

(ख) मीबली से बिहार कर चेलावाम पधारने समय स्वामीजी ने आगे का रास्ता पूछा तब जयचन्दजी थाकने लगे—‘गुरुदेव! रास्ता तो मैं जानता हूँ, आप कुछ पूर्वक बिहार करें, मैं आपकी सेवा में साथ ही हूँ। कुछ दूर चलने के बाद हरियाली ही हरियाली आ गई मार्ग छूट गया।’ स्वामीजी ने जयचन्दजी को उपालम देते हुये कहा—‘तू कहता था कि मैं मार्ग जानता हूँ।’ जयचन्दजी ने कहा—‘महाराज! माफ कीजिये, मैं तो रास्ता ही भूल गया हूँ।’ स्वामीजी बोले—‘साधु को एकमात्र गृहस्थ के भरोसे ही नहीं रहना चाहिए।’

(मिक्त्रु दृष्टान्त २९१)

१३२. किमी ने आचार्य मित्र से पूछा—‘आप अन्य सम्प्रदाय वालों के किया कलापो का दिग्दर्शन करवाते हैं उसकी आपकी जानकारी कैसे हुई?’ स्वामीजी बोले—‘हम आपाङ्ग महीने के ज्योतिषी नहीं कार्तिक महीने के ज्योतिषी हैं। जैसे आपाङ्ग महीने का ज्योतिषी कार्तिक महीने के ध्यान का भाव पहले ही बता देता है वे चाहे मिले या न मिले। पर कार्तिक का ज्योतिषी वर्तमान में ध्यान के जो भाव होने हैं वही बताता है। जैसे हम वर्तमान में जैसी स्थिति देखते हैं वैसी ही बताते हैं।’

(मिक्त्रु दृष्टान्त ३०४)

१३३. स. १८५६ में अस्वस्थता के कारण स्वामीजी को तेरह मास तक मापद्वारा में रहना पड़ा। वहाँ मुनि श्री हेमराजजी बोचरी गये। एक पात्र में घने और भूँग की दास मिलाकर भे जाये। स्वामीजी ने पूछा—‘यह मिश्रण हुई की या तुमने मिनाई? हेम—‘मैंने मिनाई।’ स्वामीजी—‘रोटी के लिए भूँग की दास की खोज करना तो दूर रहा, किन्तु जो सहज प्राप्ति हुई उसे मिलाकर साया है।’ हेम—‘ध्यान नहीं रहा, अनजान में ऐसा हो गया।’

इस पर स्वामीजी ने उन्हें कुछ कड़े जर्नों में उठाहना दिया तब वे उदाम हो

परउमरी विष औनवावगी वाय २० की प्रतिलिपि की।

इन मदमों में यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वामीजी आग्निन भुजना ट. ४ में कार्तिक बर्दि ४ की मध्याह्न में पुर में बिहार कर ‘गुरुना’ पधारे। कार्तिक बर्दि ५ (दुमरी) भुजवार की बाधम पुर पधार गये।

गए और एकान्त में जाकर सो गए। स्वामीजी आहार करके मुनि हेमराजजी के पास में आकर बोले—‘हेम ! (हेमडा) भवगुण मेरा देख रहा है या तेरा ? हेमराजजी ने कहा—‘गुरुदेव अपना ही देख रहा हूँ।’ स्वामीजी बोले—‘आगे पर सावधान रहना चलो आहार कर सो। इस प्रकार वात्सल्यमय वचनों से आरवस्न कर स्वामीजी ने उन्हें आहार करवाया।’

(भिक्षु दृष्टान्त १६६)

१३४. स० १८१८ में खेरवा के भगजी नामक एक भाई दीक्षा लेने के लिए तैयार हुये। उनके पारिवारिक जनो ने स्वामीजी से कहा—‘इसको दीक्षा देने की हमारी आज्ञा नहीं है। स्वामीजी बोले—‘आप सगे भाई चाचा आदि तो हैं नहीं, इसलिए आपके आदेश की जरूरत नहीं है। कुछ समय पश्चात् बड़ी बहिन की आज्ञा से स्वामीजी ने भगजी को दीक्षा प्रदान की। कौटुम्बिक जन स्वामीजी के पास आ आकर बहुत दिनों तक विग्रह करते रहे परन्तु स्वामीजी ने कोई परवाह नहीं की।’

एक दिन स्वामीजी ने भुनि भगजी से पूछा—‘अगर तुम्हारे सम्बन्धी तुझे बल पूर्वक वापस ले जायेंगे तो तू क्या करेगा ?’ वे बोले—‘यदि वे मुझे घर में ले जायेंगे तो मैं चार प्रकार के आहार (अन्न, पान, खादिष, स्वादिम) का सावज्जीवन के लिए परित्याग कर दूंगा।’

स. १८६० सिरिलारी चातुर्मास में भी परिवार वालों ने बहुत झगड़ा किया पर स्वामीजी अपने ग्याय पक्ष पर अटल रहे।

(भिक्षु दृष्टान्त १४०)

१३५. बैसूरी के निवासी ‘नाथूजी’ स्वामीजी के पास में दीक्षित हुये। उनमें रस लोभुपदा देखकर स्वामीजी ने १८५६ में साधु संघ के हित के लिए दूध, दही, घी, मिष्टान्न, कड़ाई विषय आदि धाने की मर्यादा बनाई।

संघ की सुरक्षा के लिए कड़ा प्रतिबंध लगाने में भी स्वामीजी सकींच नहीं करते थे।

(भिक्षु दृष्टान्त १६१)

१३६. संवत् १८५४ में स्वामीजी ने चार साधुओं से खेरवा में चातुर्मास किया। पर्युषण पर्व के दिनों में कई आवक गच्छवासीयों के उपाध्य में व्याख्यान सुनने के लिए गये। वापस आकर स्वामीजी से बोले—‘स्वामीनाथ ! अभी हम लोग उपाध्य में व्याख्यान सुनकर आये हैं, वहा ऐसा प्रत्यक्ष चला कि कूर्मानुज ने केवल ज्ञान होने के बाद छह महीने तक राज्य किया। एक दिन वह राज्य-सभा में बैठा था, उस समय दो साधु वहाँ आकर खड़े हो गये पर उसको वन्दना नहीं की। इस पर कूर्मानुज केवली ने उन साधुओं से कहा—‘मुझे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है, फिर भी आपने मुझे वन्दना नहीं की ?’ तब उन साधुओं ने कहा—‘आपका

वेग गुरुमुख का है हमारे हृदय में नमस्कार नहीं दिया।' यह सुनकर दूधोमुख बोला—'ठीक-ठीक अब मैं समझा। यह बड़ा-सा भावनों के स्वाामीजी मे पुत्र—'बस यह बात सत्य है? इससे भी बोले—'यह बात सत्य है।' तब मोगीय कथे के उतर में दिया जवाब है। जबकि वेदशास्त्र की प्राप्ति मोक्षीय कर्म के ह्रास होने के बाद में होती है। जो इस कथा को सत्य मानते हैं, उन्हें न समझा है और न जो गुरुमुख सत्य मानते हैं उनमें ही। इस प्रकार स्वाामीजी ने उन लोगों को समझा दिया।'

(भिरगु दृष्टान्त २०१)

१३७ देवूरी के बापूजी ने स्त्री, बेटी तथा माता को छोड़कर वीरगमों पर प्रवृत्ति कटोरे थी, जिनमें अनुशासन का पूरा धारा नहीं रह्यो। तीन वर्ष तक गण में रहते फिर वे अलग हो गए। उनके साथ जाने बापूजी ने स्वाामीजी से आकर कहा—'बापूजी गण में प्रवृत्त हो गए।' स्वाामीजी ने कहा—'जैसे किसी के शरीर में कोड़ा बहुत पीड़ा करना है, कायागुरु में जब यह कूट जाता है तब वह प्रसन्न होता है या अप्रसन्न? बापू बोले—'प्रसन्न हो जाता है।' स्वाामी बोले—'वैसे बापूजी को तत्काल दे दे बाबा बापू अलग हो जाने की मन नाराज नहीं होना।'

(भिरगु दृष्टान्त २)

१३८ हेमराजजी स्वाामी दीक्षा लेने के लिए तैयार हुये तब किसी व्यक्ति ने स्वाामीजी से कहा—'महाराज! हेमजी दीक्षा ली लेते हैं, पर इनके तन्हाऊ मूषने का ध्यान है।' स्वाामीजी बोले—'बिराह बड़ा गया, तब सामग्री मौजूद है, अगर एक काचरी नहीं है तो क्या उसके बिना विवाह अटकता है?'

(भिरगु दृष्टान्त २१७)

१३९ कोश सम्पदाम बाजे दीनारामजी के पास दीक्षित हुए—(१) बड़े-मानजी (२) बड़ा कण्ठजी (३) छोटा कण्ठजी (४) मूरनोजी। उनमें छोटा कण्ठजी (कम सख्या ३२) ने एक दिन स्वाामीजी से कहा—'मुझे ठोड़ी रोटी नहीं मिली।' तब स्वाामीजी ने आहार का बटवारा करते समय ठोड़ी रोटी पर एक-एक लड्डू रखते हुए कहा—'जो ठोड़ी रोटी का विभाग लेगा उसे लड्डू मिलेगा और जो बड़ी रोटी का विभाग लेगा उसे लड्डू नहीं मिलेगा।' स्वाामीजी के श्याम सनन विभाजन से चुपचाप कमलानुमार, अपना-अपना विभाग ले लिया। किसी को बड़ी या ठोड़ी करने का अवसर ही नहीं मिला।

(भिरगु दृष्टान्त १६७)

१४०, स्थानकवासी बापू टीकमजी के शिष्य बचरोजी निरवारी से स्वाामीजी के पास आकर बोले—'भीषणजी कहा है?' स्वाामीजी ने कहा—'भीषणजी' मेरा ही नाम है। तब वे बोले—'आपकी देखने की मेरे मन में बहुत

उत्पंठा थी, इसलिए मैं आज आया हूँ।'

स्वामीजी ने मुश्किलें हुए कहा—'तो देख लो।'

देखने के पश्चात् बचरोजी बोले—'आप मुझे कुछ बर्षा पूछिए ?'

स्वामीजी—'कुछ तो देखने के लिए आए हो, फिर मुझे क्या बर्षा पूछें ?'

बचरोजी—'कुछ तो कुछ ही सीखाए।'

उनका अधिष्ठाता देवदत्त स्वामीजी ने पूछा—'तीनसे सहास्रन का दण्ड, दोष, काम, मात और गुन क्या है ?'

बचरोजी ने कहा—'जगत् जगत् मुझे तो नहीं आज्ञा पर पन्नों में लिखा हुआ पड़ा है।'

स्वामीजी—'यत्र पठ जाए अथवा गुन हो जाए तो क्या बरोमे ?'

बचरोजी बो जव इनका कोई उत्तर नहीं मिला तब जान को पुमाने हुए बोले—'मेरे गुरुजी ने आज्ञा तो बर्षा पूछी थी, उनका आज्ञा जवाब नहीं आया।'

स्वामीजी—'वही बर्षा गुन फिर मे पूछ लो, यदि उन्हें उत्तर दिया है तो तुम्हें भी दोगे।'

बचरोजी—'आप तो मेरे दादा गुन हैं, अतः बर्षा में मैं आपकी रीति में जीन मचगा हूँ।'

स्वामीजी ने निश्चयक शब्दों में समझ आता देखकर जान को समाप्त करने हुए कहा—'मुझे तो ऐसा बोना बेना नहीं चाहिए।'

(धिवन्तु दृष्टान्त ४६)

१४१ समार में व्यक्ति की पूजा नहीं, जक्ति की पूजा होती है। पूनम का चांद नहीं, दुःख का चांद पूजा जाता है। सरस उक्ति में आकर्षण नहीं, वय उक्ति में आकर्षण होता है। स्वामीजी की साहित्यिक बाध्य-नसा में यह चमत्कार था, जिसमें उनकी भावमयी भाषा गीधी हृदय को छू लेती।

आचार्य भिक्षु ने स० १८४५ का चानुर्माग पीपाड में किया। वहाँ अनेक लोग ममज्ञे। उनमें एक प्रतिष्ठित और सर्वज्ञ व्यक्ति जगन्नी गाधी भी थे। उनके ममज्ञे में त्रिपथी सम्प्रदाय वाले लोगों को बड़ा आघात लगा। उनमें सेतमीजी सुणावत के लिए तो वह असह्य सा हो गया वे अन्यत्र चितित हो गए।

स्वामीजी ने किसी भाई से जब ऐसा सुना तो उन्होंने कहा—'परदेस से किसी की मृत्यु के समाचार आते हैं तब दिनानुर तो अनेक व्यक्ति होते हैं पर जो आपात उसकी पत्नी को लगता है। वह किसी को नहीं लगता। समी कपूनी वह एक ही पहनती है।'

(धिवन्तु दृष्टान्त १७)

१४२ स्वामीजी ने स० १८४५ का चानुर्माग पीपाड में किया। वहाँ रात्रि-कालीन व्याख्यान में लोग बहुत आते। कुछ विरोधी लोग दूर बैठ जाते और

निन्दा करते। एक व्यक्ति ने स्वामीजी से कहा—'इधर आप तो व्याख्यान दे रहे और उधर लोग आपकी निन्दा कर रहे हैं।' स्वामीजी ने कहा—'मानव जनते पर कुत्ता स्वभाववश भौंकने लगता है, लेकिन वह यह नहीं समझता। वह किसी के विवाह पर बजाई जा रही है या किसी के मरने पर।'।

इस प्रकार निन्दा करने वाले व्यक्ति यह नहीं समझते कि व्याख्यान में ज्ञान की बात आ रही है अतः प्रसन्न होना ही कहाँ रहा, प्रत्युत निन्दा करते हैं। उनका स्वभाव निन्दा करने का ही है, अतः उनका दिमाग उल्टा हो चलता है।

(मिक्नु दृष्टान्त १६)

१४३. पीपाड के उस चातुर्मास में स्वामीजी का रात्रिकालीन व्याख्यान सुनकर जनता बहुत प्रभावित हुई। कुछ विरोधी व्यक्तिओं को वह अच्छा नहीं लगता वे उसका विरोध करते हुए कहते कि—'भीषणजी के व्याख्यान में सवा प्रहर रंग प्रहर रात्रि व्यतीत हो जाती है।'।

विरोधियों का उक्त कथन किसी ने स्वामीजी को बतलाया तब उन्होंने कहा 'जिस प्रकार विवाहादिक उत्सव की रात्रि मुख्यतः होने से छोटी और सप्ता होति हो किसी की मृत्यु होने पर शोक सतप्त परिवार को वह दुःखमय रात्रि बड़ी लम्बी है। उसी तरह जिनको व्याख्यान रविप्रद नहीं लगता उन्हें रात्रि बहुत लम्बी लगती है। व्याख्यान तो प्रहर रात्रि के पहले-पहले सपन्न हो जाता है।

(मिक्नु दृष्टान्त १७)

१४४. पीपाड में एक बार स्वामीजी व्याख्यान दे रहे थे जनता बहुत थी उन समय विरोधी सम्प्रदाय के एक व्यक्ति तारारवन्दारी सिपाही कहा आये और बोले 'तुम लोग भीषणजी का व्याख्यान सुनते हो अतः तुम्हें 'दादा' (गीत) सब आदेशों।'।

स्वामीजी ने कहा—'दादा तो हरे भूजों की ही लगता है पर 'दूठ' (जिन वेष्ट की झलिया और पत्तियों काट भी गई हो या सूखकर गिर गई हो) को नहीं।

स्वामीजी के मार्मिक जवाब को सुनकर उनकी जवान बन्द हो गई। अन्य जनता मुग्धराते हुए बहने लगी—'अच्छा जवाब दिया' 'अच्छा जवाब दिया'।

(मिक्नु दृष्टान्त २७)

१४५. स्वामीजी जब स्वानरुवासी सम्प्रदाय में थे तब एक दिन आचार्य स्व नाथजी के साथ भिजा के लिए गये। एक घर में एक धाई घरघा मोड़ रहा था। आचार्य स्वनाथजी ने उनके हाथ से बाहर लिया। बाहर आने के बाद वे बोले—'भीषणजी कुछ कहा तो नहीं हुई?' स्वामीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा—'यह तो सम्मान अमुझ ही लिया गया था। इसमें द्विद शका की क्या बात है।'।

(मिक्नु दृष्टान्त ७८)

१४६. म० १८२६ का स्वामीजी ने पाँच साधुओं से नाथद्वारा में चातुर्मास

किया। वहाँ भारीमालजी भ्रामी खेनसीजी स्वामी तथा हेमराजजी स्वामी तो एकान्तर तप करते। स्वामीजी अष्टमी, चतुर्दशी के उपवास करते, और मुनि उदयरजजी बेने-बेले की तपस्या एवं पारणा में आविष्ट करते। खेतसी स्वामी मुनि उदयरजजी को पारणे में कुछ भोजन अधिक देते। स्वामीजी ने कहा—'बेले का पारणा है अन. आहार अनुमान से देना चाहिए।' फिर भी अधिक देते हुए देख कर स्वामीजी ने कहा—'सम्भवतः उदयरज की मृत्यु तुम्हारे हाथों से होगी।

कितने वर्षों बाद मारवाड़ में स १८६१ में मुनि उदयरजजी 'आर्याम्बल वर्धमान तप' कर रहे थे, इकतासीस की खेपी तक चढ़े, बीच में आठ दिन के तप का पारणा 'छारिधिया' ग्राम में किया। शरीर में कुछ बीमारी आनकर भारीमालजी स्वामी के पास चेलावास आने के लिए विहार किया। रास्ते में चलते-चलते कराड़ी ग्राम में वे थक गये। उस समय उनके सहयोगी मुनि भोरजी ने चेलावास में आकर जब इस बात की सूचना दी तब मुनि श्री खेतसीजी, हेमराजजी तथा भोरजी वहाँ आकर उन्हें कंधे पर बैठाकर चेलावास ले आये। सूखे घास का बिछौना बिछाकर उन्हें सुला दिया। थोड़ी देर पश्चात् दर्शनार्थ आई हुई साखी श्री हीराजी ने मुनि श्री हेमराजजी को उन्हें पानी पिलाने के लिए कहा। मुनि श्री हेमराजजी तथा खेतसीजी दोनों उनके पान आये। खेतसी स्वामी ने पीठ के पीछे हाथ का महारा दे कर उन्हें बिठलाया कि इस में आँखें फेर दी।

भारीमालजी स्वामी उनका आमुच्य निवट समझकर बोले—'उदयरजजी तुम स्वीकार करो तो तुम्हारे चारों आहारों का परिष्कार है।' कुछ क्षणों बाद खेतसी स्वामी के हाथों में ही ये दिव्यत हो गये। खेतसी स्वामी बोले—'स्वामी जी ने मुझे कहा था कि सम्भवतः उदयरज की मौत तुम्हारे हाथों से होगी। वह स्वामीजी का वचन आज साक्षात् मिल गया।

(भिक्षु दृष्टान्त १५८)

१४७. जब चन्द्रभाणजी ने तिमोरचन्दजी को आचार्य पर का प्रतीक देकर अपने पक्ष में किया तब स्वामीजी ने तिमोरचन्दजी को कहा—'तुम्हें आचार्य पद मिलना तो कठिन है पर इसके बदले वहीं मूरदास पद में मिल जाये। इतना रखना वहीं चन्द्रभाणजी तुम्हें जंगल में न छोड़ दे।' गण से अलग होकर कुछ वर्षों तक तो वे शामिल रहे। बाद में चन्द्रभाणजी ने तिमोरचन्दजी को नजर की बमबोरी का नाम लेकर जंगल में छोड़ दिया। स्वामीजी का वचन मिल गया।

(भिक्षु दृष्टान्त ७०)

१४८. गुरु रामजी नामक घाई में चर्चा करने समय स्वामीजी ने पर पढ़कर बतलाये। उन्होंने कहा—'मुझे पत्र में लिखे हुए अक्षर बतलाइये।' स्वामीजी ने अक्षर बतला दिए और कहा—'गुरु रामजी! तुम्हारे दिन में अक्षर बम है इन-लिए सम्पत्ति का रहना कठिन है।' शीघ्र मुनकर आश्चर्यचिन्त हुए।



१५१. साध्वी यैणाजी तथा मुनि वैभीरामजी के लिए स्वाधीजी ने कहा—'ये आखों के लिए औषध ना अत्यधिक प्रयोग करते हैं अतः सम्भव है कि ये नहीं आखों की ही न खो बैठें। फिर भी उन्होंने औषध का प्रयोग नहीं छोड़ा। आखिर आखों की नजर बहुत कमजोर पड़ गई। अधिक दवा के प्रयोग से आखों को खतरा हो गया।

(भिक्षु दृष्टान्त १६५)

१५२. तिरिपारी में स्वामीजी ने चातुर्मास किया। वहाँ पोतियावध सम्प्रदाय के कपूरजी नामक भाई और कुछ बहनें भी थी। बहनों के साथ किसी विषय को लेकर कपूरजी का तनाव हो गया। सबस्मरी आई सब कपूरजी ने स्वामीजी से कहा—'भीषणजी! कुछ बहनों से मेरी बोलचाल हो गई इसलिए आज क्षमा याचना करने के लिए आता हूँ। स्वाधीजी ने कहा—'क्षमायाचना करने के लिए जानें तो हों पर कहीं ऐसा न हो कि प्रत्युत नया झगडा और खड़ा कर लो।' ये बोले—'नही नया झगडा किसलिए करूँगा?'

कपूरजी बहनों के पास पहुँचे और बोले—'तुमने खमन घामना है, तुमने तो मेरे साथ बहुत अनुचित चर्चा किया, पर मुझे तो राग-द्वेष नहीं रखना है।'

बहनें बोली—'अनुचित चर्चा आपने किया था हमने?' इस तरह आपस में बोलचाल होने से झगडा अधिक खड़ा हो गया। वापस आकर कपूरजी ने स्वामीजी से कहा—'झगडा तो प्रत्युत्तर ज्यादा हो गया।' स्वामीजी बोले—'कपूरजी! मैंने तो पहले ही कहा था।'

(भिक्षु दृष्टान्त ८२)

क्षमायाचना करते समय पिछली बातों को छेड़ने से तनीजा अच्छा नहीं निकलता। उस समय दोनों तरफ से सम्झौता होने से ही राग-द्वेष मिट सकता है।

१५३. स० १८५३ में स्वामीजी ने सोजन में चातुर्मास किया। वहाँ लोग बहुत समझे। किसी ने कहा—'भीषणजी! यहाँ उपचार तो बहुत अच्छा हुआ।' स्वामीजी बोले—'मेरा तो वो है पर गाँव के बाहर है। इसलिए किसी पशु के न घुमने से ही वह सुरक्षित रह सकती है, अन्यथा काम बहुत बटिन है।' आखिर वैसा ही हुआ कि समझे हुए लोग वापस फिंस गए।

(भिक्षु दृष्टान्त २२)

१५४. समार में एक पुरानी लोकोक्ति है कि बालक, माधु और पर-पशु के मुँह से जो अक्षरमात्र बचन निकल जाता है वह प्रायः गल्प टावित होता है।'

१. जे भाई बालक बच्चा, जे भाई अणवार।

जे भाई पर बापिनो, मूठ न बहन तिवार ॥



‘भीषणजी ! साधु आहार करता है वह अच्छा ही काम है ।’

(भिक्षु दृष्टान्त ३)

१५६. एक बार मन्दिर-मार्गी भाई स्वामीजी के पास में आकर बोला—  
‘आपको जैसे नदी उतरने में धर्म होता है वैसे हमको भी फूल चढ़ाने में धर्म होता है ।’ स्वामीजी बोले—‘तुम्हारे पास तीन तरह के फूल हों—१ मूखे २. दो-तीन दिन के भुर्राये हुए और ३. कच्ची कलियाँ । इनमें से कौन से फूल चढ़ावोगे ?’ यह बोला—‘घुन-घुन कर कच्ची कलियाँ चढ़ायेंगे ।’ स्वामीजी बोये—‘तुम लोगो के परिणाम (भाव) जीव हिंसा के रहते हैं’ और हम लोगो के परिणाम दया पासन के । एक नदी में कमर तक का जल है, एक में घुटने तक का, एक नदी सूखी है तो हम लोग सूखी नदी से जाते हैं अग्यथा इनमें से अधिक जल वाली नदी को २-४ कोस की अवसाई (घुराव) खाकर भी टांसने की चेष्टा करते हैं और कम से कम जल वाली नदी से पार होने हैं । इसलिए नदी उतरने के साथ फूल चढ़ाने की बात की समानता नहीं होती ।

(भिक्षु दृष्टान्त ६७)

१५७. एक बार स्वामीजी ‘आठवा’ पधारे । वहाँ के उत्तमोजी ईराणी स्वामीजी से बोले—‘आप देहरों (देवालियों) का निषेध करते हैं परंतु पुराने जमाने में बड़े-बड़े लक्षपति, करोड़पति हुए उन्होंने देवालय करवाये हैं ।’ स्वामीजी बोले—‘यदि तुम्हारे पास पचास हजार का धन हो जाये तो देवालय कराओगे या नहीं ?’ उसने उत्तर दिया—‘अवश्य कराऊंगा ।’ स्वामीजी ने पूछा—‘तुम्हारे में जीव का भेद, गुणस्थान, उपयोग, योग और सेवा कौन-कौन से हैं और कितने कितने पाते हैं ?’

उत्तमोजी बोला—‘यह तो मासूम नहीं ।’ स्वामीजी बोले—‘ऐसी समझ वाले पहले भी हुए होंगे । क्या कपड़े होने से जान आ जाता है ?’

(भिक्षु दृष्टान्त ६८)

१५८. स्वामीजी बिहार करते-करते दूबाड़ पधारे । कुछ दिग्गम्बर थावक स्वामीजी के पास आए और बोले—‘मुनि को किंचित् मात्र वस्त्र नहीं रखना चाहिए । वस्त्र रखते हैं तो बस्त्र-परिपह का भग होता है ।’ स्वामीजी ने पूछा—‘परिपह कितने हैं ?’ थावक बोले—‘बावीस ।’

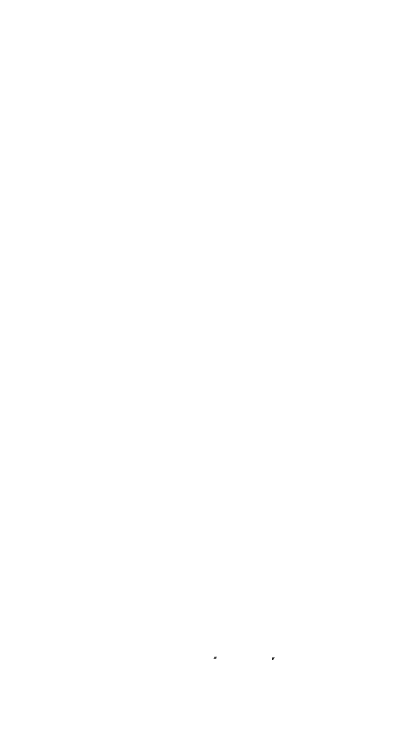
स्वामीजी—‘पहला दूसरा परिपह कौन-सा है ?’

थावक—‘शूषा, तृपा ।’

स्वामीजी—‘तुम्हारे साधु आहार पानी करते हैं या नहीं ?’

थावक—‘एक बरत करते हैं ।’

स्वामीजी—‘तब तो तुम्हारे कथनानुसार तुम्हारे मुनि शूषा व तृपा परिपह से स्थित होते हैं ।’



बाबेबां ने आते ही उनको पूछा—'क्या मेरवा मे भीखनजी भिने और उनके विषय मे छन्द बनाकर साए हो?' सेवक ने कहा—'हां ! भिना या और कुछ जोड़कर भी साया हूँ।' यह सुनकर वे उन्हें लेकर तेरापची थावको के पास ले गए और कहने लगे—'यह तो एक सेवक है अउ किसी के पक्ष वा न होकर निष्पक्ष है यह तो जैसा जानता है वैसा ही बहेसा।'।

सेवक को बोले ॥ लिए प्रेरित करते हुए ये बोले—'क्यों भाई भोमाचद ! भीखनजी कौन हैं ?

सेवक ने कहा—'उनके विचार उनके पास हैं और अपने विचार अपने पास—अब मेरे मे उनके विषय मे क्या कहना है ?' फिर भी उन्होंने बहुत आग्रह किया तब सेवक ने स्वामीजी के गुणानुवाद के दो छन्द सुनाये—

### छन्द

अनमय कपणी रहिणी करणी अनि माहूर्द बर्म जीर्ण अधिकारी ।  
गुणवत् अनन सिद्धन कला गुण प्राग्भम पोहोष विद्या पुन भारी ।  
शास्त्र सार बसीत जाणै सहु केवमजानी का गुण उपकारी ।  
पच इन्द्री कू जीत, न मानत पाखड साध भुविद बडा सतधारी ।  
माध मुक्ति का वास बन्दा सहु भीखन स्वाम सिद्धग्त है भारी ॥१॥  
स्वामी पर भव के स्वार्थ साध है बाध है सूत्र कला विस्तारी ।  
तेरा ही पक्ष साचा भिऊ लोक मे नाग सुरेन्द्र नर्म नर नारी ।  
मुणी है मरय बात सिद्धत मुज्ञान की बोहत गुणी करणी बलिहारी ।  
पृथ्वी के तारक पचम आर मे भीखन स्वामी का मारग भारी ॥२॥  
अपनी कल्पना के विपरीत स्वामीजी के गुणगान सुनकर विरोधी लोग तो इधर-उधर धिक्क गये और स्वामीजी के थावको ने खुश होकर उसे बीस-पच्चीस रुपये पुरस्कार रूप मे दिए ।

(भिक्षु दृष्टान्त ६६)

१६४. किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से कहा—'पुस्तक पन्नों को जमीन पर नहीं रखना चाहिए। पुस्तक, पन्ने ज्ञान हैं अतः उन ज्ञान की आशातना नहीं करनी चाहिए।' स्वामीजी बोले—'तुम लोग पुस्तक पन्नों को ज्ञान कहते हो तो क्या पुस्तक-पन्नों के फट जाने पर ज्ञान भी फट जाता है, जल जाता है तथा चुराया जाता है ? पुस्तक पन्ने तो आजीव होने हैं और ज्ञान जीव है। उनमें लिखे गए अक्षरों के आकार तो पहचान के लिए हैं। उनसे जो अर्थ जाना जाता है वह ज्ञान है, जो आत्मा में है अपने पास है और पत्र उसमें भिन्न हैं।' स्वामीजी ने इस समाधान से यह सिद्ध कर दिया कि आशातना चेतन पदार्थ की होती है न कि जड़ वस्तु की।

(भिक्षु दृष्टान्त २०८)

१६५. एक बार स्वामीजी सोजन के बाजार की छतरी में विराज रहे थे। उस समय बरजूजी, नाथाजी आदि सात साध्विया अन्य ग्राम में विहार करके आई। स्वामीजी को वन्दना करके पूछा—'ठहरन के लिए कौन-सी जगह है?' तब स्वामीजी स्वयं उठकर पाग में बड़ उपाधय या बहा आकर बोलें और उपाधय में रहने की आज्ञा देने वाला कोई भाई है? एक भाई ने कहा—'मेरे आना है।' तत्क्षण स्वामीजी ने अन्य जगह से चाबी साकर किवाड़ खोल दिए और साध्वियों को उसमें ठहरा कर वापस अपने स्थान पर पधार गए।'

(भिक्षु दृष्टान्त १८६)

जो व्यक्ति ऐसा कहते हैं कि साध्वियों को किवाड़ खुलवा कर नहीं उतरना चाहिए, उन्हें मूत्र के रहस्यों का बोध नहीं है।

१६६. गूदोच म आचार्य दपनाथ ने स्वामीजी के साथ चर्चा करते हुए आवश्यक मूत्र का प्रमाण देकर कहा—'यह देखो इसमें सिखा है कि कायोन्मर्ग भय करके भी बिस्नी में चूहे को छुड़वा देना चाहिए।''

स्वामीजी ने उनके दोने में स० १८११ की लिखी हुई आवश्यक मूत्र की प्रति निकालकर कहा—'यह देखिए, आपकी प्रति के अनुसार यह प्रतिनिधि की हुई है, इसमें तो यह अर्थ नहीं है।'

आचार्य दपनाथजी बोले—'हमने दूसरों के देखा-देख यह अर्थ इसमें प्रक्षिप्त किया है।' स्वामीजी ने कहा—'इस तरह झूठा अर्थ प्रक्षिप्त करना उचित नहीं है।'

(भिक्षु दृष्टान्त २१७)

१६७. स्वामीजी से किसी ने पूछा—'आप वन्दना स्वीकृति में 'जी' कहते हैं इसका क्या कारण है?' स्वामीजी ने कहा—१. नाथों को नमस्कार करने वाला 'आदेन' कहना है, ये वापस उसे 'आदि पुरुष को' कहते हैं। २. गुमाई को—'नमो नागायन', 'नारायण' ३. वैष्णव को 'राम-राम' 'रामजी' ४. पक्षीर को 'गाई माह्व', 'माह्व' ५. जनी को गुराजी वन्दना, 'धर्म लाभ' ६. स्थानकवासियों को 'जमाऊ' वा 'बानू', 'दया पानो'। इस तरह यावत् (यवन लोग) वन्दना करने में और माधु वदन स्वीकृति में उपरोक्त भिन्न-भिन्न कारणों का प्रयोग करते हैं परन्तु रायचमणी मूत्र में 'जीवमेय' इत्यादि पाठ बड़े हैं अतः हम माधु-जन वन्दना स्वीकृति में 'जीव' का एक अक्षर 'जी' कहते हैं। इसका तात्पर्य है कि जो गुन वन्दना करने हो वह गुहारा जीव-आचार (कर्तव्य) है।

(भिक्षु दृष्टान्त २१९)

१. नाथों नाथाजी के मूत्र में गुनकर यह घटना विभी गई है। ऐसा इस दृष्टान्त में उल्लेख है।

१६८. दिव्या दृष्टि (जिसे यथार्थ तारो की जानकारी नहीं है) व्यक्ति को जान, सोन, तब आदि कुछ दिखाए करती है, वह धर्म है और भववान् की भाषा में है। जो लोग उसकी उच्च जिज्ञा की अनुभूति मानते हैं, उन्हें हमका बोध नहीं है। निरवध करती करे पहले गुण छोले, निज करती में जाकर जाने अगुण। हमरी परतना करे आत्माजी, निज की विष्ट हृद छै गुण में पुष्ट। पहले गुणछोले निरवध करती करे छै, निज की करती तरावा में रोचना जाने। अतिचार मानो बड़े समकन माही, निज को ध्याव आत्मा विन मुखे ताने ॥

(दिव्यामी की करती की श्री० का० १ पा० २६, ३०)

१६९. एक बहिन स्वामीजी ने बार-बार गोबरी की प्रार्थना करती थी। एक दिन स्वामीजी उनके घर पधार गए तो वह आश्चर्य प्रसन्न हुई। आहार देने लगी तो स्वामीजी ने उनसे पूछा—'बहिन! आहार देने के पश्चात् नमस्कार गुप्त हाथ छोले पहले तो तबित पानी से छोओगी या अतित पानी से?' वह बोली—'उत्त पानी से।' स्वामीजी—'बहु छोओगी?' बहिन ने मामी की ओर तबित करते हुए कहा—'यहां छोऊगी।' स्वामीजी—'इन मामी से पानी नीचे गिरता है अतः बाधुबाध की 'विराधना' (हिमा) होती है ऐसी स्थिति में मुझे आहार देना नहीं बल्यता।' बहिन! आप तो अपना आहार कुछ देकर से लें। पीछे में हम गृहस्थ बना करते हैं, हमका आपको क्या करना है। हम हमारी सांसारिक पद्धति को कैसे छोड़ सकते हैं?' स्वामीजी ने कहा—'बहिन जब तू अपनी लावच-विद्या को नहीं छोडोगी तब मैं रोटी के लिए अपनी निरपच-विद्या को कैसे छोडूँ।' ऐसा आहार देने में मुझे 'पश्चात् कर्म' का बोध लगता है, जो बहुतर से बहुतों के आहार बिना लिए ही प्राप्त आ गए।

(धिवानु दृष्टान्त ३२)

१७०. रीमा के मेठ हरजीमनजी ने एक बार स्वामीजी से बपडा लेन की प्रार्थना की। स्वामीजी ने कहा—'गुप्त माधुओं के लिए बपडा मोल लेने हो, अब वह हमें नहीं बल्यता।' मेठ—'दुमरे माधु तो लेने हैं, हमने मुझे क्या होता है?' स्वामीजी—'यह तो उन लेने वालों में वृष्टना चाहिए।' मेठ—'बहने में तो मोल लेकर देने में मैं माधु भी पाप ही कहने है परन्तु से तो लेने हैं।'।

मेठजी ने पुनः निवेदन करते हुए कहा—'तो आप मेरे काम में जाने वाले कपडे में मैं कुछ से लो।' स्वामीजी बोले—'हां।' हमें वह बल्यता है, किन्तु हम उममे से भी नहीं लेने क्योंकि लोग तो यही समझते कि यहाँ से दूसरे माधु भी बपडा ले गए और भीषणजी भी ले गए पर हमका तार(निषेध)कीन निवासंगा कि भीषणजी उनके ध्यनिगत बपडों में से ले गए जो माधुओं के लिए खरीदा हुआ नहीं था।'।

(धिवानु दृष्टान्त २५)

१७१. सन् १८८५ की मान स्वामीजी काकरोली में 'महानो' की पोल में टहरे। रात्रि में पोल की छिड़की खोलकर स्वामीजी देह-निष्ठा के लिए बाहर गए तब मुनि हेमराजजी ने स्वामीजी से पूछा—'महाराज ! छिड़की खोलने में कोई आपत्ति तो नहीं ?' स्वामीजी ने कहा—'पामी का चौपत्री मरनेवा जो दगनायें यहां आया हुआ है वह बहुत शकाशील है, उसको भी इस बात का भय नहीं हुआ तो फिर तुम्हारे दिल में यह शका क्यों हुई ?' हेमराजजी बोले—'गुरुदेव ! मेरे मन में कोई शका नहीं है, मैंने तो केवल जिज्ञासा के लिए ही पूछा है।' स्वामीजी बोले—'तू पूछता है इसमें कोई हर्ज नहीं, किन्तु यदि दोष होता तो मैं भी क्यों खोजूंगा।' (भिक्षु वृष्टान्त १७१)

१७२ स्वामीजी जब स्थानकवामी सम्प्रदाय में थे तब एक दिन किसी दर्जी के घर गोचरी गए। वह भाई साधुओं के पास भाषा आया करना था, अतः कन्या-महला के विषय में उसे जानकारी थी। वह बोला—'कल आपका एक गिण्ट गुड ले गया था अब आज मेरे यहां की गोचरी नहीं कलती।' स्वामीजी ने स्थान पर आकर सब सन्तो से पूछा—'कल उस दर्जी के घर तो गुड क्यों लाया था ?' पर सभी इन्कार हो गए। तब स्वामीजी उस मूड को दूर करने के लिए सबको साथ लेकर दर्जी के घर पहुंचे। उन्होंने गुड ले जाने वाले मनुष्य को बयान के लिए कहा तो दर्जी ने एक बालक साधु की ओर इशारा करते हुए कहा—'य ले गए थे।' (भिक्षु वृष्टान्त १७२)

स्वामीजी ने निरर्थक हमलिए निकाला कि उन्हें साधु बेग में इस प्रकार की बदमाशियां बिगुन पसन्द नहीं थी।

(भिक्षु वृष्टान्त १७३)

१७३ पापी की घटना है कि एक माफरी ने एक बार ऐसा किया। वह साधु चारों ओर के दिन गुन आजा लेकर मोमर बाने के घर में दूसरे दिन मोमर होने के बाद बड़ी हुई मन्त्रिका भाई और स्वामीजी को दिखावाई। स्वामीजी ने माफरी से पूछा—'इस मन्त्रिका के लिए तो क्या नहीं किया है ?' माफरीजी ने हाथ जोड़ा और कहा—'हाँ, स्वामीनाथ ? कुछ मन में तो आई थी।' तब स्वामीजी ने बस में रहने वाले साधु-मन्त्रिका के अनिष्टिग्न अत्यन्त विदारी साधु-माफरी के लिए दूसरे दिन भी अन्त (मोमर) बाने के घर गोचरी जाने की मना कर दी। (भिक्षु वृष्टान्त १७४)

स्वामीजी का प्रसन्न मन वृष्टिकोण रहता था कि साधु समाज में बड़ी निष्पक्षक मन्त्रिका आए। इसलिए वे समय-समय पर साधु मन में मोमर बनाने के। (भिक्षु वृष्टान्त १७५)

१७६ चर्चक में स्वामीजी का समाज पक्षीय भिक्षु-मोदी माफरी था।

एक बार स्वामीजी कंटालिया पधारे तब उन्होंने उसको पूछा—‘गुन्ता ! क्या सेती की है?’ गुन्तोको—‘हां, स्वामीनाथ ! सेती की है।’ स्वामीजी—‘उसमें नितना खर्च लगा और घान्यादिक की निष्पत्ति कितनी हुई?’ गुन्तोकी—‘सब दस रुपये का खर्च लगा और सब दस रुपये का मान पैदा हुआ।’ स्वामीजी—‘गुन्ता ! यदि रुपये घर में पड़े रहते तो इतने आरम्भ का पाप तो न लगता।’

स्वामीजी के वाक्य उसको हर कार्य में आरम्भ-समारम्भ से बचने की प्रेरणा दे रहे थे।

(भिक्षुदुष्टान्त ४)

१७५. साधु बत लेकर जो अच्छी तरह नहीं पासता और साधु नाम से पूजाता है वह इहलोक और परलोक दोनों में खराब होता है, उस पर स्वामीजी ने दुष्टान्त देते हुए कहा—‘एक जंगल में एक मोटा-ठाका खरगोश घूम रहा था। वो ‘छाली नाहर’ उसे खाने के लिए पीछे पीछे। खरगोश दौड़ना-दौड़ता एक बिल में जाकर छुप गया। वहां एक लोमड़ी बैठी थी उसने उसकी भय-भ्रात दशा देखकर पूछा—‘माई ! आज तू घबराया हुआ कैसे दौड़कर आया है? अभी तक तेरा दम फूल रहा है।’

खरगोश बोला—‘बहिन क्या बताऊ ? बड़ी मुश्किल से बचकर आया हू। जंगल में सभी जानवरों ने मिलकर मुझे चौघरपन का पद देना चाहा पर मैं लेना नहीं चाहता इसलिए दौड़कर यहां आया हूँ।’ लोमड़ी—‘अरे ! चौघरपन में तो बहुत मजा है।’ खरगोश—‘बहिन ! तुम्हारा मन हो तो तुम से लो मुझे इसकी चाह नहीं है। सब लोमड़ी चौघरपन की पदवी के लिए उतावली होकर बिल से बाहर निकली। वहां पर दोनों छाली नाहर खड़े ही थे। लोमड़ी के दोनों कान उन्होंने पकड़ लिए। लोमड़ी घबराकर वापस दौड़ी, उसके दोनों कान छुश कर सटकते रह गए और खून सरने लगा।

खरगोश उसकी दुर्दशा देखकर मन ही मन हस पड़ा और अपनी हसी को छुपाकर बोला—‘बहिन ! अभी वापस क्यों आ गई?’ लोमड़ी ने अपने कानों की ओर संकेत करते हुए कहा—‘चौघरपन में तो खीजातानी बहुत है इसलिए वापस आ गई।’

(भिक्षुदुष्टान्त २६८)

१७६. संवत् १८३२ के लगभग आचार्य जयमनजी की सम्प्रदाय से गुमानजी, दुर्गादामजी, प्रेमजी, रतनजी आदि सोलह साधु बनस हुए। स्थानक, नित्यपिंड,

१. कुत्ते की जाति का एक जयली हिंसक पशु जो कद में कुत्ते से कुछ बड़ा होता है और कुत्ते बकरी, बछड़े आदि का शिकार करता है।

कलाल का पानी बहराना यदि छोड़कर उन्होंने नया साधुपन स्वीकार किया परन्तु पुण्य की थड़ा पूर्ववत् ही थी। तब लोग उनके विषय में कहने लगे कि जैसे भीष्मजी अलग हुए वैसे ही ये अलग हुए हैं। भीष्मजी स्वामी ने उनकी बात सुनकर एक दृष्टान्त देते हुए कहा—‘इन्होंने सिरोही के राव वाला पालखा बना लिया है।’

एक बार सिरोही के राव (ठाकर) साहब के उमराव, कामदार आदि ने विचार किया कि जयपुर, जोधपुर और उदयपुर के राजाओं के बैठने के लिए बड़ी सुन्दर पालकिया बनी हुई है तो अपने राव साहब के लिए भी एक पालकी बनाओ, ऐसा विचार कर उन्होंने कुछ सीधे टेढ़े बाम लगाकर और ऊपर सान वस्त्र तानकर एक अर्धों के ढग का ‘पालखा’ बनवा लिया, उसमें राव साहब को बिठाकर हवा खाने के लिए चले। कुछ देर चल कर काफी लोग उसके पीछे चलने लगे। घूमते-घूमते गांव के बाहर एक मैदान में आए और विधाम करने के लिए एक वृक्ष की छाया में बैठे।

कुछ दूर पर खेत में खड़े किसान ने जब यह राजकीय टाटबाट देखा तो सोचा—‘संभवतः राव साहब की सूड़ी मा मर गई होगी। जिसे यहां जनाने के लिए लाये हैं।’ दूर से ही वह घिरलाता हुआ आया—‘अरे! यहां मत जनाने, अरे! यहां मत जनाने, रात-विरात में कहीं बाल बच्चे डरेंगे।’ साथ के आश्रमियों ने सिद्धककर कहा—‘बेवकूफ! ऐसे क्या बोलता है ये राव साहब हैं, राव साहब।’ किसान ने कहा—‘क्या खुद राव साहब हैं? गजब हो गया, गजब हो गया, मैंने तो सोचा था कि राव साहब की सूड़ी मा मर गई होगी?’ उन्होंने कहा—‘मूर्ख मरा कौन है? जयपुर, जोधपुर, उदयपुर के राजा की तरह पालखी में बैठकर रावरी हवा खाने आए हैं।’ किसान बोला—‘तो अर्धों के आकार का यह क्या बनाया है। हमने तो सबकुछ यही लगता है कि किसी मुर्दे को जलाने के लिए लाये हो।’

स्वामीजी ने कहा—‘जिस प्रकार सिरोही के रावरी के पालखा है उसी प्रकार इन्होंने नया साधुपना लिया है लेकिन जीव निलाने में तथा सावध दान में पुण्य की मान्यता तो पूर्ववत् ही है अतः सम्यक्त्व, चारित्र्य एक ही नहीं है।’

(भिक्षु दृष्टान्त ७)

१७७. किसी ने भिक्षु स्वामी से कहा—‘ये साधु का बेष पहनने है, मिर का लोच करने है, धोवन तथा गर्म पानी पीने है, फिर भी साधु क्यों नहीं?’ स्वामीजी बोले—‘ये बनी बनाई बाह्यो के साधो है, जैसे—एक गांव में ‘मिर’ जाति की बस्ती थी। रामने का नाव होने के कारण साथ में कईको महाजन आदि ब्राह्मणी उस रामने में जाने जाने वहां विधाम भेजे, किन्तु मोचों को रमोई आदि की बहुत कटिनाई होनी ली। इसलिए महाजन मोचों ने गांव बागों को किसी बाह्यो आदि को बहा माने के लिए कहा। तब मेरों ने शहर में जाकर महाजन आदि

लोगों से वहाँ निवास करने के लिए बड़ी चेष्टा की पर कोई आने के लिए तैयार नहीं हुआ।

आखिर सब ने मिलकर 'डोम' जाति के गुरु की विधवा पत्नी (गुरुआनी) को उजले कपड़े पहनाकर ब्राह्मणी का बाना दे दिया। ऊँचे टीले पर एक साफ-सुपरा पर तुलसी का पौधा लगाकर उसे रहने के लिए दे दिया। दो रुपये के गेहूँ, आठ आने के मूँग और एक रुपये का धी आदि रसोई का सामान मँपकर कहा—'महाजन आए तो उन्हें पीसे लेकर रोटियाँ खिला दिया करो।' मेर लोग आगनुक महाजनो को वह ब्राह्मणी का घर बना देते, ब्राह्मणी रसोई पकाकर उन्हें खिला देती और मजदूरी ले लेती।

एक बार चार व्यापारी बहुत दूर से चलते-चलते यके-मादे उस गाँव में आए और उसी ब्राह्मणी के घर पर ठहरे। रसोई करने के लिए ब्राह्मणी से कहा। ब्राह्मणी ने गम-गम से गेहूँ की मोटी रोटियाँ (धी महिन) और कार्चरिया वाली हुई दाल व्यापारियों को परोसी। व्यापारी खाते-खाते ही बोले—'बुडिया माई! अमुक गाँव की 'राषण' (रसोई करने वाली) को भी हमने देखा, अमुक शहर की भी, पर तुम्हारे जैसी रसोई करने वाली कहीं नहीं देखी। दाल कैसी जायकेदार बनी है, कार्चरियों के डामने से तो यही ही स्वादिष्ट बन गई है।'।

अपनी प्रशंसा सुनकर ब्राह्मणी तो फूल गई। अपना आपा भूलकर बोली—'कटाऊ माई! जायका कहा बन पड़ा है, पूरा जायका तो तब बनता जब मुझे कार्चरिया कुलरने के लिए छूरी मिली होनी।' व्यापारी चमक उठे और बोले—'तो फिर किससे कुतरी कार्चरिया?' ब्राह्मणी—'कुतरी क्या सिर।' यों ही बातों से काट-काट कर वाली है।' व्यापारी—'छि छि करते आख तरेरेते हुए घालियों के दोरर मात्कर उठ खड़े हुए। पापिनी 'हय सबको जूठन खिलाकर भ्रष्ट कर दिया।' ब्राह्मणी ने कांपते हुए हाथ जोड़कर कहा—'अरे माई! यह वाली मन सोड देना। अमुक 'डोम' की मायकर साईं हूँ।' व्यापारी झल्लाकर बोले—'सब बतला तू किस जाति की है?' ब्राह्मणी ने अपना हाल सुनाया—'मैं दरमसल तो 'डोमिनी' हूँ पर गाँव वालों ने मुझे ब्राह्मणी बना दिया है, इसलिए मैं बनी बनाई ब्राह्मणी हूँ।'।

स्वामीजी ने समाधान करते हुए कहा—'इस प्रकार ये साधु की क्रिया करते हैं पर सम्भक्व, चारित्र्य न होने से बनी बनाई ब्राह्मणी के साथी हैं।'।

(भिक्षु दृष्टान्त ११६)

१७८. कोई व्यक्ति रोटियों के लिए साधु का नेप पहनता है, उसको लोग कहते हैं—'साधु घत अच्छी तरह पालन करना।' उस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—'पति के मरने पर उसकी स्त्री को बलात्-अर्थों से बाधकर जसाते हुए लोग उसे कहते हैं—'हे सनी माता! तेजरा (तीन दिनों से आने वाला ज्वर)



आहार आदि से लेना चाहिए। इस दान में धावक को पाप तो अत्यन्त लगता है परन्तु निर्बरा बहुत होती है। स्वामीजी ने इसका समाधान करते हुए कहा—'जब राजपूत का बेटा सपना करते-करते भागकर धर भसा जाता है तब सोग उसे राखी गूर नहीं बताते, राजा उसे 'पट्टा' नहीं खाने देता, लोगों में उसकी इज्जत नहीं होती। ठीक इसी प्रकार भगवान् के अनुयायी बहुसाकर जो साधु आपत्ति-काल में अगुद्ध आहार आदि सेते हैं एवं देने वाले धावको को अल्प पाप तथा बहुत निर्बरा बताते हैं, वे समय की आराधना नहीं कर सकते।

(भिक्षु दृष्टान्त २२६)

१८२. किसी ने स्वामी भोक्षणजी से कहा—'कुछ सम्प्रदाय वाले साधु मास-छमण आदि तपस्या करते हैं, सिर का सुवन करवाते हैं, उष्ण पानी तथा धोवन पीते हैं। क्या उनकी यह धार्मिक क्रिया बेकार जाएगी? स्वामीजी ने कहा—'किसी व्यक्ति ने एक साधु रुपये का दिवाला निकाला। बाद में किसी के पास से एक पैसे का तेल साकर उसे एक पैसा देता है तो वह पैसे का साहूकार कहलाता है। एक रुपये का गेहूँ साकर एक दरया देता है तो रुपये का साहूकार कहलाता है पर साधु रुपये का दिवाला निकाला उसका साहूकार नहीं कहलाता। ठीक इसी प्रकार जो साधु पंच महाव्रतों को स्वीकार कर आधाकर्मी स्थानक आदि अनेक दोषों का सेवन करता है और उनका प्रायश्चित्त नहीं करना, वह जो बड़ा दिवाला है वह तपस्या और सिरसुवन आदि से कैसे उतर सकता है? तपस्यादिक का सम्पूर्ण पालन किया उसका वह साहूकार है पर पंच महाव्रतों का खटन किया वह दिवाला उससे कैसे उतर सकता है।'

(भिक्षु दृष्टान्त २२६)

१८३. कई लोग कहते हैं—'ये साधु कुछ दोषों का सेवन करते हैं फिर भी हम गृहस्थ लोगों से तो अच्छे ही हैं, क्योंकि वे कच्चा पानी नहीं पीते, स्त्री नहीं रखते आदि।' स्वामीजी ने उदाहरण द्वारा समझाते हुए कहा—एक 'व्यक्ति ने तीन एकामन किया। एक-एक बार में छह-छह रोटिया खाई। एक व्यक्ति ने तीन दिन का सेला करके प्रतिदिन आधी-आधी रोटी खाई। इन दोनों में अच्छा कौन और बुरा कौन?' उसने कहा—'तेले वाला बुरा और एकामन वाला अच्छा। स्वामीजी बोले—'ठीक इसी प्रकार जो गृहस्थ व्रत स्वीकार करके उसका सम्पूर्ण पालन करता है वह एकामन वाले के समान है, देशव्रत धारक है और जो साधु-व्रत स्वीकार करके दोषों का सेवन करता है वह तेले में रोटी खाने के समान है, समय का विराधक है।'

(भिक्षु दृष्टान्त ६७)

१८४. कुछ सम्प्रदायों में यह रिवाज है कि बड़ाई सो बेले आदि तपस्या की पूर्ति के समय लह्दू (मोदक) बंटवाते हैं। स्वामीजी ने इसका अन्तर कारण



पाना चाहिए, क्या साधु को बछड़ा-बछड़ी पैदा करना है जिससे ऐसे सरम पदार्थ आए ?' स्वामीजी बोले—'देवरी के पुत्र साधुओं ने मोदक लिए ऐसा आगम में वर्णन आता है, तब तुम कैसे कह सकते हो कि साधु को सड़्डू पाना नहीं बल्लता।' वे बोले—'वे तो महापुरुष थे।' स्वामीजी ने कहा—'महापुरुष होंगे वे फिर भी आएँगे।' तब वे आर्चन में आकर बोले—'तुम तैरापियों ने दया और दान को ही समाप्त कर दिया अतः हम तुम्हें सप्तर में बदनाम करेंगे।' स्वामीजी ने मुस्कराते हुए कहा—'लोगों का कथन है कि मुनि बेप मे रहने वाले दो हजार व्यक्ति मेरे विरोधी हैं। यदि वे कम हैं तो खलो वे आज पूरे हो गए, यदि वे पूरे हैं तो दो अधिक हुए सही।'।

वहा से बिहार कर वे नैणवा गांव में गए। स्वामीजी के श्रावकों को शाश्वत बनाने का प्रयत्न किया पर वे श्रावक उनकी कपट-क्रिया को ममझ गए। उन्होंने एक साधु को जो बेले की तपस्या करते थे कहा—'आप तो अच्छी तपस्या करते हैं पर वे साधु तो नहीं करते। वे बोले—'नौमुपना छोड़ने में तपस्या होती है।' वे लोचुपी हैं।' श्रावकों ने उनके पास आकर कहा—'वे तो आपकी लोचुपी कहते हैं।' वे बोले—'वह तपस्या तो करता है पर क्रोधी है।' श्रावकों ने उनकी कहा—'आपको वे क्रोधी बताते हैं।' तब दोनों पास में आकर झगडा करने लग गए। लोगों ने उनकी इस स्थिति को देखते हुए कहा—

जोड़ी तो जुगली मिली, कुशली ने निलोक।

ऊ पापें ऊ ऊपें, किण विद्य जासी मोख॥

(मिक्खु दुष्टान्त ७५)।

१८६. कुछ साधु कहते हैं कि अभी पावबे आरे में पूरा साधुपन नहीं चलता इस पर स्वामीजी ने दुष्टान्त द्वारा समझाते हुए कहा—'किमी व्यक्ति ने पाव में चौके के नीचे दिए। भोजन करने वाले जब घर आए तब वह एक-एक व्यक्ति को अन्दर आने देता। भोग कहने मने—'तुमने नीचे तो चौके के दिए और एक-एक व्यक्ति को अन्दर क्यों आने देता है?' वह बोला—'मेरा सामर्थ्य इतना ही है' अमुक व्यक्ति ने तो अपने बाप का क्रियावर (मोसर) किया ही नहीं, मैं एक-एक व्यक्ति को तो आने देता हूँ? लोग बोलें तुम भी मोसर नहीं करते और चौके के नीचे नहीं देते तो क्या अवरदस्ती लोग तुम्हारे घर पर आते? तुम चौके के नीचे देकर एक-एक को भोजन करवाने हो इससे तो मोसर नहीं करने की अपेक्षा तुम्हारी अधिक बदनामी होती है।'।

इस प्रकार जो साधु समय लेते समय तो पाव महाजन स्वीकार करता है और पालने के समय पूरा नहीं पालता वह इस लोक में तथा परलोक में अपयश को प्राप्त होता है।

(मिक्खु दुष्टान्त ५६)।